नाट्य लेखन और रंगमंच : रेडियो और दूरसंचार नाटक के विशेष संदर्भ में
(सन १९७० ई० से अब तक)

डी० फिल्० उपाधि

के लिये

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध

निर्देशक :
डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
(हिन्दी विभाग)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

अनुसंधित्सु :
सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
एम०ए०(हिन्दी), एल०टी०
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

समर्पण

राष्ट्रीय पुरस्कार (सन् १९९८ ई०) से सम्मानित
पूज्य (पिताश्री) डॉ० अनिरूद्ध प्रसाद श्रीवास्तव
एवम्
पूज्या (माताश्री) श्रीमती कृष्णा देवी
के श्री चरणों में
सश्रद्ध !

विषय-सूची

क्रम सं0 : ——————————————————————— पृष्ठ

1. प्राक्कथन : ——————————————————————— क से झ

2. अध्याय एक : ——————————— नाटक ——————————— 1–60

प्रारम्भिक हिन्दी नाटक, प्रसाद युगीन प्रमुख हिन्दी नाटक, सन् 1935 ई 0 से 1970 ई0 तक के प्रमुख हिन्दी नाटक, सन् 1970 ई0 से अब तक के प्रमुख हिन्दी नाटक:ऐतिहासिक,पौराणिक नाटक, समसामयिक–चेतना प्रधान नाटक, प्रेम विवाह, सेक्स एवं मनोवैज्ञानिक नाटक, प्रतीक प्रधान नाटक, हिन्दी पद्य नाटक, हिन्दी के व्यंग्य नाटक, युद्धवादी नाटक, हास्य नाटक, अनूदित नाटक, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था की विसंगतियों पर केन्द्रित नाटक, नर–नारी सम्बन्ध और व्यक्तित्व के विखण्डन के सन्दर्भ में नाटक।

नाटकों में प्रयुक्त– मिथक, पुराण और इतिहास तथा आधुनिकता बोध।

3. अध्याय–दो : ——————————— रंगमंच ——————————— 61–111

रंगमंच की परिभाषा, रंगमंच के भाग, हिन्दी रंगमंच, स्वतन्त्र्योत्तर हिन्दी रंगमंच का विकास, हिन्दी रंगमंच के नये आयाम : निर्देशक, रंगकर्मी, मंच सज्जा, प्रकाश व्यवस्था, संगीत वेश–भूषा।

सन् 1970 ई के बाद प्रयोगों से स्पंदित हिन्दी रंगमंच।

दर्शक की साझेदारी, हिन्दी रंगमंच की वर्तमान समस्याएं।

आधुनिक हिन्दी रंगमंच : विकास और सम्भावना।

4. अध्याय–तीन : ——————————— रेडियो नाटक ——————————— 112–151

परिभाषा, हिन्दी नाटक और रेडियो नाटक, रेडियो नाटक के प्रकारः रेडियो ऐतिहासिक नाटक, अतिकल्पनायुक्त नाटक, एक पात्री नाटक, रेडियो झलकी, रेडियो धारावाहिक नाटक, रेडियो कार्टून, रेडियो काव्य नाटक, रेडियो रूपक।

हिन्दी रेडियो नाटक सन् 1971 ई0 से अब तक–राष्ट्रीय चेतना प्रधान रेडियो नाटक, सांस्कृतिक चेतना प्रधान रेडियो नाटक, सामाजिक चेतना के रेडियो नाटक, मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटक।

5. अध्याय– चार : ——————————— दूरदर्शन की नाट्य प्रस्तुतियाँ ——————————— 152–209

हिन्दी रंगमंच और दूरदर्शन के धारावाहिक

लखनऊ दूरदर्शन से प्रसारित कुछ धारावाहिक

दिल्ली दूरदर्शन से प्रसारित कुछ धारावाहिक

दूरदर्शन और विदेशी चैनलों के धारावाहिक और फिल्मों तथा गीत–संगीत का दुष्प्रभाव।

6. अध्याय–पाँच : ——————————— मंचित नाटक ——————————— 210–246

मंचित नाटको के लक्षण पात्र, संवाद, दृश्य, मंचीय व्यवस्था, वेश–भूषा, ध्वनि संयोजना, दर्शकों की अभिरूचि, रंग निर्देश, नाट्य कलेवर।

श्री सर्वेश्वर दयाल के 'बकरी' नाटक का नाट्य सौन्दर्य।

श्री सुरेन्द्र वर्मा के 'सूर्य की अन्तिम किरण से पहली किरण' नाटक का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य।

श्री त्रिपुरारी शर्मा के 'बहू' नाटक का नाट्य विश्लेषण।

नुक्कड़ नाटकः परम्परा और प्रयोग।

आधुनिक मंचित नाटकों की सूची।

7. अध्याय-छ : : ——————————— नाट्य प्रबन्ध : शास्त्रीय विवेचन ——————————— 247–29

नाट्य में अभिनय, रूपक के पात्र, नायक–नायिका के भेद।

नेपथ्य व जवानिका, वस्तुः प्रकार, पात्रों का भाषण, कथा भाग रचना।

नाटक की वृत्तियों, अर्थप्रकृतियों एवं सन्धियों के भेद, प्रभेद।

नाटक कैसा होना चाहिए?-नाटक में अंक भेद, नाटक में द्वन्द्व

नाटक में रस तथा अन्यतत्व, नाटक की भाषा और बोली।

प्राक्कथन

शोध-प्रबन्ध के सन्दर्भ में कुछ लिखने के पूर्व यह बात स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि नाटक से किसी न किसी रूप में मैं बाल्यावस्था से प्रभावित रहा । इसका कारण वंशानुगत और परिवेशगत दोनों हो सकता है । यद्यपि मेरे दादा स्व0 रेवा शंकर मध्यप्रान्त (वर्तमान मध्यप्रदेश) में डिप्टी एस.पी.पद पर एवं परदादा स्व0 भैरो प्रसाद भी मध्यप्रान्त में ही पुलिस प्रशासन में थानेदार थे, लेकिन परदादा के साहित्यिक अभिरूचि के चर्चे गाँव क्षेत्र में सुनने को आज भी मिलते हैं । क्षेत्र में आसुकवि एवं ईमानदार थानेदार के रूप में लोग आज भी याद करते हैं । पिताश्री डॉ0 अनिरूद्ध प्रसाद श्रीवास्तव जो पेशे से शिक्षक हैं, आपको आदर्श शिक्षक के रूप में राष्ट्रीय पुरस्कार (सन् 1998 ई0) से सम्मानित किया गया है। आपने विद्यालय स्तर पर कई कविताएँ, प्रहसन एवं परिवार-नियोजन की पृष्ट-भूमि पर "नवयुग संग्राम" और समग्र साक्षरता पर "साक्षरता अभियान" नाटक की रचना की है, आपके नाटक अप्रकाशित किन्तु क्षेत्रीय जनता में इतने लोकप्रिय हुए कि कई सम्बन्धित संवाद और नाटक के विदूषक पात्र की कविताएँ लोगों की जबान में हैं । इस प्रकार नाटक से मेरी रूचि एकदम स्वाभाविक और अनायास है । मैं एल0 टी0 प्रशिक्षण के समय प्रादेशिक स्तर की प्रतियोगिता में "अनेकता में एकता" स्वःलिखित नाटक का निर्देशन भी किया । इस प्रकार कई कारणों से मेरी रूचि बनती है । कई बार गाँव में क्षेत्रीय नौटंकी, भाँण, तमाशा, स्वाँग, चमरनचना, धोबिया झागर, रासलीला एवं रामलीला देखने का अवसर मिला, जिसका प्रभाव भी शायद इस दिशा में आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन कारक रहे हैं ।

एम0 ए0 के विद्यार्थी के रूप में एक प्रश्न-पत्र नाटक का मुझे पढ़ने को मिला । नाटक पढ़ाने का कार्य गुरूवर डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव जी कर रहे थे । आपकी 'अध्यापन शैली' नाटक पढ़ाते समय "नाट्य शैली" में परिवर्तित हो जाती थी, जो सीधे हृदय को स्पर्श करती थी । डॉ0 जे0 पी0 श्रीवास्तव से मैं इतना प्रभावित था कि उसी समय मन ही मन में यह दृढ़ निश्चय किया कि डॉ0 साहब के निर्देशन में ही नाटक पर कार्य करूँगा ।

यह मेरा परम् सौभाग्य ही है कि परम् श्रद्धेय डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, डॉ0 राम कुमार वर्मा की परम्मपरा के पूज्य गुरूवर डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव जी का पितावत् स्नेह

मिला, आपने ही मुझे "नाट्य लेखन" और रंगमंच: रेडियो और दूर संचार नाटक के विशेष सन्दर्भ में" (सन् उन्नीस सौ सत्तर ई0 से अब तक) शोध कार्यकरने हेतु प्रेरित किया । इलाहाबाद विश्वविद्यालय से दिनाँक 02.05.1994 ई0 से इस विषय में कार्य करने की संस्तुति भी मिल गयी । ध्यातव्य है कि डॉ0 जे0 पी0 श्रीवास्तव को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में नाट्य मंचन कराने का पन्द्रह वर्षों का अनुभव रहा है । आपके निर्देशन में शोध-प्रबन्ध पूरा किया । यद्यपि मैं उनके निर्देशन और तदविषयक अपेक्षाओं की शत-प्रतिशत पूर्ति नहीं कर सका फिर भी यथा सम्भव और यथाशक्ति शोध प्रबन्धन किया ।

मेरे शोध प्रबन्ध का विषय "नाट्य लेखन और रंगमंच : रेडियों और दूर संचार नाटक के विशेष सन्दर्भमें (सन् उन्नीस सौ सत्तर ई0 से अब तक) रहा । नाटक का अन्तर्विरोध और द्वन्द्व दो समस्याएँ मेरे सामने थीं कि मैं शोध का क्षेत्र किसी हिन्दी प्रदेश के एक नगर को बनाऊँ या फिर पूरे हिन्दी प्रदेश को गुरूदेव के निर्देशानुसार मैंने लखनऊ और दिल्ली नगरों की यात्रा की और सम्बन्धित तथ्यों का संकलन किया और अन्य हिन्दी प्रदेशों के नाट्य विशेषज्ञों, निर्देशकों, नाटक कारों से पत्रव्यवहार कर उनके सुझावों के आधार पर शोध-कार्य किया । इलाहाबाद नगर मुख्य केन्द्र रहा । इस प्रकार हिन्दी प्रदेशों के कई प्रमुख नगरों से एक साथ सम्पर्क करने का प्रयास किया ।

इस शोध-प्रबन्ध में जोभी गुण है उस गुण का श्रेय पूज्य गुरूदेव को है तथा त्रुटियों का उत्तर-दायित्व मुझ पर है । शोध प्रबन्ध जैसा जो कुछ हे आपके सामने है । दोष दर्शन भी सम्भव है । गुण ग्राहयता भी...... ।

निर्देशक डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव एवं हिन्दी-विभाग-इलाहाबाद विश्वविद्यालय के समस्त गुरूवों के प्रति चिर ऋणी रहूँगा । आप सबका स्नेह, सहयोग और सहायता मुझे नैतिक सात्विक बल प्रदान किया । अतएव सबको सावनत् प्रणाम करता हूँ ।

मैंने शोध-विषय "नाट्य लेखन और रंगमंच : रेडियो और दूरसंचार नाटक के विशेष सन्दर्भ में" सन् 1970 से अब तक"को सात अध्याय में विभक्त किया है। चूँकि शोध-प्रबन्ध में सन् उन्नीस सौ सत्तर ईसवी से अब तक के विषय में सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है । इस कारण किसी विषय पर विशेष विश्लेषण करने हेतु उस विषय के मूल में जाना अति आवश्यक होता है इसलिए विषय सन्दर्भ को सुस्पष्ट करने हेतु अन्त में परिशिष्ट का उपयोग किया है ।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में 'नाटक' पर विस्तृत वर्णन है । हिन्दी नाटकों के उद्भव से लेकर आज तक नाट्य लेखन पर गहनता से विचार किया गया है । उन्नीस सौ सत्तर ईसवी से अब तक के नाटकों को ऐतिहासिक, पौराणिक, समसामयिक चेतना-प्रधान, प्रेम-विवाह, मनोवैज्ञानिक, प्रतीक प्रधान, पद्य हास्य, व्यंग्य, मौलिक, अनूदित, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था की विसंगतियों पर केन्द्रित, नर-नारी सम्बन्ध और व्यक्तित्व के विखण्डन से युक्त नाटकों पर मीमांसा की गयी है । साथ ही नाटकों में प्रयुक्त मिथक, पुराण और इतिहास तथा आधुनिकता बोध को भी दर्शाने का प्रयास किया है।

अध्याय दो "रंगमंच' से संदर्भित है इसके अन्तर्गत रंगमंच की परिभाषा, हिन्दी रंगमंच के भाग, स्वतन्त्रयोत्तर हिन्दी रंगमंच का विकास, निर्देशक, रंगकर्मी, मंच सज्जा, प्रकाश व्यवस्था, संगीत, वेष-भूषा और सन् 1970 के बाद प्रयोगों से स्पंदित हिन्दी रंगमंच की स्थिति तथा रंगमंच में दर्शक की साझेदारी, हिन्दी रंगमंच की समस्याओं और सम्भावनाओं पर विश्लेषण किया गया है ।

अध्याय तीन में "रेडियो नाटक" पर वर्णन किया गया है, जिसमें रेडियों नाटक की परिभाषा, हिन्दी नाटक, एवं रेडियो नाटक, रेडियो नाटक के भाग- रेडियो ऐतिहासिक, रेडियो अतिकल्पना, रेडियो एकपात्री, रेडियो झलकी, रेडियो धारावाहिक, रेडियो कार्टून, रेडियो काव्य और रेडियो रूपक पर अध्ययन किया गया है । विशेष रूप से सन् उन्नीस सौ सत्तर के बाद के रेडियो नाटकों को राष्ट्रीय चेतना प्रधान, सांस्कृतिक चेतना प्रधान, सामाजिक चेतना तथा मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटक पर विश्लेषण किया हे । हिन्दी रेडियो नाटकों के उद्भव से लेकर सन् उन्नीस सौ सत्तर ईसवी तक के रेडियो नाटकों को परिशिष्ट में रखा है ।

अध्याय-चार के अन्तर्गत "दूरदर्शन की नाट्य प्रस्तुतियों" का प्रणयन किया है, जिसमें प्रारम्भ में हिन्दी रंगमंच और दूरदर्शन के धारावाहिकों की चर्चा की है । तदनान्तर लखनऊ दूरदर्शन से प्रसारित कुछ धारावाहिकों और दिल्ली दूरदर्शन से प्रसारित धारावाहिकों का वर्णन है । इस अध्याय के अन्त में दूरदर्शन और विदेशी चैनलों के धारावाहिकों, फिल्मों और गीत संगीत का समाज में पड़ने वाले दुष्प्रभाव को दिखाया गया है ।

अध्याय-पाँच में "मंचित नाटकों" पर केन्द्रित है, जिसके अन्तर्गत मंचित नाटकों के लक्षणों को निबद्ध किया गया है, इसके अतिरिक्त सर्वेश्वर दयाल का 'बकरी' नाटक का नाट्य सौन्दर्य तथा सुरेन्द्र वर्माके 'सूर्य के अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण' नाटक का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य और

शर्मा के 'बहू' नाटक का नाट्य विश्लेषण किया गया है । इसी अध्याय में नुक्कड़ नाटक : परम्परा और प्रयोग भी दिखाया गया हे और अद्भुत में आधुनिक मंचित नाटकों की सूची भी दी है ।

अध्याय- छः में "नाट्य प्रबन्ध का शास्त्रीय विवेचन" है । नाट्य में अभिनय, रूपक के पात्र, नायक नायिका के भेद, नेपथ्य, वस्तु : प्रकार, कथा भाग संवाद, वृतियाँ, अर्ध प्रक्रितियाँ, संधियाँ अंक-भेद,का सांगोपांग व्याख्यापित करने का प्रयास किया गया है । इसके अतिरिक्त नाटकों में द्वन्द्व भी दिखाया गया है तथा नाटक में रस, बोली-भाषा के सन्दर्भ में भी विषद् वर्णन किया गया है ।अध्याय सात में निर्वहण का नियोजन है तथा शोध प्रबन्ध के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत रस भावों को स्पष्ट करने वाले चित्र भी दिये गये हैं । इन चित्रों के भिन्न-भिन्न मुख मुद्रा के माध्यम से रसों को स्पष्ट करने का प्रयास है ।

नाटक का श्रीगणेश करने के सन्दर्भमें कहा जाता है कि ब्रह्मा जी ने चारों वेदों और चारों उपवेदों का स्मरण करके उनसे आठ गुण लेकर पंचम वेद के रूप में 'नाट्य वेद' की सृष्टि की और आशीर्वाद के रूप में ब्रह्मा ने यह भी कहा कि नाट्य 'यज्ञ' के समान फल देने वाला होगा और पूजा की भाँति पवित्र होगा । इसी क्रम में भरत लोगों ने कठोर तप करके गायन, वादन, नर्तन, की त्रिवेणी का सार्वजनिक कल्याणके लिए लोक में प्रवाहित किया । नाट्य-कला की इस सुधामय सरिता ने लोक हृदय को को अल्हाद और आनन्द के रस से अप्लावित किया । नाटक धर्म, जाति, वर्ग तथा प्रान्त के भेदों को भुलाकर सारा लोक इस नाट्य रूपी भगीरथी में आनन्द-महोत्सव मनाता है । सच्चे अर्थों में नाटक सारे देश को भावनात्मक स्तर पर जोड़ता है।

आज ,जहाँ ऐतिहासिक नाटकों में शिल्पगत पुष्टता बढ़ी है वहीं पौराणिक नाटकों में दुहरी भूमिका स्पष्ट दिखती है। एक ओर पुराने सन्दर्भों का स्मरण सम्प्रति वातावरण में प्रकट होता है, तो दूसरी ओर आगे की परिस्थितियों के समझाने के लिए व्यापक, फलक मिल जाता है । प्रेम, विवाह, सेक्स और मनोग्रन्थियों से जुड़े नाटकों में प्यार और सेक्स की जहाँ अनिवार्यता दिखायी पड़ती है । वहीं स्वाभाविक प्रवृत्ति को समाज के नियम, कानून रोकनें में असमर्थ दिखते हैं । प्रतीक प्रधान नाटकों में व्यक्ति की चेतना को नाटककार अमूर्त रूप में व्यापार के प्रसंगों को प्रकट करता है । व्यंग्य नाटकों से आशा की जाती है कि आने वाले दिनों में नाटक अधिकाधिक तीव्र समर्थ और प्रहारक सिद्ध होंगें । हिन्दी-हास्य नाटकों में व्यक्ति के मनोरंजक संस्कारों का विकास हुआ है । नर-नारी सम्बन्ध और व्यक्ति के विखण्डन वाले नाटक नारी मन के महीन सूत्र, मनुष्य के विभक्त वयक्तित्व की त्रासदी, स्त्री-पुरूष सम्बन्ध की नयी परिभाषा, प्रेम और द्वेष के द्वन्द को स्पष्ट करने का प्रयास

किया गया है । साथ ही इनमें पुराण, इतिहास और मिथक के प्रयोगों के सन्दर्भ को उजागर किया है। आजकल नाटकों में बासीपन अधिक दृष्टिगत होता दिखता है । साहित्यकार, नाटककार, समीक्षक, निर्देशक के बीच का समीकरण टूटता सा दिखता है । नाट्य सृजन की दृष्टि से सातवाँ दशक सबसे गर्म ऊष्मा भरा था । सन् 1980 और 1990 के बीच कतिपय अच्छे नाटक प्रकाशित हुए हैं, वरन् अनुवादों को जो महत्त्व दिया गया है,: वह हिन्दी के नव-नाट्य लेखन को नहीं । उन्नीस सौ नब्बे के बाद के नाटक असंगतियों को उजागर करते हुए सचेत करता दिखता है।

'रंगमंच' को जीवन का आईना कहना उसे अति सरलीकृत करना है। वह जीवन को जस का तस, फोटोग्राफी की तरह दिखता है । घोर अंधकार दिखाने के लिए मंच पर माचिस की एक तीली जलानी जरूरी होती है । यदि यह कहा जाए कि 'नाटक' कलाओं में सबसे अधिक नश्वर है तो कहा जा सकता है कि जीवन के सबसे अधिक निकट है । नृत्य और गायन जीवन को कला और सौन्दर्य से अलंकृत करते हैं । नाट्य विद्या तभी तक मंच पर घटित हो जाने के कारण नश्वर है । जब तक उसे अकेले में बेठकर और फिर उसे सोंचने तक सीमित न रखा जाए । हर नाट्य प्रदर्शन इसीलिए 'प्रयोग' होता है । प्रत्येक प्रस्तुति पिछली प्रस्तुति की पिष्टप्रेषण (दोहराव) नहीं होती, उमसें नित नये जीवन स्पंदन हे जो दोहराये जाते हुए भी पिछले मंचन की हूबहू अनुकृति नहीं होते। नाटक इसीलिए संग्रहालय या पुरातत्व की सामग्री नहीं है, क्योंकि वह 'जीवन्त विधा है । सिनेमा क्या अन्य विधायें इसी जीवन्तता के कारण कई दशकों के बाद भी जस की तस रहती है, जैसे:- उपन्यास, फिल्म, चित्र । रंगमंच तो सामूहिक सृजन का माध्यम है । जीवन के परिवर्तन ही रंगमंच के परिवर्तन है । आधुनिक रंगमंच का विकास अत्यन्त उल्साह वर्धक है। रंगमंच की समस्याओं पर दृष्टि पात करें तो रोटी-रोजी का प्रश्न सामने आता है । इसीलिए ऐसे रास्ते ढूँढ़ने होंगें जो रंगमंच को अनिवार्य रूप से व्यवसाय से जोड़े और अजीविका का साधन बने । साथ ही समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाये ।

रंगमंच मानवीय वृत्तियों का नियामक है । वह उन वृतियों को छोड़ता भी है, बाँधता भी है और मुक्त भी करता है । दर्शकों के यह प्रतीति करना कि कवह मंच पर आते आते टकराते हुए पात्रों में अपनी सूरतें निहार सके, एक बड़ी यन्त्रणा और पीड़ा का प्रतिफल है । पीड़ा के इस प्रसव को अभिनेता जितने आनन्द से सहता है उसका परिणाम उतना ही सुखकारी होता है । जैसे:- मंच पर किसी का जन्म हुआ हो ।

रेडियो नाटक श्रव्य माध्यम होने के कारण उसमें (उच्चरित शब्द अथवा ध्वनि प्रभाव संगीत)

ही प्रमुख होती है । रेडियो के स्टूडियो में दर्शक नहीं होता सब किरदार ही होते हैं । जहाँ रंगमंच नाटकों की सीमा होती है- यथा - रंगमंच पर घुड़दौड़, आदि का दृश्य नहीं दिखाये जा सकते, परन्तु रेडियो नाटकों में यह बहुत ही आसान काम है । रेडियो नाटक का अभिनेता साधारण वस्त्रों से काम चला लेता है । पर रंगमंच का अभिनेता साधारण वस्त्रों में (वेश-भूषा) काम नहीं चला सकता । इस तरह रेडियो नाटक स्वतन्त्र कला है । सामाजिक कुरीतियों को आधार बनाकर सामाजिक नाटक रेडियो के लिए उपयुक्त होता है । अतीन्द्र अनुभूमि तथा असम्भाव्य घटना का कल्पना लोक में निर्माण और उसका रेडियो के माध्यम से घटित होते दिखना रेडियो फैंटेसी कहलाता है । रेडियो संगीत नाटकों में गीतों की प्रधानता होती है और गीतों का आधार होता है संगीत । संगीत का आशय धुन से है जो लय, ताल के माध्यम से गेय है । राष्ट्रीय चेतना प्रधान नाटक भारत-पाक युद्ध (1971)ई0 के बाद राष्ट्र की आन्तिरिक चेतना से जोड़कर लिखे गये, जिसमें भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश और असफलता का स्वर प्रमुख है । सांस्कृतिक चेतना प्रधान रेडियो नाटकों में परम्परा और सांस्कृति में नये खून को संचरित करना एक नैतिक आवश्यकता दिखायी पड़ती है। सामाजिक चेतना के रेडियो नाटको में आधुनिक भौतिकता की आपा-धापी का प्रभाव पति-पत्नी के सम्बन्धों की सूचिता पर गहरे रूप में पड़ा है । सम्प्रति रेडियो नाटक भौतिक वादी संस्कृति में स्वस्थ्य मनोरंजन कराने का सबसे सरल और सुलभ साधन सिद्ध हो रहा है ।

रंगमंच और दूरदर्शन के धारावाहिकों की भूमिका एक जैसी है । रंगमंच स्थायी संस्कार निर्माण का विशद् संदेश देता है; किन्तु दूरदर्शन मनोरंजन प्रदान करता है । दूरदर्शन का क्षेत्र व्यापक है, इससे करोड़ों लोग एक साथ मनोरंजन करते हैं । रंगमंच में सीमित लोग (विशिष्ट वर्ग) लाभान्वित होते हैं । आजकल टी0वी0 पर जितने भी धारावाहिक चल रहे हैं या चल चुके हैं, उनमें से अधिकतर का मूल विषय पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित है । प्रायः मुख्य चरित्र विवाहेत्तर सम्बन्धों के इर्द-गिर्द घूमते नजर आते हैं । राष्ट्रीय भावना पर केन्द्रित कुछ ही धारावाहिक आये हैं । पौराणिक और ऐतिहासिक धारावाहिक जैसे - रामायण, महाभारत, कृष्णा, चाणक्य, जय वीर हनुमान आदि अवश्य उत्कृष्ट कोटि के धारावाहिक हैं । अधिकाँश धारावाहिक मनोरंजन और ज्ञानवर्धन के नाम पर कोरी कल्पना अश्लील और अपसंस्कृति से भरे धारावाहिक आ रहे हैं, जो अपराधिक भावनाओं की श्री वृद्धि ही करते हैं, जिससे विशेष रूप से युवा वर्ग में नैतिक चरित्र पतन में निरन्तर वृद्धि हो रही है ।

अगर यह कहें कि अधिकतर धारावाहिक हमारे देश की गंगा-जमुनी संस्कृति को

पशिचमी उपभोक्ता वादी संस्कृति में धीरे-धीरे बदलते दृष्टिगोचर हो रहे हैं तो यह कथन उचित ही है । सम्प्रति स्वस्थ्य मानवीय मूल्यों, राष्ट्रीय एकता, जाति-धर्म से ऊपर उठकर शिक्षा प्रद स्वस्थ्य मनोरंजन युक्त धारावाहिकों की आवश्यकता है। इस कार्य को नाटक कार, निर्देशक, कलाकार, संगीतकार, साहित्यकार लोग अच्छी प्रकार से कर सकते हैं ।

हिन्दी के मंचित नाटक ही जो शास्त्र का अंधानुकरण नहीं करते उसके अखिल भारतीय वैश्विक रूप है, उसका स्वायत्त और लोकधर्मी पक्ष हे, उसका मुक्ति पूर्व है तो उसकी शास्त्रीयता अनुष्ठान धर्मी है । मंचित नाटक ही कलाकार, अभिनेता का दर्शकों, श्रोताओं का सीधा साक्षात्कार कराता है । कहानी, कविता, उपन्यास आदि विधाओं में लेखक व पाठक इस तरह का सीधा आमना-सामना नहीं होता न ही किरदारों की सीधे दर्शकों से जवाब देही होती है । पढ़ी जा रही पुस्तक का पन्ना मोड़कर आप कुछ देर बाद फिर से पढ़ना शुरू कर सकते हैं । नाट्य कर्म यह सुविधा नहीं देता, उसे पूरा देखना है या फिर बीच में छोड़कर चले जाना पड़ता है । नाट्य कर्म चले गये दर्शकों की प्रतीक्षा नहीं करता चूँकि स्वयं में एक निरन्तरता है, जिससे सब देखते हैं 'वह किसी को नहीं देखती ।

प्रदर्शन करता प्रायः सभी कलाओं का प्रदर्शन, प्रदर्शन स्थल पर जिस सच का भ्रम पैदा करती है उसके लिए 'एकचुएलिटी' और 'ट्रुथ' के बीच में से गुजरना पड़ता है, जिस तरह कोई गायक खुद को सुनते हुए ही बेहतर गा सकता है, उसी तरह मंच पर स्वयं को न देखता हुआ अभिनेता बेहद असहज और अस्वाभाविक लग सकता है। नाटक में यह काम जटिल होता है । मंच में प्रवेश करने से पहले अभिनेता को अपनी भूमिका की नियति ओढ़नी पड़ती है । अपने अन्दर के अतिरिक्त अपने किसी और को देखने का 'भ्रम' बिना सच से गुजरे नहीं रचा जा सकता । अभिनेता के लिए मंच पर किसी दूसरे व्यक्ति को जीना उसकी अपनी मृत्यु का अनुष्ठान है । स्वयं को विसर्जित करके किसी और को जीवन देना कोई तपःभूत अभिनेता ही कर सकता है ।

मनुष्यों के मूल भावों में रति, उत्साह, क्रोध, शोक, उद्भूत करने एवं आस्वादनीय आनन्दमयी चेतना की सृष्टि करने की क्षमता नाटक में होती है । रस के माध्यम से पात्रों के चरित्र को निरूपित करने में सहायता मिलती है । नाटक की 'भाषा' केवल शब्द नहीं है, वह भाषा के दूसरे अवयवों पर परस्पर अवलम्बित एवं सम्प्रेषणीय होती है । नाट्य भाषा परिवेश, स्थितियों और पात्रों के साथ उनके माध्यम से नाट्य अनुवाद करती है । इस तरह नाट्य भाषा यथार्थ का आभास कराती है । एक प्रकार

से नाट्य विधा जीवन से कहीं अधिक एक प्रकार से नाट्य विधा जीवन से कहीं अधिक एक आत्मा का नाम है जो अजर है, अमर है । भरत ने नाट्य शास्त्र में नाट्य के सन्दर्भमें सत्य ही कहा है -----

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न सौ योगे न तत्कर्म नाटयेऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।।

(भरत का नाट्य शास्त्र - 1 - 116)

हिन्दी विभाग, (इलाहाबाद विश्वविद्यालय) के गुरूवर डॉ० जगदीश गुप्त, डॉ० रघुवंश, डॉ० राम स्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० मोहन अवस्थी, डॉ० आशा गुप्ता, डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा, श्री दूधनाथ सिंह, डॉ० मीरा श्रीवास्तव, डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह, डॉ० मालती तिवारी (अध्यक्षा), डॉ० सत्य प्रकाश मिश्र, डॉ० राजेन्द्र कुमार, डॉ० रामकमल राय, डॉ० रूद्र देव, डॉ० राम किशोर शर्मा, डॉ० शैल पाण्डेय, डॉ० मीरा दीक्षित, श्री बृज कुमार मित्तल, डॉ० अनुपम आनन्द आदि गुरूजनों का हृदय से आभारी हूँ ।

अन्य विद्वानों में 'नटरंग' प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री नेमीचन्द्र जैन, नटरंग के सह सम्पादक श्री महेश आनन्द एवं संग्रहालय प्रमुख डॉ० शिव नारायण खन्ना, डॉ० गिरीश रस्तोगी (गोरखपुर विश्वविद्यालय), डॉ० कृष्ण चन्द्र वर्मा (ग्वालियर), डॉ० विश्वनाथ मिश्र (लखनऊ), श्री शिवाकान्त मिश्र (प्राध्यापक - डेंडासई - फ़तेहपुर), डॉ० सुरेश चन्द्र शुक्ल (बिलासपुर), डॉ० सतेन्द्र तनेजा (दिल्ली), डॉ० बालेन्द्र शेखर तिवारी (राँची विश्वविद्यालय), डॉ० विश्वभावन (जबलपुर - मध्यप्रदेश), निर्देशक योगेश पन्त (भारतेन्दु अकादमी लखनऊ), लक्ष्मी कान्त वर्मा (इलाहाबाद) के प्रति भी मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने "पत्रों" के माध्यम से सुझाव दिया, जिससे मुझे शोध-कार्य करने में सहायता मिली ।

मित्रों में डॉ० प्रदीप कुमार सिंह, (साउथ इण्डियन एजूकेशन सोसाइटी कालेज आफ आर्ट, साइंस, कार्मस- महाराष्ट्र), डॉ० गया प्रसाद गुप्ता, श्री सुधीर कुमार सिंह, कुमारी मौसमी घोस (शोध छात्र/छात्रा इलाहाबाद विश्वविद्यालय), कुमारी हरबिन्दर कौर (शोध छात्रा इलाहाबाद विश्वविद्यालय), श्री रमेश कुमार सिंह (शोध छात्र इ० वि० वि०), श्री राजेश श्रीवास्तव (प्रति उप विद्यालय निरीक्षक), श्री विनोद जायसवाल (प्राध्यापक - दिल्ली), श्री राम पाल गंगवार (प्रवक्ता सी.एम.पी.डिग्री कालेज, इलाहाबाद), श्री दिवाकर जायसवाल, श्रीमती आभा त्रिपाठी (शोध छात्रा इ०वि०वि०इला०) के प्रोत्साहन एवं शुभकामनाओं के लिए सभी मित्रों को धन्यवाद देता हूँ ।

मेरे शोध प्रबन्ध का अधिकाँश इलाहाबाद विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी, हिन्दी-परिषद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (विशेष रूप में), उत्तर मध्य सांस्कृतिक केन्द्र-इलाहाबाद, केन्द्रीय पुस्तकालय-

इलाहाबाद के अध्ययन कक्ष में सम्पूर्ण हुआ । इसके लिए इन स्थलों के अध्यक्षों एवं उनके साथियों और विशेषकर उन कार्यकर्ताओं के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जो पुस्तक वाहक कहे जाते हैं ।

मैं अपनी दादी माँ स्वर्गीया पार्वती देवी (जिनका 12 जून 1996ई0 को स्वर्गवास हो गया) को श्रद्धावत् नमन करता हूँ, जो सदैव मुझे उच्च शिक्षा हेतु प्रोत्साहित करती थीं । चाची - श्रीमती सरला देवी (सभासद नगर निगम इलाहाबाद), चाचा- श्री मोहन लाल श्रीवास्तव का भी हृदय से आभारी हूँ, आपके घर में (231 जे/3, सुल्तानपुर भावा, इलाहाबाद)में रहकर बी0ए0, एम0ए0 एवं शोध कार्य सम्पन्न हुआ । बहन- श्रीमती सुनीता श्रीवास्तव एवं जीजाश्री डॉ0 सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, बड़े भाई श्री महेन्द्र कुमार, माँ- (श्रीमती कृष्णा देवी), पिताश्री (डॉ0 अनिरूद्ध प्रसाद) के श्री चरणों में सावनत् प्रणाम करता हूँ । आप लोगों का प्यार, प्रोत्साहन एवं आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा । मुझे अपने अध्ययन काल में अर्थ का संकट कभी नहीं उत्पन्न हुआ । पिताश्री श्री अनिरूद्ध प्रसाद श्रीवास्तव ने प्रारम्भ से शोध कार्य तक यथासम्भव अर्थ का भार उठाया है । आपके श्री चरणों में कोटि-कोटि नमन् है । धैर्यता के साथ उत्कृष्ट कोटि का शोध कार्य करने के लिए बड़े भाई श्री महेन्द्र कुमार, श्री विनोद कुमार श्रीवास्तव (अधिवक्ता- इलाहाबाद) एवं श्री इन्द्र कुमार श्रीवास्तव (बच्चन चाचा जी)समय-समय पर प्रेरणा देते रहें हैं, मैं इन लोगों को भी सादर-प्रणाम के साथ आभार ज्ञापित करता हूँ ।

अन्त में शोध-प्रबन्ध विद्वानों के समक्ष रखते हुए क्षमापूर्वक निवेदन करता हूँ कि यथा सम्भव सुधार एवं परिश्रम करने पर भी शोध प्रबन्ध में त्रुटियाँ अवश्य रह गयी होंगीं, क्योंकि कोई भी कार्य कभी भी त्रुटि हीनता का दावा नहीं कर सकता । ज्ञान का क्षेत्र अनन्त है और उसके विस्तार मनन् तथा चिन्तन की अनन्त सम्भावनाँए हैं, इसलिए शोध कर्ता केवल इतना ही कह सकता है । मैं पुनश्च उन सभी गुरूजनों साहित्यकारों, निर्देशकों, नाटककारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनकी मुझे सहायता मिली । एक बार फिर से आत्मीय पूज्य जन, मित्रगण, माता-पिता, भइया भाभी एवं छोटे भाईयों की शुभकामना, प्रोत्साहन और सहायता के लिए सबको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ ।

सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

एम0ए0, (हिन्दी), एल0टी0

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अध्याय – एक

नाटक

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
ना सौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्नदृश्यते[1] ।।

कोई ज्ञान, कोई शिल्प, कोई विद्या, कोई कला, कोई योग तथा कोई कर्म ऐसा नहीं है, जो नाट्य में दिखाई न देता हो ।

अध्याय – एक

नाटक

भारत वर्ष में नाट्य साहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन है, इसका मूल उत्स वेदों में मिलता है और "भरतमुनि" के "नाट्य शास्त्र"से नाटकों का सुनिश्चित वैज्ञानिक विधान उपलब्ध होने लगता है । संस्कृत नाट्य साहित्य परम्परा विश्व विश्रुत है । भारतीय इतिहास के मध्य युग में यह परम्परा कमजोर हो गयी थी।[1] नाटक में काव्य, कला और संगीत तीनों का ही समावेश है । क्लासिकल और पारम्परिक नाटकों के पार्श्व में आधुनिक नाटकों का अविर्भाव हुआ । विज्ञान के प्रभाव से ऐसा होना अवश्यम्भावी था । विज्ञान ने जीवन दृष्टि में ही बदलाव उपस्थिति नहीं किया, अपितु जीवन – पद्वति में परिवर्तन ला दिया[2] । सोचने विचारने के ढंग से लेकर रहन–सहन की रीति –नीति में भी अन्तर दिखाई देने लगा । अलौकिक घटनाएं, लौकिक धरातल की ओर उन्मुख हुई । दैवी प्रेरणा मानवी प्रभाव के दायरे को स्पर्श करने लगी । अब मानव नियति के दायरे से निकल कर अपने क्रिया–कलापों का नियामक स्वयं अपने को समझने लगा । वह अपना भाग्य –विधाता स्वयं बन बैठा । इसकी छाया और छाप भारतेन्दु – युग के नाटकों से लेकर वर्तमान –युग के नाटकों पर गहराती चली आई है ।

नाटक पौराणिक हों या सामाजिक, राजनैतिक हों या ऐतिहासिक, प्रतिकात्मक या रोंमाचक अथवा अन्य कोई, सभी पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ा है । नाटक को साहित्य की एक मुख्य

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ0 76

2. अभिनव हिन्दी निबन्ध – डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव , पृ0 11

विधा मानकर जिन्होंने अपनी लेखनी चलाई है , इस दिशा में उन नाटककारों का अधिक योगदान है जो आदर्शोन्मुख यथार्थ के अधिक निकट रहे हैं । नाटकों में नैतिकता-स्वर मुखर है और विकृत तथा विरूपता की अपेक्षा सदाचार तथा सुरूचि – सम्पन्नता को उजागर करने का यत्न किया जाता है। लोक रूचि का परिष्कार करने की ओर नाटककारों का ध्यान केन्द्रित रहा है । वास्तव में नाट्य साहित्य जीवन का दर्पण ही नहीं , 'दीपक' भी है । मानव जीवन को ही उसका प्रमाण परिधि मानकर साहित्यकार उसमें सर्जनात्मक शक्ति का संचार करता है । संस्कृत साहित्य में नाटक की गणना काव्य विधा के अर्न्तगत की गयी है , किन्तु हमारे प्रमुख नाटककारों ने उसे नृत्य, संगीत, संवाद और अभिनय से युक्त ठहराया है ।

हिन्दी नाटकों का प्रारम्भिक समय

हिन्दी नाट्य रचना की दृष्टि से उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध महत्वपूर्ण है । इसी समय अंग्रेजी साहित्य से भी सम्पर्क हुआ साथ ही भारतीय पुनरूत्थान की भावना से प्रेरित होने के फलस्वरूप हिन्दी के साहित्यकारों ने नाट्य रचना की ओर ध्यान दिया, जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् 1850 – 1885 ई0) अग्रगण्य रहें; मौलिक और साहित्यिक नाट्य परम्परा में हिन्दी के प्रथम नाटककार " भारतेन्दु हरिश्चन्द्र " ही हैं और उनका " वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति "(1873 ई0 हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक कहा जा सकता है । कुछ आलोचकों के अनेक त्रुटियों के बावजूद भी रींवा नरेश विश्वनाथ सिंह (1789–1854 ई0) के "आनन्दरघुनन्दन" को हिन्दी का प्रधान मौलिक नाटक स्वीकार किया है । ब्रजभाषा में ही " भारतेन्दु जी " के पिता "गोपालचन्द्र " का "नहुष" (1841 ई0) मिलता है; , पर 'खड़ी बोली' में युग बोध के साथ मंचीय तत्वों के समावेश

के साथ आधुनिक नाटकों की प्रथम संरचना का श्रेय भारतेन्दु को ही है।

हिन्दी नाटकों के विकास में बंगला नाट्य साहित्य के अलावा पारसी थियेटर कम्पनियों के प्रभाव से भी इंकार नहीं किया जा सकता । सन् 1870 ई0 के आस-पास सेठ पेस्टन जी फ्रेमजी ने "ओरिजिनल थियेट्रिकल कम्पनी " खोली और खुरशेद बल्लीवाला ने " विक्टोरिया कम्पनी " इन कम्पनियों ने हिन्दी को रंगमंच और साथ ही कई लेखक भी दिये। आगाहश्र काश्मीरी, बेताब , जौहर आदि लेखकों का भी हिन्दी रंगमंच के प्रचार-प्रसार में कम महत्व नहीं है । राधेश्याम कथावाचक के धार्मिक नाटक भी लोकप्रिय हुए ।

हिन्दी - नाटक का प्रारम्भ राष्ट्रीय और सामाजिक जागरण से जुड़ा हुआ है ।[1] अतः प्रायः सभी प्रारम्भिक नाटककार सोद्देश्य नाटक लिखे । भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी नाटक-कारों ने पौरागणिक , ऐतिहासिक, राष्ट्रीय , सामाजिक ,व्यंग्यात्मक नाटकों की रचना की । पौराणिक नाटकों में " रामायण और महाभारत " को आधार बनाकर प्राचीन भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा स्थापित की गयी । ऐतिहासिक नाटकों में "जाति - प्रतिष्ठा " एवं " स्वाभिमान " का स्वर मुखर हुआ । राष्ट्रीय नाटकों में अंग्रेजी राज्य की अपेक्षाकृत सुव्यवस्था एवं सुशासन के बावजूद " देश की दुर्दशा " का चित्रण करके "देश भक्ति " की प्रेरणा दी गयी । सामाजिक नाटकों में "सामाजिक कुरीतियों " को दूर करने एवं समाज - सुधार का प्रयत्न दिखाई पड़ता है ।[2]

---

1. आधुनिक हिन्दी नाटक - सुरेश चन्द्र शुक्ल , पृ0 21

2. आधुनिक हिन्दी नाटक - एक यात्रा दशक - नर नारायण राव, पृ0 39

भारतेन्दु ने "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" , " नीलदेवी" (1880 ई0), "सत्य हरिश्चन्द्र" , "भारत दुर्दशा"," भारत जननी","विषस्य विषमौषधम् " आदि चौदह मौलिक नाटकों की रचना की और मुद्रा राक्षस जैसे कुछ नाटकों का अनुवाद भी किया ।

भारतेन्दु युगीन अन्य प्रमुख नाटक कारों में निम्न प्रमुख हैं – श्री निवास दास :– "रणधीर प्रेम मोहिनी ", "संयोगिता स्वयंक्षर " (1885 ई0),"ताप्ता संवरण", "प्रहलाद–चरित्र"।

राधा कृष्णदास :–पदमावती (1882 ई0), महाराणा प्रताप, दुखिनीबाला (1879 ई0)

पं0 बद्री प्रसाद प्रेमघन :– "भारत सौभाग्य "

प्रताप नारायण मिश्र :– "हठी हमीर " (1885 ई0),"गो संकट ", "कलि–कौतुक आदि

बालकृष्ण भट्ट – "नलदमयन्ती स्वयंवर," "बृहन्नला", "बेणु संहार," "जैसा काम वैसा परिणाम ", "पदमावली", बाल–विवाह","प्रानिष्ठा ", "रेल का विकट खेल "

काशी नाथ खत्री – "सिंधु देश की कुमारियाँ (1889 ई0) ,गुन्नौर की रानी आदि ।

पं0 राधाचरण गोस्वामी : – "सती चन्द्रावली " (1889) ए" अमर सिंह राठौर " (1895) आदि।

किशोरी लाल गोस्वामी :– " मयंक मंजरी" ।

बाबू गोकुलचन्द्र :– "बूढ़े मुँह मुहासे, लोग चले तमाशे "।

गदाधर भट्ट :– "मृच्छकटिक " ।

बद्री नारायण चौधरी :– " वारांगना रहस्य " ।.

अम्बिकादत्त व्यास :– "लतिका नायिका", "वेणी संहार ", गो संकट "आदि । इनके अलावा शिवनन्दन सहायक, दमोदर शास्त्री , देवकीनन्दनक त्रिपाठी आदि ने भी नाटकों की रचना की ।

इन मौलिक नाटकों के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला नाटकों के अनुवाद किये

गये । राजा लक्ष्मण सिंह ने "शाकुन्तलम् ", भारतेन्दु ने "मुद्राराक्षस", बाबू तोताराम ने "केटो–कृतान्त" जैसे नाटकों का अनुवाद किया । पं0 रूप नारायण पाण्डेय ने बंगला नाटकों के अनुवाद किये । लाला सीताराम "भूप", संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया । पं0 सत्य नारायण 'कविरत्न' ने भवभूति के "उत्तर रामचरित" का "मालती माधव " के "नाम बहुत सुन्दर" का सरस अनुवाद किया । बाबू गंगा प्रसाद ने शेक्सपियर के बहुत से नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया । इन अनुवादों से भी हिन्दी नाटक के विकास में पर्याप्त मद्त मिली ।

माधव शुक्ल ने "महाभारत" और मिश्र बन्धुओं ने "नेत्रोन्मलिन" नाटकों की रचना की । माखन लाल चतुर्वेदी का "कृष्ण अर्जुन युद्ध" और मैथली शरण गुप्त का "चन्द्रहास"भी अत्यधिक प्रासद्धी पायी । इस प्रकार इसे हिन्दी नाटक का संक्रांति काल कहना उचित होगा । इसी समय अंकों एवं दृश्यों की संख्या कम हो गयी । "पद्यों का स्थान गद्य ने लिया । धर्म और अप्राकृत घटनाओं के स्थान पर यथार्थवादी सामाजिक एवं ऐतिहासिक विषय लिये गये । इस तरह अस्मिता की पहचान, राष्ट्रीय चेतना का विकास और सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य से विभिन्न नाटकों की रचना की गयी ।[1]

संदर्भ– संकेत

प्रसाद पूर्व हिन्दी नाटक पृ0 67

डॉ0 परमलाल गुप्त

"जयशंकर प्रसाद के समय के हिन्दी नाटक "

जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटक को नये चरित्रों नई घटनाओं , नये ऐतिहासिक देश–काल और नये लक्ष्यों से जोड़ते हुए नाट्य सर्जना का नवीन शुभारम्भ किया । निर्विवाद तौर पर जयशंकर प्रसाद ने अपने युग के अग्रणी रंग–शिल्पी थे । उन्होंने सज्जन (1910 ई0) कैसे अपनी नाट्य यात्रा आरम्भ की थी । कल्याणी परिणय (1912 ई0) , करूणालय (1913 ई0) और प्रायश्चित(1914 ई0), राजश्री (1915 ई 0) बिशाख (1921 ई0) अजातशत्रु (1922 ई0) जनमेजय का नागयज्ञ (1926 ई0) , कामना (1926 ई0) , स्कन्द गुप्त (1928 ई0) , एक घूँट (1929 ई0) ,चन्द्रगुप्त (1931ई0) , ध्रुवस्वामिनी (1934 ई0) में " प्रसाद " के नाटकीय प्रतिभा के वैभव और सौष्ठव का विकास हुआ । इन सभी नाटकों की रचना "प्रसाद" ने एक निश्चित लक्ष्य सामने रखकर की थी । इनका लक्ष्य था भारतीय संस्कृति के गौरव का आख्यान ।

वास्तव में उनके नाटक भारतीय इतिहासमें संस्कृति के कोष कहे जा सकते हैं । उनके सभी नाटकों में "देश प्रेम " का विस्तार है । प्रायः सभी नाटकीय पात्रों में "मानवीय –प्रेम " की उत्तेजना व्याप्त है । इस प्रकार इनके नाटक कथानक प्रधान न होकर चरित्र प्रधान नाटक हो जाते हैं [1]। कुछ समीक्षकों के अनुसार इनके नाटकों के बड़े आकार ,भाषा की साहित्यकता , संवादों की दीर्घता ,गीतों के बाहुल्य ,दृश्य विधान की कठिनाई, आकस्मिक घटनाओं की उपस्थिति आदि के कारण प्रसाद के नाटक रंगमंच की दृष्टि से लगभग बहुत कुछ असफल सिद्ध मानते हैं ; लेकिन यदि नाटकों को उचित रंग निर्देश तथा संशोधन के साथ मंचित किया जाये तो सम्भवतः

---

1. प्रसाद कथा साहित्य – गिरीश रस्तोगी आदि पृ0 29

प्रसाद के नाटक इस आरोप से अवश्य मुक्त हो सकते हैं ।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नाटकों की जिस परम्परा को प्रसाद ने स्थापित किया उसमें, बद्रीनाथ भट्ट, सुदर्शन , माखन लाल चतुर्वेदी, माधव शुक्ल , वियोगी हरि, विश्वम्भर नाथ शर्मा "कौशिक" जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, गोविनद बल्लभ पन्त ,रूप नारायण पाण्डेय जैसे नाटककारों ने योगदान दिया । वियोगी हरि के "छदम योगिनी " (1923 ई0) ,विश्वम्भरनाथ कौसिक के "भीष्म" (1918 ई0) ,द्वारका प्रसाद गुप्त के "अज्ञातवास" (1921 ई0) ब्रजनन्दन सहाय के "सत्यभामा " (1930 ई0) गोविनद बल्लभ पन्त के " राजमुकुट" (1935 ई0) ,जगन्नाथ प्रसाद निचिन्द के " प्रताप प्रतिज्ञा " (1928 ई0) जैसे ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से प्रसाद युगीन संस्कृति धर्मी नाट्य परम्परा का स्वरूप सामने आया ।

प्रसाद जी ने " सज्जन " और प्रायश्चित नाटकों के माध्यम से समसामयिक सामाजिक नाटकों की रचना की । इसी बीच सामाजिक नाटकों में सुदर्शन के नाटक " ऑनरेरी मजिस्ट्रेट " (1927 ई0) राम नरेश त्रिपाठी "बफातीं चाचा " (1927 ई0) रामदीन पाण्डेय के "ज्योलना" (1924 ई0) और रूप नारायण पाण्डेय के "प्रायश्चित " (1928 ई0) , प्रेमचन्द ने "संग्राम" ,"कर्बला", (1924 ई0) और "प्रेम की पीर " ये सभी नाटक सामाजिक बोध एवं सामाजिक चेतना की दृष्टि से लिखे गये थे । प्रसाद ने "करूणालय" में जिस गीति नाट्य– शैली को आगे बढ़ाया , उसे मैथलीशरण गुप्त ने "अनघ" (1925 ई0) द्वारा विकसित किया ।[1] इस प्रकार प्रसाद

सन्दर्भ संकेत :

1. काव्य कला और अन्तनिबन्ध ,पृ0 37

जयशंकर प्रसाद

जी ने नाट्यक्षेत्र में अपनी उपलब्धियों से जो परिवर्तन उपस्थित किया उन परिवर्तनों को आगे बढ़ाने का श्रेय उनके समय के नाटक कारों को जाता है ।

"सन् उन्नीस सौ पैंतीस से उन्नीस सौ सत्तर तक के प्रमुख हिन्दी नाटक "

प्रसादोत्तर नाटकों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि उस युग में परम्परा और प्रयोग की दो अलग अलग धाराएं स्पष्ट हैं । यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो प्रसाद काल में ही धीरे – धीरे नाटक-विधा दृश्य के बजाय पाठ्य होती दिखाई देती है। सेठ गोविन्द दास तथा लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक – उदाहरणार्थ देखे जा सकते हैं । बाद के नाटक कारों ने इसे प्रवृत्ति में परिवर्तन किया और अपने नाटकों को रंगमंच से जोड़ने का प्रयत्न किया । ऐसे नाटककारों में उपेन्द्र नाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर, भुवनेश्वर आदि उल्लेखनीय हैं । इन नाटककारों ने नाटक को दृश्य बनाने हेतु लम्बे नाटकों की जगह छोटे नाटकों की रचना की । इस युग के नाटकों में भी स्वाधीनता के प्रति सक्रिय प्रयत्न ,बलिदान– भावना, हिन्दू – मुस्लिम एकता विशेष रूप से उल्लेखनीय है । नवीनता इस बात में हैं कि उन्होनें वर्तमान जीवन की दैनिक ,आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया । मजदूर, किसान, अध्यापक, नेता, वकील, डॉक्टर आदि को नाटकों के 'नायक' आदि का स्थान मिला । नाटक- काल्पनिक दुनिया से हटकर जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध हुआ और पात्र चरित्र चित्रण , भाषा – भेषभूषा आदि में सामान्य जीवन का बोध होने लगा ।[1] नाटकों में प्राय: 'तीन अंक' रखने की परिपाटी चल पड़ी । गीतों को कम या फिर हटा दिया गया । संकलन त्रय का विधान भी शिथिल हो गया । 'मिश्र जी' के नाटक "सिन्दूर की होली ", "मुक्ति का रहस्य", "राक्षस का मन्दिर ", आदि नाटकों का अभिनय 'ढाई–तीन' घण्टों में पूर्ण होने लगा । धार्मिक रूचि के नाटकों के प्रति रूझान कम हुआ और समसामयिक समस्याओं की ओर लेखकों ने ध्यान दिया । इस युग का प्रतिनिधित्व लक्ष्मी नारायण

---

1. डॉ0 दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक, पृ0 371

मिश्र करते हैं , इसलिए कुछ विद्वानों ने प्रसादोत्तर युग को 'मिश्र युग' की संज्ञा भी दी है ।[1]

एकांकी ,अनेकांकी ,रेडियो नाटक, गीति नाट्य, प्रतीकात्मक नाटक, संगीत नाट्य, एक पात्रीय नाटक, झाँकी ,लघु नाटक, आदि नवीन तकनीकियों के विकास में प्रयास भी इस क्षेत्र में होने लगे । श्री सुरेश शुक्ल ने इस प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए लिखा है –" रंग संकेतों का नाटक में अधिक महत्व प्रदान करने के परिणामस्वरूप नाटक और रंगमंच को अन्योन्याश्रित और पर्याय रूप में प्रसादोत्तर युगीन नाट्यकारों ने स्वीकार किया ।[2] वस्तुतः इस युग का नाट्य – साहित्य, युग की बदलती भावनाओं के अनुरूप एक नया तेवर लेकर उपस्थित हुआ ।

धार्मिक प्रवृत्ति प्रधान नाटककारों में सेठ गोविन्द दास, हरिकृष्ण, प्रेमी प्रमुख हैं । विभिन्न देवी – देवताओं ,धर्म प्रचारकों और धर्मानुयायी एवं संतों राष्ट्रीय महापुरूषों आदि को आधार बनाकर नाट्य – रचनायें आरम्भ हुई । ऐसे नाटकों में "राधा", "सगर विजय ", कमत्स्य गंधा", "कर्ण", "श्रीराम", "सीताराम","गंगा का बेटा", "नल –दमयन्ती", "देवयानी", "श्रवण कुमार ", "नारद की बीणा", "सुदामा", "शिव:-साधना ", "गरूण ध्वज", आदि उल्लेखनीय हैं । इन धर्म प्राधान नाटकों में धर्मकी परम्परित और "रूढ़िवत् व्याख्या नहीं हुई है । धार्मिक पुनरूत्थान और उनके पुनर्मूल्यांकन के लिए ही इन नाटकों की रचना हुई है ।

---

1. भारत भूषण: चड्डा, लक्ष्मी नारायण लाल मिश्र के सामाजिक नाटक पृ0 27

2. हिन्दी नाटकों का रूप विधान और वस्तु विकास– डॉ0 चन्द लाल दुबे ,पृ0 217

पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंगों पर लक्ष्मी नारायण मिश्र , जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्र नाथ अश्क, विनोद रस्तोगी , चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, बेचन शर्मा उग्र, वृन्दावन लाल वर्मा आदि नाटककारों ने इन प्रवृत्तियों के आधार पर अपने नाटक लिखें । इनमें मुख्य नाटक हैं = "शशि गुप्त " के"रानी भवानी ", राखी की लाज ", "पाकिस्तान", "प्रतिशोध" ,स्वप्न भंग, "आहुति","विषपान", "संयोगिता", ' "झाँसी की रानी ", धरती माँ आदि नाम आते हैं ।[1]

सामाजिक नाटकों में शोषण, शासक –समाज स्वार्थ, वर्ण –व्यवस्था, नारी शोषण, विवाह, दहेज आदि पर विशेष ध्यान दिया गया । सेठ गोविन्ददास ने "गरीबी या अमीरी" पर सामाजिक उत्पीड़न का चित्र खींचा है । वृन्दावन लाल वर्मा ने भी " धीरे-धीरे " में गरीबी शोषण का चित्र खींचा हैं । राधेश्याम कथा वाचक के "महर्षि बाल्मीकि "नाटक में इन सामाजिक विसंगतियों का रूप उभरा है । अन्य नाटकों में मुख्य हैं :– " आधी रात ", "राक्षस का मन्दिर ", "डिक्टेटर ", "सन्यासी", " प्रेम या पाप " , "स्वर्ग की झलक", "कैद ओर उडान, "छोटा बेटा", सगाई ", " आजादी के बाद "आदि उल्लेखनीय हैं । तत्कालीन परिस्थितियों के तकाजे के अनुरूप इन नाटकों में सामाजिक जागरण पर विशेष बल दिया गया ।

मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक विचार धारा प्रधान नाटकों में "चुम्बन ", "त्याग या ग्रहण", "कैद और उड़ान", "दुविधा", "पाप की प्यास", "स्वप्न भंग" ,"उद्धार", "भंवर", "अंजोदीदी", "अलग – अलग रास्तें, "कुलीनता", "वरमाला", आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

---

1. समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच – जयदेव तनेजा , पृ0 67

कथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति हेतु नये प्रतीक, उपमान , बिम्बों के साथ फ्लैश – बैक , चेतना प्रवाह आदि शैलियों का इस युग में सफल प्रयोग किया गया ।

" सन् उन्नीस सौ सत्तर ई0 से अब तक के प्रमुख नाटक "

सुरेन्द्र वर्मा का "द्रोपदी" गिरराज किशोर का " नरमेघ", मुद्राराक्षस का "तिलचट्टा", मृदुला गर्ग का " एक और अजनबी ", दया प्रकाश सिन्हा का "कथा एक कंस की " , शान्ति मेहरोत्रा का "ठहरा हुआ पानी" , रामेश्वर प्रेम का "चारपाई", ना0ग0 बोड्स का "कृति –विकृति ,ज्ञानेन्द्र पति का " एक चक्रानगरी", विनोद वर्मा का "खेलघर ", विनोद शाही ", झूठ–पुराण,"[1] अनुपम आनन्द का " पक्ष विपक्ष " , ललति मोहन थपल्याल का " अलग अलग राहें " इत्यादि नाटक सन् 1987 ई0 तक काफी लोकप्रिय हुए हैं ।

अनिल चौधरी का नाटक " अब तक क्या किया ", असगर वजाहत का "वीर गति", डरपिन्दर भाटिया का "माया जाल" ,एस0एल0 भैरप्पा/ प्रतिभा अग्रवाल का "वंशवृक्ष कुसुम कुमार का "रावण लीला", गिरीश कारनाड/ ब0व0 कारन्त का "हयवदन " , ज्योतिरीश्वर इन्दुजा अवस्थी का " धूर्त समागम", नन्द किशोर आचार्य का "देहान्तर", बर्टोल्ट ब्रैश्टका नाटक "हाथी का बच्चा " , बलराज पंडित का " पाँचवां सवार"[2] बादल सरकार का "बाकी इतिहास" (पहला अंक), बोधायन/ नेमिचन्द्र जैन का " भगवदज्जुकम ", भारत भूषण अग्रवाल का "उरूभंग"

---

2. आज के हिन्दी रंग नाटक – सं0 अल्का जी, पु0द0 देश पाण्डेय सुरेश अवस्थी ,पृ0. 1

भुवनेश्वर का आदमखोर "[1] , मणि मधुकर का "रस– गन्धर्व ", मधु राय/ज्योति व्यास का "किसी एक फूल का नाम लो", मन्नू भांडारी .का " बिना दीवारों का घर " , महेन्द्र विक्रम/ नेमिचन्द्र जैन/ उर्मिगुप्ता का " मन्तविलास" मृणाल पांडे का " जो राम रचि राखा " , मोहित चटर्जी/ सान्त्वना. निगम का " गिनीपिग", राघव प्रकाश का " तीसरा मचान", राजेश जोशी का "जादूगर-जंगल", रामेश्वर प्रेम का नाटक "चारपाई ", ललित मोहन थपल्याल का " कल्पना के खेल", लंकेश / ब0व0कारन्त का"परतें " , लाभशंकर ठाकुर/नेमिचन्द्र जैन का "वृक्ष" , अनिरूद्ध प्रसाद श्रीवास्तव का "साक्षरता", उपेन्द्र नाथ अश्क का " लौटता हुआ दिन " , के0 चटर्जी का " हम सब हिन्दुस्तानी हैं ", शैलेन्द्र श्रीवास्तव का " दी डेयरिंग केन्टसी " , एल0के0सिंह का " सिहांसन खाली है ", के0पी0 सक्सेना का " हडप्पा हाउस", दिवाकर जायसवाल (राजन) का " पुरूषार्थिन", विपिन कुमार अग्रवाल का " लोटन " , विष्णु प्रभाकर का " देवी "[2] , शंकर शेष का " एक और द्रोणाचार्य ", शांति मेहरोत्रा" ठहरा हुआ पानी " श्री रामशर्मा " नन्हें कंधे नन्हे पैर " , श्री लाल शुक्ल / गिरीश रस्तोगी का "राग दरबारी"[3] सत्यदेव दुबे का " थोड़ी देर पहले, थोड़ी देर बाद", सोजो सातो/नेमिचन्द्र जेन का "इबारागी ", अविनाश चन्द्र मिश्र का " बाजी .[4], अचला शर्मा का " सुबह होने तक," असगर वजाहत का " ओजन्मया ई नई " , विपिन कुमार के दो अधूरे नाटक[5] ", लघुनाटक अलका सराबंगी का " आठ दिसम्बर उन्नीस.सौ बानवे " ,प्रभात कुमार का

---

1. आधुनिक हिन्दी नाटक – गोविन्द चातक पृ0 43
2. आधुनिक हिन्दी नाटककारों के नाट्य सिद्धान्त–डॉ0 निर्मला हेमन्त, पृ0 9
3. समकालीन हिन्दी नाटककार –गिरीश रस्तोगी
4. आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना – गोविन्द चातक, पृ0 28
5. नाट्य रचना विधान : आलोचना के प्रतिमान, नर नारायण राय,पृ0 51

"स्वप्न – दु:खस्वप्न", शिशिर कुमार दास अनुवाद रणजीत शाद्धा का " बाघ" , और उर्मिल कुमार थपलियाल का " हरिश्चन्नर की लड़ाई " , अजीत पुष्कल का " प्रजा इतिहास रचती है " आदि प्रमुख नाटक हैं।

मे हिन्दी साहित्य में साहित्य के विभिन्न विधाओं की विकास यात्रा को निरूपित करते हैं जिसमें नाटक विधा का प्रमुख स्थान है । सन् उन्नीस सौ सत्तर ई0 से अब तक के नाटकों का विभाजन – विषय वस्तु के आधार पर इस प्रकार कर सकते हैं –

ऐतिहासिक –पौराणिक नाटक

हिन्दी साहित्य में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतीय वाड्.मय में इतिहास एवं पुराण की कथा को लेकर आदिकाल से विपुल –साहित्य रचा जा रहा है । 1970 ई० के बाद का समय भी इससे अछूता नहीं है।

इतिहासाश्रित नाटकों में प्रसिद्ध हैं मोहन राकेश कृत" लहरों के राजहंस ", डॉ0 राम कुमार वर्मा कृत "जौहर की ज्योति ,अज्ञेय कृत "उत्तर प्रियदर्शी ", सुरेन्द्र वर्मा कृत" सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक " एवं "आठवॉ सर्ग , डॉ0 भार्गव कृत " अन्तिम दान" जगदीश चावला कृत " हारा हुआ सिकन्दर " , मीठ साहनी कृत " समुद्र गुप्त " , हरिकृष्ण प्रेमी कृत" "अमृत पुत्री" रमेश पक्षी कृत " कसे हुए तार ", हबीब तनवीर कृत " आगरा बाजार", मणि मधुकर कृत " इकतारे की ऑख" आदि।[1]

---

1. भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा पृथ्वी नाथ , पृ0 41

"लहरों के राजहंस" में गौतम बुद्ध के सौतेला भाई नन्द की सुन्दरी पत्नी, नारी सौन्दर्य को आकर्षण का चरम बिन्दु मानती है, जब एक दिन नन्द ने भी पत्नी की आसक्ति को त्यागते हुए बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली तब उस सौन्दर्य गर्विता का अहंकार पूर्णतः खण्डित हो गया इस नाटक में राग –विराग और श्रेय–प्रेम के द्वन्द्व को उभार कर चिरन्तन आध्यातिमक प्रश्न को नये सन्दर्भ में उठाया है ।

"जौहर की ज्योति "में मारवाड़ नरेश यशवन्त सिंह के सहयोगी सरदार राठौर वीर दुर्गादास की वीरता एवं देश – प्रेम के गुणों का बखान करते हुए राष्ट्र –नायक का चरित्रांकन किया गया हे । हिन्दू –मुस्लिम ऐक्य के प्रतीक के रूप में राजकुमारी सकियतउन निसा का चरित्र प्रस्तुत कर नाटककार ने वर्तमान भारत के लिए हिन्दू – मुस्लिम एकता के निमित्त प्रेरक का काम किया है ।

"उत्तर प्रियदर्शी" का विषय कलिंग विजेता अशोक का पूर्व रूप जो क्रूर अथवा हिंसा का था उसमें मानसिक परिवर्तन का हे । आततायी राजा ने नगर के बाहर एक नरक बनवाया था जिसका स्वामी घोर अन्यायी था उसकी सीमा में आ जाने पर स्वयं सम्राट को भी मुक्ति नहीं थी । एक बार एक भिक्षु उस नरक में पहुँचकर उसकी ज्वाला शान्त कर दी । उसने सम्राट को धर्मोपदेश दिया जिससे सम्राट को मुक्ति मिली ।

"सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक " प्रत्यक्षतः ऐतिहासिक परिवेश का नाटक है मल राज्य को यथा समय उत्तराधिकारी दे पाने में असमर्थ राजा ओक्काक से निराश

अमात्य परिषद, नियोग के द्वारा रानी को पुत्र प्राप्त करने का आदेश देती है तो पति-पत्नी का सहज सम्बन्ध चरमरा कर टूट जाता. है।

"आठवाँ सर्ग" गुप्त कालीन ऐतिहासिक परिवेश और पात्रों के बावजूद आज का रंग नाटक हैं। आरम्भ में अनुसूया-पिंयवदा के वार्तालाप के द्वारा कालिदास और प्रियंगुमंजरी के सेक्स-सम्बन्ध में उल्लेख, मध्य में कालिदास एवं धर्माध्यक्ष के बीच तनावपूर्ण स्थिति का विवेचन एवं अन्त में कीर्ति मट्ठ द्वारा प्रियंगुमंजरी के समक्ष उसके अस्तित्व के संकट की हँसी उठायी गयी है।[1]

'अन्तिम दान' में हर्षकालीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता को उजागर किया गया है तो हारा हुआ सिंकन्दर ऐतिहासिक तथ्य से किंचित मिश्र है इसमें पोरस की पराजयक लिए रूखसाना की पोरस को राखी बन्द भाई बनाना नाटक कार द्वारा प्रस्तुत नया सन्दर्भ हैं।[2] "हनूस" में पहली बार कलाकार और राजसत्ता के आन्तरिक-संघर्ष के कारण कलाकार की आँखे फोड़ दी जाती है और अन्त में उसे जेल जाने के लिए मजबूर किया जाता है।

"कसे हुए तार" में रूपमती की मृत आत्मा और बयजीद का वार्तालाप है। बयजीद की पीड़ा पाठकों एवं दर्शकों को प्रभावित करती है।"आगरा बाजार" में 18वीं शती के लोक

---

1. नाट्य स्मारिका - जीवन लाल गुप्त, पृ0 53

2. नाटक की इबारत- कमला प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, पृ0 103

कवि नजवीर अकबर वादी को नाट्य – प्रस्तुति के माध्यम से उपस्थित होने का आभास कराया गया हैं।[1]

" इकतारे की ऑख" में सन्त कबीर के जीवन को तत्कालीन समाज के परिवेश को आधुनिक युग बोध के साथ जोड़कर इतिहास और समय की सीमाओं को तोड़कर आज की परिस्थितियों के बीच खड़ा किया गया है ।

डॉ० रामकुमार वर्मा का " सारंग स्वर " एक उल्लेखनीय ऐतिहासिक नाटक है। हरिकृष्ण प्रेमी का " अमृत पुत्री" नाटक के कठ गणराज्य के प्रमुख की पुत्री कर्णका को स्थान दिया गया है । चतुर्भुज के " झॉसी की रानी " नाटक में झॉसी की रानी की वीरता दर्शित है ।[2]

डॉ० रामकुमार वर्मा का " जय वर्धमान " (1974 ई०) नाटक वीतराग वर्धमान के प्रेरक प्रभावके जीवन प्रसंगों को लेकर पच्चीस सौवां निर्माण महोत्सव के उपलक्ष्य में लिखा गया है गोविन्द वल्लभ पंत , का " तुलसीदास" (1975 ई०) नाटक महाकवि के चरित्र को उद्घाटित करता है। जगदीश चन्द्र माथुर ने अपने नाटक – " पहला राजा "(1980 ई०) को पृष्ठभूमि के कुछ अंश और कुछ सूत्र मोहनजोदड़ो हड़प्पा सभ्यता की खुदाइयों से सम्बद्ध होते हुए भी ऐतिहासिक न मानकर " मार्डन एलिगोरी" अर्थात् आधुनिक अन्योक्ति का मंचीय रूप स्वीकारा है । " कुंवर सिंह की टेक " गिरजा कुमार माथुर का उल्लेखनीय ऐतिहासिक नाटक है ।

---

1. समकालीन हिन्दी नाटक हिन्दी नाटक के सौ वर्ष ,पृ0 321
   डॉ0 राम प्रसाद
2. हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक, पृ0 69
   डॉ0 आदित्य प्रचण्डिका दीति

गोविन्दवल्लभ पन्त का "पन्ना " (1983) नाटक लेखक का पूर्व प्रकाशित नाटक "राजमुकुट " का रूपान्तर है । यह नाटक रंगमंचीय दृष्टि से सफल सिद्ध हुआ है । गोविन्द वल्लभ पन्त का ही " काशी का जुलाहा" (1985 ई0) नाटक क्रान्तिकारी कबीर का इतिवृत्त लिए हुए हैं । भीष्म साहनी के " कबिरा खड़ा बाजार में " नाटक में कबीर के इतिहास की जन कथाएं दूध – मिसरी की तरह घुली – मिली है ।

सुरेन्द्र वर्मा आज के उदीयमान नाटककार हैं उनके लघु नाटकों में – " सेतुबन्धु " और "नायक खलनायक विदूषक" का परिवेश, भारत के स्वर्णिम अतीत काल का है, लेकिन इतिहास के चौखटे में ये लघु नाट्य कृतियाँ आधुनिक संवेदना की वाहक तथा समकालीन जीवन के कुछ महत्वपूर्ण सार्थक प्रश्नों को उठाती हैं । सुरेन्द्र वर्मा का ही " आठवाँ सर्ग " नाटक कालिदास के अनेक प्रकार की धार्मिक रूढ़िग्रस्तता और राजनैतिक दबाव से ग्रस्त है ।

ललित सहगल कृत "हत्या एक आकार की " नाटक अमूर्त भावों का मूर्त प्रतीकीकरण हैं जिसमें नाटककार ने महात्मा गाँधी की हत्या-षडयंत्र करने वाले हत्यारों के माध्यम से एक अपराधी के मनोविज्ञान तथा मनुष्य के कई स्तरों पर विभक्त अहं का चित्रण किया है । ऐतिहासिक धरातल पर मानवीय मूल्यों के अन्वेषण तथा आधुनिक बोध की दृष्टि से अज्ञेय का गीति– नाट्य " उत्तर प्रियदर्शी एक उल्लेखनीय कृति है । चरित्र – चित्रण की जीवन्तता ने " प्रियदर्शी " अशोक तथा बौद्ध भिक्षु के माध्यम से आधुनिक मानव के द्वन्द्व को तीव्रता के साथ व्यंजित किया है ।

हिन्दी के प्रगतिशील नाटक कारों में अजित पुष्कल जी का नाम भी प्रमुख है । उनके नाटकों में प्रमुख हैं "प्रजा इतिहास रचती है " यह बुन्देली लोक कथा पर आधारित है जिसकी प्रस्तुति भारतेन्दु नाट्य अकादमी, रंगमण्डल (लखनऊ) में दिनाँक 30,31 मार्च 1995 सायं 7 बजे हुई । "जल बिन जियत पियासे "(छायानट में प्रकाशित) अकाल पर आधारित एक ऐसा नाटक है जो काव्य के निकट है । इसमें अकाल प्रतीक रूप में व्याप्त समय के रूप में भाषित

होता है । गाँव के जन जीवन के आर्थिक, सामाजिक और आपसी रिश्तों को बारीकी से व्यक्त करता है । उनका एक नाटक "भारतेन्दु चरित्र " जिसका मंचन राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के शोध कार्य के अन्तर्गत हुआ है । इसमें भारतेन्दु के चरित्र को बहु आयामी बनाया गया है और उनके समग्र जीवन को दर्शाने की कोशिश की गयी है ।[1]

नरेन्द्र कोहली कृत " शम्बूक की हत्या " तथा मणि – मधुकर कृत " रस गन्धर्व " नाटकों में इतिहास वर्तमान से जुड़ गया है ।

सत्तर के (7वें दशक) बाद नाटक-कारों की इतिहास के प्रति एक खास दृष्टि और उसे अपनी नाट्य रचना के माध्यम से व्याख्यायित करने की एक विशेष पद्धति रही है । वे प्राचीनता में एक विशिष्टिता की खोज,शोध करते हैं जो तथ्य परक न होकर अपनी अर्थ में सार्थक क्षणों को वहन कर सके । इस प्रकार इन नाटककारों का इतिहास के प्रति दृष्टिकोण व्यक्तिग यथार्थ से जुड़ा है ।

इन समग्र विचारों उपरान्त कहा जा सकता है कि हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों के विकास में क्रमशः शिल्पगत पुष्टता वर्धित होती गयी है । इनका विकास स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर है । ऐतिहासिक सांघर्ष में नाटकीय शिल्प को जितना संश्लिष्ट बनाया जा सकता है उतना और कहीं भी संभव नहीं है ।

---

1. " प्रज़ा इतिहास रचती है , पृ0 3

अजित पुष्कल

<u>पौराणिक नाटकों</u> की भी सुदीर्घ परमपरा नाट्य साहित्य में मिलती है । पौराणिक कथाओं को लेकर सर्वाधिक नाटक स्व0 डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल जी के हैं यथा – "सूर्य मुख ", "यक्ष प्रश्न ", और " उत्तर युद्ध " , "एक सत्य हरिश्चन्द्र", और " राम की लड़ाई "आदि । दया प्रकाश सिन्ध कृत "कथा एक कंस की " डॉ0 सुरेश चन्द्र शुक्ल कृत – "भस्मासुर जिंदा है", सरयू प्रसाद मिश्र कृत –" नारद मोह", गिरराज किशोर कृत " प्रजा ही रहने दो ", जगदीश चन्द्र माथुर कृत " दशरथ नन्दन" , डॉ0 नरेन्द्र कोहली कृत "शम्बूक की हत्या ", मणि मधुकर कृत ' इस गन्धर्व और "बुलबुल सराय " शैलेन्द्र कृत " पूर्व पथ, " लक्ष्मी नारायण मिश्र कृत "गंगा धार ", भारत भूषण अग्रवाल कृत " अग्नि लीक " , शांकर शेष कृत " एक और द्रोणाचार्य"हमीदुल्ला कृत " उत्तर उर्वसी " दुष्यन्त कुमार कृत " एक विषपायी " आदि ।[1]

डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल जी के कई नाटकों में पुराण का प्रयोग नये अर्थ सन्दर्भों में हुआ है । "एकसत्य हरिश्चन्द्र " (1975 ई0) नरसिंह कथ्य , यक्ष प्रश्न " राम की लड़ाई ' (1979 ई0) और सूर्य मुख जैसे नाटकों में पौराणिक गाथा का ही नया आकाश खुला है । हिरण्डकश्यप के बहाने सत्तालोलुप निरंकुश शासकों की अधिनायकवादी प्रवृत्तियों का पर्दाफाश किया गया तो द्रोपदी के बहाने एकता और आत्म विश्वास की दुहाई दी गयी है । [2] इन नाटकों में डॉ0 लक्ष्मी नारायण ने 'शोषण और जागरण' के नये उपकरणों को पुरातन सांचे में उपस्थित किया है लेकिन यह सांचा हमेशा परम्परागत ही तो नहीं है ?प्रत्येक के भीतर चलता हुआ आधुनिक नाटक एक प्रयोग के रूप में सामने आया है ।

---

1. नाट्य कला मीमांसा –गोविन्द दास, पृ0 103
2. नाट्य परिवेश –कन्हैया लाल नन्दन पृ0 207

डॉ0 नरेन्द्र कोहली के नाटक "शम्बूक की हत्या" (1975 ई0) का वैभव है। राम कथा के एक अदने से पात्र के बहाने नाटक कार में आज की सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और शैक्षणिक विसंगतियों की शल्य चिकित्सा की है। नरेन्द्र कोहली के विश्वामित्र ने अयोध्या नरेश दशरथ को डाँटते हुए कहा है----

"रहने दे दशरथ" तू किसी काम का नहीं तू केवल मीठी बातें करता है। वोट ले सकता है और नारे दे सकता है।कर्म तेरे वशं का नहीं। तू राक्षसों से भी नहीं लड़ सकता है अयोध्या में किसी सभा का उद्घाटन कर और भाषण दे कि अगली पंचवर्षीय योजना में दशमलव शूल्य, शून्य एक, राक्षस अवश्य मार दिये जायेगें।लोग आकड़ों को देखते ही तेरा विश्वास कर लेगें और लाल किले में तेरा अभिनन्दन करेंगे।[1]

यह आस्वाद है पौराणिक गाथा वर्तमान की थर्राती हुई अनुगूँज के सम्मिश्रण का हिन्दी के समकालीन नाटकों में यह संयोजन अब नाटक कार की बदली हुई धार्मिता का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया है। **हमीदुल्ला** के नाटक "उत्तर उर्वशी" (1979 ई0) का उर्वशी उस नई नारी का प्रतिनिधित्व करती है जिसकी शारीरिक भूख अन्य पुरूष का अन्वेषण करती है। "सम्भवामि युगे युगे" (1980 ई0) में नाटककार जि0जे0हरिजीत ने महाभारत के सम्पूर्ण राजनीतिक दल को आज की घटना के रूप में चित्रित किया है।राजनीतिक चिन्ताओं से जूझती हुई आधुनिक सामाजिकता कितनी तेजी के साथ मानवीय मूल्यो से-कटती जा रही है।इसे ही समकालीन नाटकों का केन्द्रीय विषय बनाया जा रहा है।शास्वत मूल्यों की खोज का यही प्रयास डॉ0 **चन्दशेखर** के नाटक कुरूक्षेत्र की एक सांझ "(1980 ई0)"मैं और सुरेन्द्र वर्मा के " आठवाँ सर्ग"

---

1. डॉ0 नरेन्द्र कोहली/शम्बूक की हत्या, पृ0 135

में (1976 ई 0) मौजूद है ।"भस्मासुर अभी जिन्दा है । (1980 ई0) भी इसी कड़ी का एक नाटक है जिसमें डॉ0 सुरेश चन्द्र शुक्ल ने जन शोषण और जन आक्रोश का नया पुराण उपस्थित किया है कंस की क्रूरता के मिथ को दया प्रकाश सिन्हा ने " कथा एक कंस की " (1978 ई0) के माध्यम से नवीन क्षितिज दिया है । अपने अन्तिम दिनों में "हिटलर " जिस तरह कमजोर और भयभीत हो गया था ठीक वैसे ही मन:स्थिति का सामना कंस ने भी किया । चाहकर भी वह सहज मानवीय धरातल तक नहीं पहुँच पाता है । इतनी ही बैचेनी के साथ डॉ0 विनय ने " पहला विद्रोही (1980 ई0) में बकासुर को महाभारत सम्मत कथा की आधुनिक सन्दर्भो से जोड़कर उसे नई अर्थवत्ता दी है । महाभारत काल की राजनीतिक हलचलों का नए परिप्रेक्ष्य में रोचक जायजा गिरिराज किशोर ने अपने नाटक " प्रजा ही रहने दो " (1977 ई0) में लिया है । नाटक की मूल संवेदना एक नागरिक दूसरे को सलाह देता है –

"तुम किसी विधिवेत्ता के पास जाकर पूछों कि अवैध को अवैध मानते हुए भी प्रशासकीय दृष्टि से उसे वैध कैसे बनाया जाता है ।[1]

स्वभावत: समकालीन हिन्दी नाटकों में पौराणिक गाथाओं की भूमिका दुहरी है । एक ओर सांस्कृतिक वैभव का सम्प्रेषण और स्मरण ऐसी नाट्य कृतियों के माध्यम से होता है तो दूसरी ओर पुराण प्रस्तावित प्रसंगों की पुर्नव्याख्या का अवसर नाटक कार को मिलता है । एक ओर पुराने सन्दर्भो का स्मरण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में होता है तो दूसरी ओर आज की स्थितियों को समझाने के लिए एक व्यापक फलक मिल जाता है । इस प्रकार पौराणिक नाटक सदैव प्रासंगिक रहेंगे ।

---

1. गिरिराज किशोर , प्रजा ही रहने दो । पृ0 41

"समसामयिक चेतना प्रधान नाटक "

नाट्य – साहित्य का महत्व श्रव्य से अधिक दृश्य होने में हैं और दृश्यवाली समसामयिक हो तो निःसन्देह जन– सामान्य उस ओर सहज ही आकृष्ट होगें । राष्ट्रीय और अन्र्तराष्ट्रीय घटनाएं व्यापक पैमाने में दिन – प्रतिदिन घटती रहती है । धार्मिक सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक मानव –मूल्यों को युगीन परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित करने वाले नाटककार जनजीवन को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते । 70 के दशक से हिन्दी नाटक में सम–सामयिक चेतना की अभिव्यक्ति खुलकर हुई है ।

बृजमोहन शाह ने अपने नाटक "त्रिशंकु " में भारतीय सरकारी कार्यालयों में नियुक्तिके सम्बन्ध में भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी और पैरवी आदि चलती है उसका पर्दाफास किया है । इसी प्रकार का भ्रष्टाचार , व्यभिचार की कथा हमीदुल्ला ने अपने प्रसिद्ध नाटक " उलझी आकृतियाँ " के माध्यम से कही है । डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल कृत " करफ्यू " सामाजिक विधि –निषेध की वर्जनाओं और मुक्त काम– सम्बन्धों को प्रस्तुत कर "बोल्ड " नाटक की श्रेणी प्राप्त कर चुका है । " सगुन पंक्षी " तोता मैना और " राजा रानी " में दो लोक कथाओं का उपयोग कर शाश्वत स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों को उजागर किया गया है ।

"कलंकी "डॉ0 लाल की मिल मूलक नाटक होते हुए भी वर्तमान परिवेश की विद्रूपताओं पर प्रहार करता है । "अब्दुला दीवाना "का अब्दुल्ला उस नैतिकता एवं आस्था का द्योतक है जिसे मारकर नया उच्च वर्ग पनपा है । वर्तमान व्यवस्था, न्याय प्रणाली और खोखलेपन से, अब्दुला पूर्णतः परिचित हैं । हमीदुल्ला कृत "समय समय"एक वैज्ञानिक फैन्टेसी है जिसमें रोबट

सामना करना पड़ता है ।

"योगेश पंत" ने जयशंकर प्रसाद की कहानियों एवं कामायनी पर आधारित नाटक "नारी तुम केवल श्रृद्धा हो " (आठवें दशक में) की रचना की । [1]

जगदीश चन्द्र माथुर ने अपने नाटक " पहला राजा " में आधुनिक ठेकेदारों की चतुराई को बखूबी चित्रित किया है । ठेकेदार सरदार से पैसा लेकर निजी कामों में खर्च करते हैं और मजदूरों को निर्धारित मजदूरी भी नहीं देते । पृथ्वी राज शास्त्री कृत " कीड़नक "नाटक में बिना सच्चे प्यार के विवाह को "व्यभिचार " कहा गया है । यह विचार विवाह संस्था पर एक नई दृष्टि है ।

राजेन्द्र कुमार वर्मा ने " अपनी कमाई " में बताया है कि रिश्वत लेना पेशा है , रिश्वत के बिना कोई काम नहीं चल सकता । डॉ0 लाल कृत " मिस्टर अभिमन्यु " का आदर्शवादी पात्र विवेकशील आई0ए0एस0 अधिकारी वर्तमान राजनैतिक शोषण और बेईमानी के चक्र व्यूह में फॅसकर उसे तोड़ने के प्रयत्न में अपनी हत्या करने के लिए विवश हो जाता है । मोहन राकेश कृत " पैर तले की जमीन " के पात्र " कालाद्वीप " की भाँति आसन्न मृत्युमय के कारण अपने पूर्व जीवन के कृष्ण पक्ष को उद्घाटित करते हैं, किन्तु ज्यों ही मृत्यु भय हटता है । अपने पुराने खेल में वापस आ जाते हैं । मुद्रा – राक्षस का "मरजीवां " नाटक का बेरोजगार नायक विवशता पूर्ण स्थितियों के कारण अपनी पत्नी और बच्चों के साथ आत्म हत्या की योजना बनाता है ।

"रेत की दीवार " में राजेन्द्र कुमार ने 'दहेज प्रथा' को दूर करने का एकमात्र उपाय युवक–युवतियों की समझदारी में माना है । अमृत नाहरा विरचित "किस्सा कुर्सी का " आपात काल के दौरान लिखा गया नाटक है । इसमें सत्ता में चिपके रहने के लिए हमारे नेता क्या-क्या करते हैं उसी का दस्तावेज है।

"रोटी और बेटी " में 'नरेश मेहता' ने हरिजन समस्या उठायी है जो अभी तक समाज के भीतर जड़ में व्याप्त है । लेखक के शब्दों में –

"हरिजन हमारे देश का राष्ट्रपति बन सकता है पर भीतर ही भीतर एक बहुत बड़े समाज के साथ –साथ रोटी और बेटी का व्यवहार नहीं कर सकता है कथानक वर्तमान परिवेश का है चरित्र –चित्रण स्वभाविक और मनोवैज्ञानिक है ।"

"नागपाश " नाटक में सुरेश कुमार सिंह ने सत्ताधारियों का चरित्रांकन किया है । गिरिराज किशोर ने व्यंग्य नाटक " चेहरे – चेहरे कितने चेहरे " में मौजूदा तंत्र की क्रूरता को व्यंजित किया है ।[1]

डॉ0 कुसुम कुमार के नाटक "ओम क्रान्ति " में आधुनिक शिक्षा पद्वति की भ्रान्ति और दिशा हीनता पर चोट पहुँचाई गयी है । कणाद ऋषि भटनागर के दो नाटक "अमर ज्योति " और 'एक कदम और' में क्रमशः सामाजिक जीवन में फैलती हुई स्वार्थ –परता की प्रवृत्ति और समाज के रोग-ग्रस्त वर्ग के वेश्याओं के उद्धार से सम्बद्ध है । समाज के विभिन्न तबकों में फैले भ्रष्टाचार को बेनकाब करने का काम प्रियदर्शी प्रकाश का नाटक "सभ्य सांप " भी करता है । सुदर्शन चोपड़ा

---

1. " स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक, रामजन्य शर्मा,. पृ0. 67

का"काला पहाड़ " दिल्ली के एक विशेष वर्ग का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है। डॉ0 लाल का "पंच पुरूष "पंचायती राज और उसके माध्यम से प्रजा – तांत्रिक मूल्य के विस्तार की योजना को यथा – स्थितिवादियों के हाथ चले जाने का संकेत देता है जिससे नई सामन्ती व्यवस्था कायम होगी.[1]

कैलास कल्पित के नाटक " संत्रास " में महानगरीय परिवेश द्वारा नौकरी करने वाले मध्य वर्ग और निम्न वर्ग के शोषण और इस शोषण के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला संत्रास और दुखद परिणति के रूप में महानगरीय जीवन की विवशताओं का पक्ष प्रस्तुत करता है । इस प्रकार हिन्दी नाटकों में सम –सामयिक चेतना की अभिव्यक्ति खुलकर हुई है ।

"प्रेम विवाह, सेक्स एवं मनोविज्ञान से सम्बन्धित नाटक "

आलोच्य युग में प्रेम विवाह, सेक्स एवं मानव मन के मनोग्रन्थियों से जुड़ा मनोविज्ञान से सम्बन्धित नाटकों की संख्या विपुल हे उनमें कुछ का परिचय अपेक्षित है ।

मृदुला गर्ग का"एक और अजनबी " नाटक में खुलकर प्रेम व्यापार चलता है । शान इन्दर के अमेरिका जाने पर नायिका जज मोहन से विवाह कर लेती है । इसी के समान एक दूसरे अविवाहित जोड़े का प्यार चलता है । स्त्री ने अपने पूर्व पति को छोड़ रखा है वर्तमान पुरूष उससे शादी करना चाहता है पर इस सम्बन्ध में स्त्री का विचार है कि सच्चे प्यार को विवाह की

---

1. महानाटक सुरेश श्रीवास्तव , पृ0 2[illegible]

आवश्यकता नही होती । बाद में वह डॉक्टर के प्रस्ताव पर नर्सिंग होम चलाने के लिए उस पुरूष को भी छोड़ देती है ।

लक्ष्मी नारायण लाल ने "करफ्यू"नाटक में ठीक इसी तरह समाज के वर्जनाओं को मनीषा –गौतम और कविता –संजय की जोड़ी के द्वारा तोड़वाया है । इस नाटक के पात्र भी उन्मुक्त योन–सम्बन्ध में विश्वास रखते हैं ।[1]

रमेश वक्षी कृत " देवयानी का कहना है" नाटक में "स्त्री –पुरूष सम्बन्धों और उनसे जुड़ी नैतिकताओं और बन्धनों के अन्वेषण से है । इसमें विवाह के वगैर ही देवयानी और साधन पति–पत्नी की भाँति साथ –साथ रहते हैं ।[2]

सुशील कुमार के चार नाटक " चार यारों का यार " में काम की जगह वासना की प्रमुखता स्वीकार की गयी है इसीलिए बिंदिया शराब खोर पति को छोड़कर (नंपुसक होने के कारण)'जीवन'को अपनाती है जो अपने यारों के साथ बिंदिया को सारे शरीर सुख देता है ।[3]

इस बुद्धिजीवी युग में यौनाचार भी मनोविज्ञान से जुड़ गया है । यौन समस्याओं को अब मनोविज्ञान के धरातल पर उठाया ओर सुलझाया जा रहा है । मुद्रा राक्षस ने " योर्स फेथफुली " [4]

---

1. रंगमंच और नाटक की भूमिका , लक्ष्मी नारायण लाल, पृ0 78
2. नाटक और यथार्थवाद, कमलिनी मेहता, पृ0 203
3. नाटक और नायक – सदगुरू शरण अवस्थी, पृ0 17
4. नाटक – सुधांशु शेखर चौधरी, पृ0 23

नाटक में यौन – समस्या को भी प्रस्तुत किया है । इस नाटक का अफसर अपने दफ्तर में ही स्टेनों 'कंचन रूपा' के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है एवं सम्भोग की आगामी योजना बनाता है। "तीन नाटक " में भी रिश्तों की यौन – कुण्ठा को चित्रित करने का प्रयास सुरेन्द्र वर्मा ने किया । इस नाटक की नायिका 'प्रभावती' कालिदास से प्रारम्भ से ही प्रेम करती है एवं विवाह के बाद भी नहीं छोड़ती । इस नाटक में सुरेखा की लड़की 'अलका' भी राजेश से अवैध सम्बन्ध रखती है ।

सत्यव्रत सिन्हा ने विश्वविद्यालय में व्याप्त भ्रष्टाचार और विवाह की समस्या को " अमृत पुत्र " नाटक में उठाया है ।

डॉ0 रमाकान्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अपनी प्रतिष्ठा एवं मर्यादा को भूलकर एक छात्रा को पकड़ लेते हैं, विरोध के फलस्वरूप पीटते हैं । इस नाटक के दीनानाथ खुराना अपनी बेटी का विवाह एक बदसूरत एवं विधुर अफसर से करना चाहते हैं पर उनकी सुपुत्री विद्रोह करते हुए अन्तत: अपने प्रेमी से विवाह करती है ।

गोविन्द चातक ने " काला मूँह " में दाम्पत्य सुख को निगलने वाला कारक अर्थ को माना है अव्यवस्थित अर्थतन्त्र के कारण ऋण ग्रस्त पिता बेटी को बेच देता है । ऋण ग्रस्त पति के लिए पत्नी कहती हैं "मेरा आदमी मेरा कहाँ रहा उसने ठेकेदार से दो हजार रूपये लिए थे । तब से उन रूपयों के जंगल में काम करता है और पत्नी (केशी) प्रतिदिन बेची और खरीदी जाती है ।

"पंच पुरूष " में लक्ष्मी नारायण लाल ने आर्थिक लाचारी को दर्शाया है अर्थाभाव के

कारण "गंगाजलि "सवा सौ रूपये में बेच दी जाती है और "वाकुल " की बहू बनाई जाती है । "केशी " की तरह बाकुल में गंगाजलि भी अपना पुरूष नहीं पाती है । यौन असन्तुष्टि के कारण शिवमंगल के साथ भागती है पर व्यवस्था के (योजना के) पहरेदार पुनः उसे 'बाकुल' के साथ जोड़ देते हैं ।[1]

इस प्रकार प्रेम– विवाह, सेक्स और मनोग्रंथियों से जुड़े हुए कई नाटक लिखे गये हैं । प्यार और सेक्स जीवन की अनिवार्यता है; सहज स्वभाविक प्रवृत्ति को समाज के नियम, कानून और वर्जनाएं रोकने में असमर्थ हैं ।

"प्रतीक प्रधान नाटक "

साहित्य में अपनी इच्छित अभिव्यक्ति को असरदार और पूर्णता करने के लिए साहित्यकार प्रतीकों का सहारा लेते हैं । नाट्य –साहित्य में भी प्रतीकों की कोई कमी नहीं है डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के "सुन्दर रस "और "सूखा सरोवर " प्रतीकात्मक नाटक हैं पहले में चर्म सौन्दर्य की जगह कर्म सौन्दर्य को प्रतिष्ठापित किया गया है, दूसरे में व्यष्टि समष्टि के लिए आत्म बलिदान करता है । "अब्दुला दीवाना " में अब्दुला का प्रयोग डॉ0 लाल ने प्रतीक के

---

1. "समकालीन हिन्दी नाटक " (निबन्ध) पृ0 27
डॉ0 राम प्रसाद

रूप में किया है । आज की नई पीढ़ी एक नये अब्दुला को जन्म दे रही है यही नया अब्दुला है 'मूल्य हीनता'। जब युवती-युवक से कहती है " दुनिया हमें बेवकूफ बनाती है हम उसे बेवकूफ बनायें इसी का नाम नया अब्दुला है ।" अब्दुल्ला का यह सुपरिचित प्रतीक आज समाज के हर क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है ।

"रोशनी एक नदी है " लक्ष्मी कान्त वर्मा का प्रयोगात्मक नाटक है, इस नाटक का प्रारम्भ जिस बिन्दु से होता है उसी बिन्दु पर उसकी समाप्ति होती है यह वृत्त एक शाश्वत् चक्र का प्रतीक है । नाटक में चुभती हुई बातें हैं , चुभते हुए व्यंग्य हैं, बड़े सार्थक एक जीवन्त प्रतीक एवं बिम्ब हैं । " रंगमंचीय दृष्टि से उपयुक्त एवं शिल्प विधान नया है ।"

ज्ञानदेव अग्निहोत्री का " शुतुरमुर्ग" एक सशक्त प्रतीक के रूप में पूरे नाटक में छाया हुआ है नाटककार ने " शुतुरमुर्ग " के इस प्रतीक को 'राजनीति के प्रत्येक महानायक' पर अत्यन्त सहजता और सूझ-बूझ से आरोपित कर चमत्कारिक प्रयोग किया है ।

प्रतीकात्मकता 'मणिमधुकर' के " रस गन्धर्व " और "बुलबुल सराँय " में भी है । रस गन्धर्व में सूद्र पात्र राष्ट्र के आम आदमियों का प्रतिनिधित्व करते हैं । 'जेल' जन -सामान्य की बन्दी आकांक्षाओं का प्रतीक है । राजकुमारी और आसरा -राज- सत्ता का प्रतीक है और नौकरशाही का । बुलबुल सराँय के प्रतीकात्मक पात्र क, ख, आ, ई, आम आदमी का प्रतीक हैं ,

सरॉय संसार है, और प्रलय– काल आपात–स्थिति । "बुलबुल " प्रेम, करूणा और मानव मूल्यों का प्रतीक है जिसको मार डाला गया है ।

डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल कृत "रातरानी " के कुन्तल को "रातरानी" के प्रतीकत्व से समन्वित किया गया है जो अपनी प्रसन्नता सारे घर में महका देती है ।" मोहन राकेश कृत " "लहरों के राजहंस "नाटक के नाम में भी प्रतीकात्मक का दर्शन होता है । लहरें नन्द के मन उद्वेलन, चंचलता और अन्तर्द्वन्द्व को उभारती है , तो लहरों पर तैरते राजहंस का जोड़ा उसके पार्थिव चैयन्य और युगल भाषिकों को व्यक्त करता है । डॉ० चन्द्र कृत "कुत्ते" में आफिस में काम करने वाली 'महिलाओं के शोषण' की बात कही गयी है । "कुत्ते " पुरूषों के लिए प्रतीक के रूप में प्रयोग किया गया है । उस ऑफिस में चारों ओर कुत्ते ही हैं जो हर महिला को नोंच डालना चाहते हैं, वे गली में भौंकने वाले कुत्तों के समान सही में कुत्ते हैं एवं महिलाओं को अपने चंगुल में फँसाने वाले पुरूष भी ।[1]

हिन्दी के पौराणिक प्रतीक नाटकों के बीच सुरेन्द्र वर्मा कृत "द्रोपदी" (1972 ई0) अत्यधिक चर्चित नाटक हैं । इस नाटक के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने अत्यन्त स्वभाविक रूप से आज के विछिन्न व्यक्तित्व वाले मानव का सभी रूपों में वास्तविक चित्रांकन किया है जो आज के मनुष्य का सच्चे अर्थों में पूर्ण प्रतीकात्मक चित्र हैं । महाभारत कालीन द्रोपदी के पाँच पति थे , उसी प्रकार आज का व्यक्ति अपने अन्दर पाँच रूप छिपायें आन्तरिक या मानसिक द्वन्द्व से ग्रस्त है । लेखक सुरेन्द्र वर्मा ने द्रोपदी " नाटक के नायक मनमोहन को सामान्य रूप से घरेलू जीवन

---

1. नाटक और रंगमंच –राजकुमार , पृ0 141

में स्थित दिखलाते हुए विशेषतः चार मुखौटे लगाकर उपस्थित किया है ।[1] मनमोहन को पाँच रूपों में प्रस्तुत करते हुए नाटककार ने शीर्षक रूप में ऐसे पुरूष की पत्नी बनी हुई हैं जो नारी के जीवन का पूर्णरूप संजोकर रख दिया है । वस्तुतः सुरेखा जैसी स्थिति की नारी का जीवन "द्रोपदी" शब्द के भावार्थ की परिधि में पूर्णतया समाया हुआ है ।

हिन्दी के यथार्थवादी प्रतीक नाटकों के बीच डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के नाटक "करफ्यू " (1972 ई0) का प्रमुख स्थान है । करफ्यू नाटक के दंगों की पृष्ठभूमि में सामाजिक एवं नैतिक बन्धनों के कारण मनुष्य के अन्तर्मन में घटने वाले भावात्मक द्वन्द्व को संकेतित करता है। नाटक का प्रतीकात्मक पक्ष अत्यन्त स्पष्ट है । नाटककार ने सांकेतिक शैली में बाहर के करफ्यू को मनुष्य के भीतरी करफ्यू में जोड़ा है, वह करफ्यू है - सभ्यता, मर्यादा एवं नैतिकता का और यही करफ्यू समाज और व्यक्ति के मन में अनेक विकृतियों को जन्म देने वाला है । सभ्यता और संस्कृति का यह प्रतिबन्ध नाटककार को करफ्यू की तरह लगता है जिसे करफ्यू की तरह मनुष्य अपने ऊपर ओढ़े रहता है । नाटक में वर्णित स्वाभाविक स्थिति वह है जब यह करफ्यू टूट जाता है ।[2]

इसी परम्परा में राजनीतिक व्यंग्य की प्रतीकात्मकता की सशक्त संवाहिका के रूप में

---

1. नाटक और रंगमंच - ललित कुमार शर्मा, 117
2. हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच - डॉ0 केदारनाथ सिंह पृ0 26

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की "बकरी " (1974 ई0) [1] उभरकर सामने आया है , बकरी गाँधीवादी सिद्धान्तों तथा नैतिकता की प्रतीक है । स्वाधीनता के बाद जिसकी ओट में अपने आपको जनता का सेवक कहलाने वाले नेतागण भोली- भाली, धर्म-भीरूता तथा अशिक्षित जनता को लूट रहे हैं । विदेशी सत्ता से मुक्ति भारतीय जनता के लिए अपने नेताओं द्वारा छले जाने की शुरूआत थी । यह एक रोचक लेकिन त्रासदिक विडम्बना ही है कि नए सत्ताधारियों ने जनता के छलने के सबसे ज्यादा तरीके उसी से सीखे,जिसने राजनीति में चरित्र एवं नैतिकता का महत्व स्थापित करना चाहा था। बकरी के नाम पर अपने कल्याण के लिए दुर्जन सिंह, सत्यवीर और कर्मवीर द्वारा " बकरी शान्ति प्रतिष्ठान", "बकरी संस्थान ", "बकरी मण्डल", आदि संस्थाओं की स्थापना वर्तमान राजनीतिक जीवन की विसंगतियों को उजागर करती है । आज के ये तथाकथित जन- नेता बकरी के नाम पर अपढ़ निरीह जनता को किस प्रकार ठग रहे हें इन्हीं समस्याओं को उजागर करना नाटक का लक्ष्य है ।

बृजमोहनशाह के " त्रिशंकु "(1973 ई0) सुशील कुमार सिंह का "सिंहासन खाली है " (1974 ई0) , मणि मधुकर के " खेला पोलमपुर (1979 ई0) एवं सुरेश चन्द्र शुक्ल के "भस्मासुर अभी जिन्दा है"(1980 ई0) प्रभृति प्रतीक नाटकों की यह परम्परा हिन्दी रंगकर्म की एक विलक्षण भूमि है । इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं ।[2]

---

1. बकरी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ0 7
2. हिन्दी के प्रतीक नाटक, (निबन्ध) पृ0 13
   डॉ0 वासुदेव सिंह

इस प्रकार डॉ0 रामकुमार वर्मा की यह मान्यता सत्य प्रतीत होती है कि "प्रतीक सृजन कलापक्ष को लेकर अग्रसर होता है और उसमें समस्त चिन्तन तथा भावना का संकेत एक व्यष्टि में केन्द्रीभूत हो जाता है ।

अतः कहा जा सकता है कि प्रतीक व्यक्ति चेतना की अभिव्यक्ति का वह जीवन्त माध्यम है जिसका आश्रय लेकर रचनाकार अमूर्त रूप और व्यापार के उन प्रसंगों की अभिव्यक्ति को सम्प्रेषित करता है जिनका मूल श्रोत यथार्थ, अनुभूति , कल्पना अथवा मन से ही सम्भव है 1

"हिन्दी पद्य नाटक "

काव्य नाटक से हम उस पद्यबद्ध साहित्य रूप का अर्थ लेते हैं जिसमें काव्यत्व और नाटकत्व का सन्तुलित समन्वय होता है, जिस साहित्य विधा को हम काव्य नाटक कह रहे हैं, उसके लिए अंग्रेजी में पोयट्रिक ड्रामा और वर्स ड्रामा शब्दों का व्यवहार होता है और इनमें से कोई भी काव्य – नाटक का समुचित एवं सार्थक बोध कराने में सक्षम नहीं है । पद्य – नाटक जीवन की समग्रता का नाटक है, जबकि गद्य नाटक जीवन के मात्र वाह्य रूप का । पद्य नाटक मुख्य रूप से मनुष्य के अन्तर्जीवन का नाटक है , उसके राग – विरागों का नाटक है, उसकी अनुभूतियों , भावनाओं का नाटक है । उसके संवेगों एवं संवेदनाओं पद्य–नाटक की लयात्मकता और बिन्दु विधान में यह क्षमता है कि वह अनुभूतियों और संवेगों की व्यंजना कर सके और उसे संहृदयों तक सम्प्रेषित करने में सक्षम हो सके ।

हिन्दी नाटक के इतिहास में जयशंकर प्रसाद जी के "करूणालय" (1913 ई0) को प्रथम पद्य नाटक कहा जाता है । सियाराम शरण गुप्त ने दो पद्य नाटकों की रचना की है – " कृष्णा" (1921 ई0) और "उन्मुक्त "(1942 ई0) । उन्मुक्त गाँधीवादी आदर्शो से प्रेरित रचना है जिसमें युद्ध और शान्ति की समस्या पर विचार किया गया है । आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव लिखित " "झाँकी " (1925 ई0) में कवि के चार लघु नाटक संकलित हैं – पार्वती और सीता, शिवाजी और भारत राजलक्ष्मी , नूरजहाँ चाणक्य और चन्द्रगुप्त ये सभी अतुकान्त सममात्रिक छन्दों में हैं । हरिकृष्ण प्रेमी का " स्वर्ण विहान "(1930 ई0) ;मैथलीशरण गुप्त जी के अनघ की पद्धति में लिखा गया । सूर्यकान्त त्रिपाठी " निराला" के "पंचवटी प्रसंग " (1930 ई0) की

चर्चा की जाती है जो परिमल में संकलित है । पंचवटी प्रसंग अपने वर्तमान रूप में नाटकीय कविता का ही उदाहरण है, इसमें प्रयुक्त स्वच्छन्द छन्द नाटकोचित है । भगवती चरण वर्मा का "तारा " नाटक प्रमुख है जो माधुकण संग्रह में संकलित है ।

सातवें दशक के बाद के नाटककारों में मंगल प्रसाद विश्वकर्मा ने सात लघु पद्य नाटकों की रचना की; जो उनकी पुस्तक " रेणुका"(1970 ई0) में संकलित हैं । " उत्तरा और अभिमन्यु ", "श्रीकृष्ण और सुदामा ", "लौगी ", " देवदासी", "चित्रलेखा ", "राधा और शाहजहाँ "। ये नाटक सूचित करते हैं कि हिन्दी पद्य नाटक किस प्रकार मात्र इतिवृत्तात्मक से मुक्त होकर भावात्मक अभिव्यक्ति की दिशा में गतिशील हुआ ।

उमेश के "कैकेयी का अन्तर्द्वन्द्व " (1973 ई0), कुंथा जैन के"वर्द्धमान रूपायन " (1975 ई0) , रामेश्वर कश्यप के दो नाटक "समाधान "(1971 ई0) और "अपराजेय निराला "(1973 ई0)का अपना महत्व है । "समाधान" पद्य नाटक का कथानक काल्पनिक है , पर इसके पात्र हमारे समसामयिक परिवेश के हैं और इनके माध्यम से व्यक्त स्थितियाँ और व्यंजनाएं बहुत स्पष्ट है । हमारे समाज में व्याप्त विविध सभी भ्रष्टाचार बड़े प्रभावशाली रूप में इस नाटक में चित्रित है । " अपराजेय निराला " में मुख्य विशेषता है कि निराला के संवादों में उनकी कविताओं के अंशों को उचित स्थलों पर समायोजित किया गया है ।

विनोद रस्तोगी जी का नाटक "सूत पुत्र" (1974 ई0) महाभारत के प्रसिद्ध पात्र कर्ण के जीवन पर आधारित है । जाति एवं वर्गमुक्त मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले

अत्यन्त उदात्त पौराणिक चरित्र के माध्यम से नाटककार ने अपने समय की ज्वलन्त चेतना इस प्रभावोत्पादक पद्य नाटक से व्यक्त की है ।

" अग्निलीक "(1976 ई0) भारतभूषण अग्रवाल के अन्तिम दिनों की रचना है । राम के चरित्र की व्याख्या परम्परा की लीक से हटकर एक नये रूप में करना इस दृश्य काव्य का लक्ष्य रहा है । निश्चय ही अग्निलीक पर काव्य - नाटक की सम्भावनाओं की दृष्टि से अधिकाधिक विचार किया जा सकता है ।[1]

डॉ0 जगदीश गुप्त ने अपने पद्य नाटक " शम्बूक"(1977 ई0) में मिथक और समकालीन अनुभव की टकराहट का चित्रण किया है, जहाँ लोक नायक राम एक लोक -नायक राम एक लोक स्वीकृत अवस्था पर चलने वाले व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं ।

डॉ0 चन्द्रशेखर के पद्य नाटक "शिव धनुष" (1981 ई0) से राम - विवाह से लेकर राम- रावण युद्ध तक के परिसर का स्पर्श किया गया है, और इस बहाने पौराणिक प्रसंगों का आधुनिक सन्दर्भ प्रस्तुत किया है ।

पारसनाथ गोबर्धन के पद्य नाटक " दशित आस्थाएं " (1985 ई0) रामकथा के परम्परागत वृत्त को तोड़कर नये सामाजिक मूल्यों का साक्षात्कार करने वाला नाटक बन गया । डॉ0 चन्द्रशेखर ने " रोशनी - के सेतु स्तम्भ " (1985 ई0) में महर्षि अगस्त्य से सम्बन्ध पौराणिक मिथक को आधार बनाकर अन्धकार और प्रकाश के संघर्ष को कलात्मक गरिमा केसाथ ,

उभारा है ।

डॉ0 विनय की रचना "एक प्रश्न मृत्यु " (1986ई 0) का अलग स्थान है । कुन्ती, द्रोपदी, युद्धिष्ठिर और कर्ण के अन्तर्द्वन्द्व को डॉ0 विनय ने इस पद्य नाटक में सफल अभिव्यक्ति दी है । कुमार –प्रशान्त के "जटायु " (1987 ई0) में रामकथा के एक ऐसे पराजित पात्र का चयन पद्य नाटक के लिए किया गया है जो अन्याय से जूझता हुआ समाप्त होता है । इसी समय राम प्रसाद शर्मा के " आदि दिव्य "(1985 ई0) में, पोद्दार रामवतार अरूण के " कालक्रम"(1987 ई0) और डॉ0 राजवंश सहाय – हीरा के "मानस महान है " (1988 ई0) की रचना की, इस तरह पद्य नाटक अपने नाम एवं स्वरूप की सार्थकता प्राप्त कर सका ।[1]

यही सही है कि उत्कृष्ट एवं शक्ति शाली हिन्दी पद्य नाटक बड़ी संख्या में नहीं लिखे गये हैं ; लेकिन उपलब्धियों की अपेक्षा सीमा होती है , सम्भावनाओं की कोई सीमा नहीं होती ।

---

1. हिंन्दी पद्य नाटक " पृ0 1
डॉ0 सिद्ध नाथ कुमार

हिन्दी के व्यंग्य नाटक

जब हम किसी की हँसी उड़ाते समय उसकी त्रुटियों अथवा कमियों को इतनी तीव्रता से उपहास करें कि हमारी सहृदयता कम होती हुई प्रतीत हो, उस स्थिति में व्यंग्य प्रकट होता है । व्यंग्य प्रयोजन निष्ठ होता है और उसका महत्वपूर्ण लक्ष्य समाज सुधार है ।

नाट्य – साहित्य में हास्य– व्यंग्य का महत्वपूर्ण स्थान है । नाटक का मूल धर्म आनन्द की प्राप्ति है और हास्य का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भी आहलाद प्रदान करना है । अतःहास्य इस सम्बन्ध में नाटक को एक बड़ी सीमा तक सहायता देता है । व्यंग्य द्वारा नाटक कार सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक सुधारों की ओर प्रवृत्त. होता है ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने " भारत दुर्दशा " (1976 ई0) व्यंग्य नाटक का समारम्भ किया । इनके बाद के प्रमुख व्यंग्य नाटककारों में उपेन्द्र नाथ अश्क ने " स्वर्ग की झलक " (1939 ई0)। की सफल रचना की।

व्यंग्य नाटकों का एक नया अध्याय सन् 1970 ई0 के आस–पास सामने आया । कुछ स्फुट व्यंग्य नाटक " शुतुरमुर्ग " (1969 ई 0) ने समाज और राजनीति में व्याप्त छल और फिसलन कोएक सार्थक व्यंग्यात्मक आकार प्रदान किया ।

डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने " कंलकी " (1969 ई0) तथा "अब्दुल्ला दीवाना "

⟬ 1973 ई0⟭ की रचना की ।जिनमें जीवन के यथार्थ का व्यंग्यात्मक अन्वेषण हैं ।

डॉ0 नरेन्द्र कोहली ने अपने व्यंग्य नाटक "शम्बूक की हत्या " ⟬ 1974 ई0 ⟭ द्वारा स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन के सत्यों को पूरे वैभव के साथ उपस्थित किया है । इस नाटक से इंगित होने लगा कि समूचे देश के साथ बलात्कार करने वाली स्थितियों को व्यंग्य नाटक ही सही दिशा दे सकते हैं । "उलझन" , "दामाद", नरेश मेहता जी के हास्य व्यंग्य नाटक हैं । फैसला, विधवा, अत्याचार पर करूण संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है ।

सुशील कुमार सिंह के व्यंग्य नाटकों – " सिंहासन खाली है " ⟬ 1974 ई 0⟭ , "नागपाश ", ⟬1977 ई0 ⟭ , और "गुडबाई स्वामी " ⟬1979 ई0 ⟭ में परिवेश और व्यवस्था के प्रदूषण को इंगित किया है । इस क्रम में अमृत नाहटा के "किस्सा कुर्सी का " ⟬ 1977 ई0 ⟭ को विस्मृत नहीं किया जा सकता है, जिसमें आपातकालीन राजनीतिक स्थिति के सत्यों को नंगे रूप में उपस्थित किया गया है । आम – जनता के संघर्ष और समय के साथ गहराती हुई स्वधीनता की खोखली दशा में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने "बकरी " ⟬1974 ई0 ⟭ लड़ाई ⟬1979 ई0⟭ "कल भात आयेगा ⟬ 1981 ई0 ⟭ जैसे नाटकों में सत्य की नियति को रेखांकित किया है । हिन्दी के एक अन्य व्यंग्य नाटककार जिन्हें अजित पुष्कल के नाम से जानते हैं, उनके अब तक तीन नाटक आये हैं जिनमें "घोड़ा घास नहीं खाता है , जो स्वांग शैली पर आधारित है । इसमें आधुनिक कथ्य को रखा गया है । "कठफोड़वे" शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग्य है । "उम्मन उपाख्यान " मानव पर धन –दौलत का व्यंग्य है ।[1]

---

1. "प्रजा इतिहास रचती है , पृ0 3
   अजित पुष्कल

कुसुम कुमार ने "ओम क्रान्ति –क्रान्ति "(1978 ई0) रावण –लीला (1983 ई0) में समर्थ व्यंग्य नाटक की बानगियाँ उपस्थित की; इसी तरह मृणाल पाण्डेय ने "जो राम रचि राखा " (1983 ई0) और " मौजूदा हालात को देखते हुए "(1981 ई0) में विसंगतियों का सवाभाविक प्रस्तावन किया है । मुद्राराक्षस के "आला अफसर " (1983 ई0) , शरद जोशी के "दो व्यंग्य नाटक " (1979 ई0) और विलास गुप्त के "आपके कर कमलों से " (1987 ई0) जैसे व्यंग्य नाटकों ने हिन्दी नाट्य क्रम में व्यंग्य की अस्मिता को अधिक धारदार बनाया है इसी के फलस्वरूप पत्र–पत्रिकाओं और अन्य स्तरों पर व्यंग्य नाटकों का एक काफिला पूरे विश्वास के साथ फैलता हुआ नजर आता है । पिछले दो दशकों में हिन्दी के व्यंग्य नाटकों ने अपने – आपकों इतना सुदृढ़ और वैविध्यपूर्ण बना लिया है कि अब व्यंग्य नाटक को एक फार्म के रूप में स्थापना मिल गयी है ।[1]

निश्चय ही हिन्दी रंगकर्म की सबसे ईमानदार और प्रभावशाली दिशा के रूप में व्यंग्य नाटकों का विकास हुआ है । पिछले तीस वर्षों में तो हिन्दी व्यंग्य नाटक इतनी तीव्रता के साथ-साथ सजग हुआ है कि हिन्दी नाटक का चेहरा ही बदल गया है । आने वाले दिनों में व्यंग्य नाटक अधिकाधिक तीव्र समर्थ और प्रहारक होंगें, ऐसी आशा व्यंग्य नाटकों से की जा सकती है ।

---

1. "हिन्दी व्यंग्य नाटक का विकास " पृ0 49
   डॉ0 रामकिशोर तिवारी

"युद्धवादी नाटक "

युद्धवादी नाटक से संक्षेप में भाव दूसरे देश के साथ भारत को जो युद्ध करने पड़े उनसे है ; अर्थात् भारत –चीन युद्ध और भारत– पाकिस्तान युद्ध से सम्बन्धित नाटकों से है, डॉ0 शिव प्रसाद सिंह ने "घाटिया गूँजती हैं " नाटक में चीन – भारत युद्ध के व्यापक फलक को लिया है । इसमें भिन्न –भिन्न व्यक्तियों का इसी परिवेश में अलग – अलग असर एवं उनकी क्रियाशीलता भी चित्रित है । ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने " नेफा की एक शाम " में चीनी आक्रमण के प्रतिरोध में आदिवासियें का संघटन और गोरिलला युद्ध–पद्धति की सार्थकता सिद्ध की है और घिसे –पिटे आदर्शों की बहुलता के कारण सामान्य स्तर का है ।[1]

"अंधेरे का बेटा " में रेवती सरन शर्मा ने भारत– पाक युद्ध को कथ्य बनाया है अपने कल्पित पात्रों के आधार पर शर्मा जी ने पाठकों एवं दर्शकों के अनुभव कराया है कि वह अंधेरे का बेटा ही नहीं अंधेरे का सूर्य भी है , चूँकि वह प्रकाश की ओर निरन्तर अग्रसर होता है ।

भारत – चीन और भारत –पाकिस्तान से सम्बन्धित अन्य नाटक इस प्रकार है

लक्ष्मीकान्त वर्मा कृत "सीमान्त के बादल " , राजकुमार कृत " पंचनागी ", जी0पी0कौशिक कृत " आज की ताजा खबर " हरशरण शर्मा कृत " आजादी की रक्षा ", चिरंजीत कृत, तस्वीर उसकी " , बन्धु प्रसाद " कश्मीर के शहीद " , राजकुमार कृत – " हाजीपुर

---

1. नाटक के तत्व सिद्धान्त और समीक्षा, विष्णु कुमार त्रिपाठी पृ0 102

का दर्श " एवं मदन मोहन शर्मा कृत " हमारा कश्मीर" आदि ।

कुल मिलाकर समकालीन हिन्दी नाटक उत्तरोत्तर विकास करता जा रहा है, रंग मंचीय गतिविधियों के फैल जाने के कारण और पाठकों की संख्या में बृद्धि होने के फलस्वरूप निरन्तर नाटकों का लेखन और प्रकाशन बढ़ रहा है ।

" हास्य नाटक "

जीवन की विसंगतियों में उभरी नाट्य वस्तु का 'मनोरंजनात्मक प्रदर्शन' हास्य नाटक का प्रधान उद्देश्य है । हास्य नाटक के बहाने जीवन की तनावपूर्ण स्थितियों से कुछ देर तक मनुष्य को छुटकारा पाने से है ।

हास्य नाटक की परम्परा के विकास में मनुष्यों के दोषों तथा नयूनताओं को लेकर अहंकार ,असंगति, अनैतिकता या झूठी प्रतिष्ठिाओं को दिग्दर्शित करने से है । इसे मानवीय भावनाओं की हास्यास्पद रंग स्थली कहा गया है । हिन्दी के हास्य नाटकों ने धीरे-धीरे प्रहसन की परम्परागत छवि से अपने को मुक्त किया है । बद्रीनाथ भट्ट ,शिवनाथ शर्मा, जी0पी0 श्रीवास्तव , हरिशंकर शर्मा, उपेन्द्र नाथ अश्क, चिरंजीत, जगदीश चन्द्र माथुर , जयनाथ नलिन, रमेश मेहता, स्वरूप कुमारि बख्शी , राम कुमार वर्मा, राजेन्द्र कुमार शर्मा, गणपति लाल डॉगी , रामेश्वर सिंह कश्यप, शंकर पुणतांबेकर, सन्तोष नारायण नौटियाल , के0पी0सक्सेना,

विनोद रस्तोगी , मृगतुपकरी जैसे कई नाटककारों ने विगत वर्षों से हिन्दी के हास्य नाटकों में मनोंरजक संस्कारों का क्रमशः विकास किया है ।

" हिन्दी में अनूदित नाटक "

हिन्दी नाटक के विकास में न केवल मौलिक की विशिष्ट भूमिका है, बल्कि अनूदित नाटकों का अपना महत्त्व और विस्तार भी है । इन अनुवादों में 'अनुवादक नाटककारों' को नाटकीयता की रक्षा करनी पड़ती है ।

सबसे पहली अनूदित नाट्य रचना 1544 ई0 में सामने आई । यह संस्कृत नाटक " प्रबोध – चन्द्रोदय " का संक्षिप्त अनुवाद था, जो मल्ह कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया ।

हिन्दी में संस्कृत नाटकों के ही अनुवाद से हिन्दी के नाटकों की शृंखला का वास्तविक समारम्भ हुआ था , नेवाज कृत "शकुन्तला " (1680 ई0) और लक्ष्मण सिंह शकुन्तला (1863 ई0) के बीच कई संस्कृत नाटकों का अनुवाद हिन्दी नाटकों में हुआ , इनमें से मुख्य हैं – "स्वप्न वासवदत्ता " ," मालती माधव) , "मुद्राराक्षस ", "कर्पूर मंजरी ", "प्रतिज्ञा-योगंध–रायण ", "कुण्डमाला " , "रत्नावली", "नागानन्द ", "उत्तररामचरितं", , वेणी संहार "," प्रतिभा", "मध्यम व्यायोग", "पंचरात्र" , प्रभृति नाटकों के संस्कृत से अनूदित रूप हिन्दी में सामने आये ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने शेक्सपियर के नाटक "मर्चेन्ट ऑफ वेनिस "का अनुवाद "दुर्लभ बन्धु " अथवा " वंश नगर का व्यापारी " (1880 ई0) नाम से किया था । यही दौर हिन्दी में अनूदित नाटकों का उषाकाल था । इनके अतिरिक्त जिन भारतीय भाषाओं के नाटकों का अनुवाद सामने आया उनमें बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, पंजाबी, तेलगू और मलयालम भाषायें हैं ।

विदेशी भाषाओं के नाटकों का अनुवाद तो हुआ ही है । इसके साथ कुछ अत्याधिक महत्वपूर्ण कृतियों का रूपान्तर भी प्रस्तुत किया गया है । वर्नाड शा के "पिगमेलियन" का रूपान्तर कुदसिया जैदी ने "आजर का ख्वाब " शीर्षक से, जे0पी0 प्रीस्टले के " एन इन्सपेक्टर कासम" का रूपान्तर " आवाज" शीर्षक से कृष्ण कुमार ने विलियम फेयर चाइल्ड के "साउण्ड ऑफ मर्डर " की आवाज का राज शीर्षक से एवं मोलियर का " दी माइजर का रूपान्तर "कंजूस" शीर्षक से भी आवारा ने प्रस्तुत किया ।

हरिकिशन लाल ने टेन्सी विलियम के " दी ग्लास मिनेजरी "का " कॉच के खिलौने " शीर्षक से , इल्सन के डाल्स हाउस का "गुडियाघर"शीर्षक से उमा गुप्ता ने अगाया क्रीस्टी के थ्री ब्लाइन्ड माइस का "फन्दा " शीर्षक से रूपान्तर प्रस्तुत किया है । "बिच्छू" हाल काल बहुचर्चित प्रदर्शन रहा जो मोलियर के "स्कारपियन" का वासीखान द्वारा प्रस्तुत रूपान्तर है । काभू के " क्रास पर्पसेज़ " का रूपान्तर सलदेव दुबे ने " सपने" शीर्षक से, लेसिंग के " मिना का सराय के अन्दर " शीर्षक से विनोद रस्तोगी ने रूपान्तर प्रस्तुत किये । प्रतिभा अग्रवाल

ने पिरांदैली की पुस्तक का " मनमाने की बात " शीर्षक से रूपान्तर प्रस्तुत किया ।

प्रसिद्ध विदेशी नाटककार यूजीन आयनेस्को के राइनोसारस नाटक का अनिल मुखर्जी ने 'गैंडा' नाम से, इब्सनके घोस्ट्स का नेमिचन्द जैन ने प्रेत नाम से, ओ नील के " बेयान्ड होराइजन" एवं ए लॉंग डेज जर्नी इन नाइट " का उपेन्द्र नाथ अश्क ने क्रमशः क्षितिज के पार, एवं 'लम्बे दिन की यात्रा में,' शीर्षक से प्रस्तुत किया है । चेखव के " चेरी आर्चर्ड ", "थ्री सिस्टर्स ", तथा "सी गर्ल्स " का अनुवाद राजेन्द्र यादव ने क्रमशः "चेरी का बगीचा " "तीन बहनें", "हँसिनी" शीर्षक से प्रस्तुत किया है । टालस्टाय के " लाइट इन डार्कनेस "का अनुवाद जैनेन्द्र ने किया । शेक्सपियर के ऑथेलो, मैकवेथ एवं हैमलेट का अनुवाद इसी नाम से बच्चन ने किया । शेक्सपीयर के सभी नाटकों का अनुवाद रांगेय राघव ने किया है । ज्या पाल सार्त्र के " मेन विदाउट शैडो" का अनुवाद मोहन महर्षि ने "छायाहीन इन्सान"नो एग्जीर"का सत्यदेव दुबे ने "बन्द दरवाजा " नाम से प्रस्तुत किया है । सोजो मोतो के जापानी नाटक " इबारागी" का अनुवाद नेमिचन्द्र जैन ने प्रस्तुत किया है । इन्दुजा अवस्थी ने "विक्रमोर्वशीयम् " का अनुवाद किया है, किन्तु भास के सभी नाटकों का अनुवाद मनोहर लाल गौड़ ने किया । जिसका शीर्षक था – " एकत्र भास नाटक " था । स्थान वासवदत्ता, कर्णधार, दूत वाक्य, माध्यम व्यायोग आदि का अनुवाद हरदयाल सिंह ने किया ।

शूद्रक के प्रसिद्ध नाटक "मृच्छ कटिकम्" का अनुवाद प्रभुदयाल अग्निहोत्री ने प्रस्तुत किया । हबीब तनवीर ने इसी नाटक को " मिट्टी की गाड़ी " के नाम से रूपान्तरित किया । सत्यव्रत सिन्हा ने भी इसका अनुवाद (. . में प्रस्तुत किया ।

हमारे देश की प्रान्तीय भाषाओं में कन्नड़ के दो नाटककार आद्य रंगाचार्य और गिरीश कर्नाड की कृतियों हिन्दी में अनूदित हुई। आद्य रंगाचार्य के नाटकों का अनुवाद क्रमशः नेमिचन्द्र जैन "कभी चित कभी पट" नामक शीर्षक से एवं कारथ नं "नामक-विनायक" नाम से अनूदित किया है।नेमिचन्द्र जैन ने "रहूँ कि न रहूँ , रंग भारत का", एवं सुनों जनमेजय" नाम से प्रस्तुत किया है।[1] गिरीश कर्नाड़ के नाटकों का अनुवाद कारंथ ने "आटे का कुक्कुट" "तुगलक" "ययति और हयवदन" शीर्षक से प्रस्तुत किया है। इनमें से "हर्षवदन" नाटक (1975 ई0) में दिल्ली के राधाकृष्ण प्रकाशत से प्रकाशित हुआ है।

कन्नड़ भाषा एवं राजस्थानी नाटक का अनुवाद हिन्दी में हुआ जिसमें मुख्य हैं शान्ता गाँधी के 'जस्था ओड़न का अनुवाद प्रसिद्ध रंग समीक्षक एवं लौक-नाट्य अध्येता श्याम परमार ने किया है। शिव कुमार जोशी के "शाम उतारा" का अनुवाद प्रतिभा अग्रवाल ने प्रस्तुत किया है। 'प्राग जी डोसा', के नाटकों का अनुवाद मघोक ने "जागे वही सबेरा" शीर्षक से जया भाटिया ने "मंगल मन्दिर" और पारस तानारी ने घर का चिराग से प्रस्तुत किया है। विनायक पुरोहित के "स्टील फ्रेम" का अनुवाद धर्मवीर भारती ने प्रस्तुत किया है। कन्हैया लाल मणिक लाल मुंशी ने नाटकों का अनुवाद पद्मसिंह शर्मा कमलेश ने, "काव्य की शशी एवं " जो है सो ठीक है" से प्रस्तुत किया; ज्योति व्यास द्वारा अनुदित मधुराय के नाटक "किसी एक फूल का नाम लाल लो" का कप्रकाशन 1974 ई0 में, दूसरा इनका नाटक प्रतिभा अग्रवाल द्वारा अनुदित हुआ।जिसका प्रकाशन 1975 ई0 में हो सका।

आचार्य आत्रेय के तेलगू नाटक एन0जी0ओ0 का मुनगी अमरोहथी द्वारा प्रस्तुत अनुवाद हैं "बाबू"।बलवन्त गार्गी के दो नाटक "धूनी की आग"और"रजिया सुल्तान" अनूदित

ई0 में डॉ0 महीप सिंह द्वारा अनूदित होकर प्रकाशित हुआ । मलयालम के नाटककार टी0एन0 गोपीनाथ नायर के दो नाटकों का अनुवाद सुधांशु चतुर्वेदी ने " परीक्षा " एवां "प्रतिध्वनि" शीर्षक से प्रस्तुत किया है । जी शंकर पिल्ले के नाटक का बन्दी " अनुवाद एन0रामानन्द राव ने प्रस्तुत किया है । इतना होते हुए भी यह सतय है कि मलयालम तेलगू तथा पंजाबी के अधिक अनुवाद अभी तक नहीं हुए।

मराठी एव बंगला के नाटकों के किये गये अनुवाद से हिन्दी में अनूदित नाटकों का भण्डार समृद्ध हुआ है । गिरीश घोष के नाटक अब्बूहसन जिसका संशोधन बादल सरकार ने किया था, इस संशोधित कृति का संशोधित अनुवाद 1974 ई0 में प्रतिभा अग्रवाल ने प्रस्तुत किया है । नेमिचन्द्र जेन ने माइकेल मधुसूदन दत्त के नाटक "क्या यही सभ्यता है" का अनुवाद प्रस्तुत किया हे और ओम प्रकाश गुप्त ने भरत चन्द्र चटर्जी के नाटक का अनुवाद रमा, विजया और षोडसी शीर्षक से किया है। हंस कुमार तिवारी ने ताराशंकर के प्रसिद्ध नाटक का अनुवाद "दो पुरूष" शीर्षक से किया है ।

बंगला के प्रसिद्ध नाटककार रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नाटकों का अनुवाद कई अनुवादकों ने किया है – प्रफुल्ल चन्द्र ओझा ने "डाकघर " , भारत भूषण अग्रवाल " मूकधारा" हजारी प्रसाद द्विवेदी ने " रक्तकरवी" अज्ञेय ने राजा और भारत भूषण अग्रवाल ने"ताँस के पत्ते " अनुवाद किये हैं । इसके साथ साथ " गृह– प्रवेश" " नदी की पूजा ", "प्रायश्चित ","तपस्विनी" ,चित्रांगदा" एवं बैकुण्ठ का खाता" अन्य अनुवाद है ।

कृष्ण कुमार ने मोहित चटर्जी के नाटक " निषाद " का अनुवाद कार्य किया है । इनका दूसरा बहुचर्चित नाटक है," गिनीपिग" जिसे सान्त्वना निगम ने प्रस्तुत किया है । बंगला फिल्म के प्रसिद्व व्यक्तित्व सत्यजीत राय के फिल्म स्क्रिप्ट " कंचन जंघा " का अनुवाद योगेन्द्र चौधरी ने प्रस्तुत किया । धनंजय बैरागी के "रजनी गंधा " का अनुवाद प्रतिभा अग्रवाल ने और शम्भुमित्र का " कांचन रंग" अनुवाद प्रस्तुत किया है नेमिचन्द्र जैन ने । बंगला रंगमंच पर छाए हुए व्यक्तित्व बादल सरकार के " पगला घोड़ा " एवं "इन्द्रजीत", "सारी रात ", " बल्लमपुर की रूप कथा ", " राम श्याम जदु"नाटकों के अनुवाद डॉ0 प्रतिभा अग्रवाल ने एवं बाकी इतिहास का नेमिचन्द्र जैन ने " बीसवीं शताब्दी " का रामगोपाल बजाज ने और कवि कहानी का अनुवाद अशोक भट्टाचार्य ने किया है । इन सब रचनाओं में अधिकांश रचनाएं प्रकाशित हो चुकी है । हिन्दी में मनोज मित्र के " बगिया बॉछा राम की " तथा बादल सरकार के "अन्त नहीं " जैसे बंगला नाटकों के अनुवाद भी लोकप्रिय हुए हैं ।

योगेश पंत जी "साकी" मनुरो के नाटक डेथ ट्रैप का हिन्दी अनुवाद किया है ।

'बसन्त कानेटकर'के नाटकों का अनुवाद बसन्तदेव ने "जाग उठा है", "रामगढ़ ", "ढ़ाई आखर प्रेम का ", तथा "धूप के साये में " शीर्षक :से किया है । बसन्त देव ने विजय तेन्दुलकर के एक नाटक " अमीर "का अनुवाद प्रस्तुत किया है । तेन्दुलकर के अन्य नाटकों का अनुवाद " एक जिद्दी लड़की ", डॉ0 विजय बापट ने "गिद्द" सई पराजये ने तथा सरोजनी वर्मा ने क्रमशः " खामोश अदालत जारी है" "पक्षी ऐसे आते हैं " तथा " मैं जीता मैं हारा " शीर्षक से प्रस्तुत किया । बसन्त देव ने "घासीराम कोतवाल" का अनुवाद प्रस्तुत किया है । सं0गो0साठे के नाटक का अनुवाद कमलाकर सोनटकके ने " कछुआ और खरगोश " शीर्षक से प्रस्तुत किया

है । वरमाला भावलंकार ने नारायण घोड़ों ताम्हणकर के नाटक का अनुवाद "उधार का पति " शीर्षक से, पुरूषोत्तम लक्ष्मण देश पाण्डेय के दो किशोर मंच नाटकों, "वंचम् बड़म् झूठम्" एवं नया गोकुल तथा "कस्तूरी मृग" शीर्षक से नाटकों के अनुवाद क्रमशः विजय बापट एवं राहुल वारपुते ने प्रस्तुत किये हैं । बसन्तदेव द्वारा किया गया सतीश आलेकर के नाटक "महानिर्वाण " का अनुवाद भी उल्लेखनीय है । हिन्दी में अनूदित नाटकों के बीच मराठी मूल से आये नाटकों की अपनी विशिष्ट पहचान है ।

इस प्रकार विभिन्न विदेशी एवं भारतीय भाषाओं के ख्याति लब्ध हिन्दी नाटकों के अनुवाद सामने आये और हिन्दी रंगमंच पर भी ये अनुदित नाटक लोकप्रिय हुए हैं और इनमें से अधिकांश नाटक मौलिक नाटकों की तरह स्वीकृत और परिचित हो गये हैं ।

अजित पुष्कल ने आगस्ट स्ट्रिंडगवर्ग के नाटक "डेबिटर" का अनुवाद " लेनदार" नाम से एवं मैक्यूज के "गोल्डेनपार " का हिन्दी अनुवाद "सोना रखने वाला वर्तन" नाम से किया । कुछ कहानियों एवं उपन्यासों का नाट्य रूपान्तर किया है । जिनमें निर्मला ,मन्दिर मस्जिद (प्रेमचन्द), फ्यूचिक की डायरी (जूलियस फ्यूचिक) , पाप कहाँ से आया (रूसी लेखक लेस्कोव जैसी रचनायें शामिल है।[2]

---

1. "हिन्दी गें अनूदित नाटक " (निबन्ध) पृ0 21
   जय प्रकाश पाण्डेय
2. "प्रजा इतिहास रचती है " पृ0 -3
   अजित पुष्पकल (भारतेन्दु नाट्य अकादमी, रंगमण्डल लखनऊ से)

इस समय के मंचीय नाटककारों में गीता जोशी मिश्रा का "मुलिया", रचना जोशी का "किसान औरत ", आशीष मुखर्जी का "करिन्दा", अनूप शुक्ला का "मुंशी", शैलेन्द्र तिवारी का "सिपाही", नन्द किशोर पन्त का "उडवा", राजीव दूबे का "जामीदार", बंसत कुमार रावत जी का "साह" , रवीन्द्र कुमार का "वैरागी ", राजेश कुमार श्रीवास्तव "जुलाहा एक ", आशीष मुखर्जी का "जुलाहा–दो" , पियूस पाण्डेय का "जुलाहा तीन, रेखा सक्सेना जी का "जुलाहिन" आशीष मुखजी के पौरिया एक", राजेश कुमार श्रीवास्तव का "पौरिया दो", सुरेश काला का "सजा", मायाशंकर प्रसाद का "अर्दली" गंगा प्रसाद जी का "मजदूर एक" एवं जयराम का "मजदूर दो "अत्यन्त सफल रूप में नाटक "भारतेन्दु नाट्य अकादमी, रंगमण्डल लखनऊ द्वारा मंचित किये गये हैं ।[1]

---

1. भारतेन्दु नाट्य अकादमी, रंगमण्डल : प्रजा इतिहास रचती है पृ0 9
अजित पुष्कल

नर - नारी सम्बन्ध और व्यक्तित्व के विखण्डन के सन्दर्भ में

समकालीन कुछ नाटकों में नारी मन के महीन सूत्र, मनुष्य के विभक्त व्यक्तित्व की त्रासदी, स्त्री-पुरूष सम्बन्ध की नई परिभाषा, प्रेम और देह का द्वन्द्व जैसे- बिन्दुओं को पूरी सच्चाई तथा तीव्रता से संस्पर्श की करने की कोशिश में कुछ नाटक समकालीन रंग परिदृश्य की खास पहचान बन गये हैं । पुराण, इतिहास, आधुनिकता एवं मिथक के प्रयोगों का सन्दर्भ मिल रहा है । प्रमुख नाटकों का विवरण इस प्रकार है :-

' सेतुबन्ध '

"सेतुबन्ध" (1972 ई0) सुरेन्द्र वर्मा ने पाँचवी शताब्दी के रचनाकार तथा वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय के ऐतिहासिक सन्दर्भों के साथ कल्पना शीलता का समावेश किया है, जिसके माध्यम से उन्होंने अपने जीवन तथा आस-पास की उन स्थितियों की तलाश की है, जिनमें पत्नी के लिए वरपुरूष पति बन जाता है और पति, वरपुरूष । नाटक के केन्द्र में प्रवरसेन के अन्तर्द्वन्द हैं, जिनके पार्श्व में एक ओर उसकी माँ प्रभावती तथा कवि कालिदास के प्रेम सन्दर्भों की पहचान है, तो दूसरी ओर सृजनात्मकता से जुड़े प्रश्नों की पीड़ादायी उपस्थित है । इन्हीं कथा प्रसंगों के प्रतीकत्व से समकालीन नारी के प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण , रचनाकार की सृजनात्मक समस्याओं तथा उस पर निर्भर जीवन की सार्थकता के सवालों को प्रभावी अभिव्यक्ति मिलती है[5]।

' नायक खलनायक विदूषक '

सुरेन्द्र वर्मा का ही "नायक खलनायक विदूषक" (1972 ई0) नर-नारी सम्बन्धों पर एकाग्र न होने के बावजूद समकालीन मनुष्य के व्यक्तित्व विखण्डन की समस्या को पुरातन परिवेश को कल्पनाशील प्रयोग से आँकता है । इस नाटक में नाट्यशास्त्रानुमोदित नाटकों के मंचन को स्वीकार किया गया है । नाट्य शास्त्र में चर्चित नायक, खलनायक और विदूषक के पृथक-पृथक चारित्रिक वैशिष्ट्य के बीच की स्पष्ट रेखा समकालीन जीवन सन्दर्भों में टूटती दिखाई दे रही है । विदूषक कुमार भट्ट के शब्दों में कहें, तो 'नायक, खलनायक और विदूषक' ये एक ही व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैं और परिस्थितियों के परिवर्तन से हर व्यक्ति में इनके दर्शन हो सकते हैं ।

' देहान्तर '

नन्द किशोर आचार्य का "देहान्तर" (1983 ई0) पौराणिक आख्यान के प्रतीकत्व के बहुआयामी निर्वाह का ऐसा नाटक है जो अपने कथ्य, शिल्प की दृष्टि से आधुनिक है । 'देहान्तर' का पर्याप्त अपने प्रतीकात्मक बिन्दु पर भोगवादी दृष्टि में डूबे समकालीन मानव की नियति को सम्प्रेषित करता है । लेखक ने समकालीन नर नारी सम्बन्धों की तीखी अभिव्यक्ति के लिए बिन्दुमती तथा पुरू के सन्दर्भों को कल्पना शीलता से रचता है । बिन्दुमती प्रेम के स्थान पर रमण को महत्त्व देकर नारी के भटकाव को मूर्त करती है । समग्र यौन सुख की तलाश में क्रियाशील ययाति और बिन्दुमती के बहाने देहान्तर मानव की शाश्वत् असन्तुष्टि को व्यंजित करता है, ऐसी असन्तुष्टि अभीशिष्ट की प्राप्ति के बाद भी समाप्त नहीं होती है ।

' इला '

डॉ0 प्रभाकर श्रोत्रिय का "इला" (1988 ई0) श्रीमद्भागवत के नवमस्कंघ के मिथकीय आख्यान और कल्पना के समावेश से आधुनिक संवेदनाओं के तीखे तेवर प्रस्तुत करता है । लेखक ने 'इला" के पुराख्यान को युगानुरूप व्याख्या द्वारा बिना किसी पूर्व निश्चित धारणा के नया मर्म, नया सन्दर्भ दिया है । इला वस्तुतः भारतीय समाज में नारी की त्रासद स्थिति के विरूद्ध एक आवाज उठाने की कोशिश का नाटक है, जिससे स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की पड़ताल और आधे अधूरेपन की त्रासदी लेखक की रचनात्मक यथार्थ दृष्टि की परिचायक है । "इला" का आख्यान स्रोत अपने आप में समाकलीन विसंगतियों को मूर्त करता है जिसमें निहित इला का सुद्युम्न में तथा सुद्युम्न का पुनः इला में परिवर्तन पुत्री को पुत्र में बदलने की अमानवीय चाहत के चिरन्तन सन्दर्भों को पूरी नग्नता के साथ उद्घाटित कर देता है । नारी चेतना की निर्बाध प्रस्तुति के साथ ही 'इला' पुरूष प्रधान समाज की विसंगतियों, राजतन्त्र से जुड़ी विडम्बनाओं तथा बुद्धिजीवी वर्ग की कायरता पर तीखे प्रहार करता है । इला नाटक का महत्तव नारी विषयक रूढ़िबद्ध दृष्टिकोण को बदलने की आकाँक्षा में हैं और साथ ही राजनीतिक सामाजिक धार्मिक परिदृश्य की बहुस्तरीय विसंगतियों को उभारकर कुछ ठहरकर सोंचने को विवस कर देने में है । महाकाव्यात्मक ताने-बाने में बुना 'इला' मंचन के लिए पर्याप्त कल्पनाशीलता की माँग करता है । नाटक

में शास्त्रीय संस्कृत रंग शैली तथा संगीत इत्यादि की सम्भावनाएं नाटककार के आधुनिकता बोध को प्रमाणित करती है- ऐसा आधुनिकता बोध जो अपनी जड़ों से जुड़ा है[4]।

' हस्तिनापुर '

नन्द किशोर आचार्य का "हस्तिनापुर" (1996 ई0) महाभारत की घटनाओं के आधार पर नारी त्रासदी के सन्दर्भों को नए कोण से देखने-परखने का प्रयत्न करता है । इस नाटक में पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के बीच स्त्री की अन्तहीन स्थिति पर प्रश्न खड़े करने में है । अभिप्रेत की सिद्धि हेतु लेखक ने विदुर की माता शुभा के अब तक नितान्त अनछुए पहलुओं को कल्पना के समावेश से रचा है । युधिष्ठिर के राज्यारोहण के बाद शुभा और कुन्ती महाभारत युद्ध के पार्श्व में निहित सत्ता के वंशानुगत चरित्र को बनाये रखने के प्रयासों को स्मृति से मूर्त करती है । शुभा उन प्रयासों पर प्रश्न खड़े करती है, क्योंकि वह मात्र दृष्टा नहीं स्वयं भोक्ता है । वह उन क्षणों को दुहराती है, जिसमें राजनीति तथा सामाजिक मर्यादा के नाम पर बार-बार स्त्री मन की हत्या की गयी- कभी नियोग के नाम पर तो कभी रक्त शुद्धि तथा वंश परम्परा के नाम पर । नाटक में लेखक ने नारी मुक्ति के पहचान बिन्दुओं को पश्चिम से आगत सिद्धान्तों से आक्रान्त हुए बिना स्थिति सन्दर्भों से ही परखने का प्रयास किया है, बिना उसकी मूल संरचना में क्षति पहुँचाए । इसी कारण समकालीन परिदृश्य में "हस्तिनापुर" को हम भारतीय दृष्टि से नारी मुक्ति के प्रश्नों को उठाने वाले विशेष नाटकों में अकेला पाते हैं । पुराख्यान के सृजनाशील उपयोग के साथ ही हस्तिनापुर की आधुनिकता रूपबंध, रंगशिल्प तथा रंगशाला में भी दिखाई देती है । सत्ता के षडयन्त्रों के बीच से नारी शोषण के सन्दर्भों की दृष्टा और भोक्ता शुभा नाट्यांत में स्त्री को उपयोग की वस्तु मानने वाले कुरूवंश से मुक्त हस्तिनापुर को अपनी अर्थात् सम्पूर्ण नारी जाति मुक्ति की पहचान के रूप में देखती है ।

सन्दर्भ एवं विवेचित नाटक

1. डॉ0 नगेन्द्र नयी समीक्षा नये सन्दर्भ, पृ0 63
2. डॉ0 जगदीश गुप्त नयी कविताः स्वरूप और समस्याएं, पृ0 20
3. दश रूपक 1/15-16

" सन् उन्नीस सौ सत्तर के बाद के नाटकों में प्रयुक्त मिथक, पुराण और इतिहास तथा आधुनिकताबोध "

डा0 नगेन्द्र के विचारानुसार "आधुनिकता का अर्थ है वर्तमान् का युगबोध, यहाँ दृष्टि वर्तमान् में ही केन्द्रित रहती है । आज की स्थिति का यथार्थ परिज्ञान ही आधुनिकता का अधार है"[1] । डा0 जगदीश गुप्त भी आधुनिकता का विद्रोह रूढ़ियों के प्रति मानते हैं, परम्परा से नहीं ।[2] दोनों विचारक 'आधुनिकता' के लिए 'परम्परा' के अनुभव को स्वीकार करते हैं ।

भारतीय साहित्य में पुराण और इतिहास के सन्दर्भों पर केन्द्रित साहित्य सृजन की सुदीर्घ परम्परा रही है । नाट्य की कथावस्तु के तीन आधारों- प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र[3] में प्रथम के केन्द्र में इतिहास, पुराण या परम्परागत जनश्रुति ही है तथा तीसरा आधार 'मिश्र' उनमें कल्पना के समावेश को मूर्त करता है । समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य में मिथक तथा पौराणिक आख्यान के सर्जनात्मक प्रयोग की प्रवृत्ति उभार पर है । सातवें दशक तक आते-आते हिन्दी में सार्थक रंगदृष्टि से सम्पन्न नाटकों की स्पष्ट पहचान उभरने लगी थी इस प्रकार कोरे पाठ्य आलेखों या रंग दृष्टि विहीन कलात्मक संवादों के ढाँचे से हिन्दी नाटक को मुक्ति मिली । सम्प्रति हिन्दी नाटकों में बहुत कम ही ऐसे नाटक हैं, जिनमें सही अर्थ युगों में युगीन चेतना का संस्पर्श मिलता है । मिथक आदि के प्रयोगों में प्रवृत्त हिन्दी नाटकों में संवेदना के धरातल पर आधुनिकता बोध मुख्यता दो दिशाओं में प्रवाहित दिखाई देता है:-

पहली दिशा है- वर्तमान सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था से जुड़ी विसंगतियों से टकराहट ।

दूसरी दिशा में- नर-नारी सम्बन्ध और व्यक्तित्व के विखण्डन के सन्दर्भों से जुड़ी है ।

सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था की विसंगतियों पर केन्द्रित नाटक

1. कथा एक कंस की

सत्ता तन्त्र से जुड़ी विसंगतियों के समकालीन बिन्दु पर एकाग्र नाटकों में दया प्रकाश सिन्हा का कथा 'एक कंस की' (सन् 1974 ई0) पौराणिक गाथा और वर्तमान के अन्तर्सम्बन्धों को नये ढंग से परिभाषित करने को मूर्त करता है । नाटककार ने इसे कुछ प्रसिद्ध तथा कुछ घटना

लेखक ने कंस के माध्यम से व्यक्ति केन्द्रित शासन तन्त्र के निर्माण तथा विनाश की शाश्वत गाथा को मूर्त करने की कोशिश की है, जिसके प्रतिरूप हम औरंगजेब, हिटलर, मुसोलनी या फिर प्रजातंत्र के दौर में उपजते स्वार्थी शासकों के बीच देख सकते हैं । इस प्रतीकत्व के निर्वाह के लिए तथा 'एक कंस की' अग्रसेन और वसुदेव के प्रति कंस की घृणा, आशंका और अविश्वास के तनाव से लेकर कृष्ण के विद्रोह तक की घटनाओं को नये कोण से देखता परखता है । इसमें कंस स्वयं 'एक साधारण मनुष्य की असाधारण महत्वाकांक्षा की कथा' कहता है[6]।

इस तरह नाटककार ने पौराणिक कंस के सपाट तथा इकहरे चरित्र की बहुआयामी प्रतीकत्व देकर एक साथ दो स्तरों पर राजनीतिक तथा मानवीयता को पारस्परिकता में हर युग के कंस की कहानी कही है, जो अपनी निष्पत्ति में युगीन चेतना के संक्रमण के साथ लेख के आधुनिकता बोध को सार्थक रूपाकार देता है । नाट्य रचना की दृष्टि से 'कथा एक कंस की' में यथार्थवादी पद्धति के साथ विसंगतिपरक शैली का प्रयोग हुआ है, जिसमें समान्तर कार्य व्यापार का नियोजन, यथार्थपरक दृश्यबंध नाटक में नाटक की युक्ति का कल्पनामूलक प्रयोग तथा स्मृत्यावलोकन की बहुआयामिता कथ्य की नाटकीयता की कार्यान्विति को प्रभावी आधार देती है ।

2. एक सत्य हरिश्चन्द्र (1975 ई0)

'एक सत्य हरिश्चन्द्र' में डा0 लक्ष्मी नारायण लाल ने श्रीमद् भागवत महापुराण के नवमस्कन्ध के सप्तम अध्याय की लोक विश्रुत कथा को आधार बनाया है, जिसका केन्द्रीय नायक 'हरिश्चन्द्र' है । नाटक की विशेषता है कि हरिश्चन्द्र के आख्यान के सर्जनात्मक उपयोग में है नाटक में नाटक की युक्ति से उनकी क्रमशः हरिश्चन्द्र तथा इन्द्र के रूप में प्रतीकात्मक संभावनाँए खुलती हैं, और इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद लोकतन्त्र कि नितान्त षडयन्त्र बन जाने की नियति सामने आ जाती है ।

राजनीतिक दुश्चक्र की अभिव्यक्ति के साथ ही यह नाटक भारतीय समाज की कई विसंगतियों को उद्घाटित करता है[7]। ग्रामीण समाज में स्थिति जाति प्रथा का दर्द भी नाटक में मौजूद है । युगीन कथ्य के सम्प्रेषण के साथ ही इस नाटक का नाट्य बंध, शिल्प तथा रंग चेतना भारतीय संदर्भ में आधुनिकता बोध में मूर्त करते हैं । नाटक का पौराणिक आख्यान को गहरा आधुनिक सन्दर्भ और अर्थ देने में और साथ ही भारतीय परिवेश की मंचीय निष्पत्ति के लिए शास्त्रीय तथा लोक रंगमंच समावेशी प्रयोग में भी ।

3. अग्निलीक

जहाँ समसामयिक राजनीतिक सन्दर्भों की अभिव्यक्ति रचनाकार का प्रथम उद्देश्य रहा है । 'अग्निलीक' के राम पूर्णतः सामंती संस्कारों से ग्रस्त हैं, जिनके रहते शासन तन्त्र एवं स्वयं राम प्रजा से दूर होते जाते हैं । प्रजा को अँधेरे में रखकर एक पागल की बात सुनी जाती है । सीता को सामंती शोषण का शिकार बनाया जाता है । यह नाट्यकृति समसामयिक सन्दर्भों की अभिव्यक्ति हेतु पौराणिक आख्यानों के प्रतीकात्मक उपयोग की दिशा को लेकर गहरे प्रश्न खड़े करती है । सत्ता से प्रजा की दूरी के समकालीन सन्दर्भ की अभिव्यक्ति रचनाकार की युगीन समझ को मूर्त करती है, लेकिन इसके लिए राम के परम्पराग्राह्य चरित्र को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करना लेखक का निरर्थक स्वेच्छाचार ही है । संकीर्ण आधुनिकता बोध के साथ नाटक की सीमा नाटक पर कविता के भारी होने में भी है[8]।

4. एक और द्रोणाचार्य

डा0 शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य' (1976 ई0) की महाभारत के प्रसिद्ध चरित्र गुरू द्रोण के सन्दर्भो का प्रयोग करते हुए समकालीन जीवन की समस्याओं को अभिव्यक्ति देता है । आधुनिक युग का बुद्धिजीवी ढाँचे के बीच स्वयं को किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में पाता है और 'एक और द्रोणाचार्य' की संज्ञा को सार्थक कर देता है, उसके समक्ष अस्तित्व संकट का प्रश्न उसी प्रकार मौजूद है, जैसे गुरू द्रोण के सामने प्रारम्भिक दिनों में था । नाटक का नायक प्राध्यापक अरविन्द भी गुरू द्रोण सदृश समझौते का चरित्र अपनाता है उसे कई स्तरों पर विसंगतियों से जूझना पड़ता है । युवा पीढ़ी का भटकाव, प्रशासन तनत्र की ढील, सिद्धान्त हीन जीवन संघर्ष, अवसर का लाभ लेने की होड़, शिक्षा तंत्र में राजनीति की घुसपैठ जैसे दंश अरविन्द के कर्तव्य पालन की जिद तोड़ देते हैं और उसे अन्ततोगत्वा सिद्धान्तों के स्थान पर सुविधओं का अनुकर्ता बनना पड़ता है । आज के द्रोण अरविन्द के सामने भी एकलव्य का अगूँठा माँगने, द्रौपदी का चीरहरण होता देखने तथा धोखे से अभिमन्यु को मरवा देने जैसी स्थितियाँ आती हैं और वह विवश हो कुछ सार्थक न कर पाने की पीड़ा को झेलता है ।

5. आठवाँ सर्ग

सुरेन्द्र वर्मा का "आठवाँ सर्ग" (1976 ई0) महाकवि कालिदास के महाकाव्य

"कुमार सम्भव" के रचना काल के दौर की घटनाओं के बहाने साहित्य में श्लीलता, अश्लीलता के प्रश्न तथा राज्याश्रय में लेखकीय दायित्व के सन्दर्भों को उठाता है । आठवां सर्ग शिव-पार्वती की उद्दाम विलास क्रीड़ाओं के प्रसंग से साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता के प्रश्न को उठाने को, उठाने के साथ ही रचनाकार तथा शासनतंत्र के अन्तः सम्बन्धों की पड़ताल करता है । नाटककार ने आपातकालीन भारत में, काल के वृहत्तर सन्दर्भों में प्रत्येक युग में लेखकीय अभिव्यक्ति बनाम शासन तन्त्र के द्वन्द्व को भी प्रतीकात्मक निष्पत्ति दी है । "आठवा सर्ग" का महत्तव स्त्री पुरूष के आत्मीय अन्तरंग सम्बन्धों को और महीनता से पकड़ने में है । काम सम्बन्धों को बिना आघात पहुँचाए सर्जनात्मक अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया है ।

"आठवा सर्ग" अभिव्यक्ति संयम, अभिप्रेत की सटीक सम्प्रेषण क्षमता, संवेदनशील एवं काव्यात्मक नाट्य भाषा के अनुसंधान तथा उसके व्यंजनात्मक उपयोग की दृष्टि से भी सुरेन्द्र वर्मा को आधुनिकता बोध का संकेत करता है ।

6. **पक्ष-विपक्ष**

अनुपम आनन्द का "पक्ष-विपक्ष" (1986 ई0) कालिदास की प्रसिद्ध नाट्यकृति 'मालकिमाग्निम्त्रिम्'[12] के कुछ प्रसंगों के परिवर्तन के माध्यम से समकालीन राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रहार करता है । "पक्ष-विपक्ष" का अग्निमित्र भी कालिदास की मूल कृति के सदृश मालविका के प्रणय-प्रसंग में डूबा है, किन्तु यहाँ उसे प्रजा से दूर बताया गया है, प्रजा को 'चरण दर्शन' देने की व्यंग्यात्मकता के साथ अन्तःपुर के नृत्याचार्य हरदत्त और गणदास बुद्धिजीवी वर्ग के प्रतीक बनकर उभरते हैं, जिनका विद्रोह राजनीतिक दुष्चक्रों के चलते अमूर्त हो जाता है । विदूषक उनकी विद्रोहात्मक गतिविधियों को अपने हाथों में ले लेता है, अग्निमित्र-मालविका के प्रकरण से प्रजा का ध्यान हटाने के लिए इस स्तर पर नाटक वर्तमान युगी राजसभा से जुडी चालाकियों को व्यंग्य के धरातल पर मूर्त कर देता है, जहाँ प्रजा के पक्ष और विपक्ष दोनों ओर एक ही सत्ता काम कर रही है । फलतः प्रजा का विद्रोह तात्कालिक बनकर रह जाता है और बिना किसी सार्थक परिवर्तन के विरोचित हो जाता है । राष्ट्र के अन्तरंग की समस्याओं की बाहरी आक्रमण का भय दिखाकर छिपा दिया जाता है । इस सारे घटना क्रम में पराजय सदैव विद्रोह के उत्प्रेरक बुद्धि जीवी वर्ग की होती है ।

नाट्यबन्ध के धरातल पर नाटककार के यथार्थवादी रंग व्यापार के साथ प्रजा की विडम्बना को उभार के लिए विसंगत रंग शैली के समावेश का सार्थक प्रयोग किया है । कालिदास की मूलकृति के काव्यत्व की सूक्ष्म समझ के साथउसके वैपरीत्य में विसंगति का प्रवेश स्थितियों की भयावहता को उभारने में लेखकीय कल्पनाशीलता का प्रमाण है ।

7. यमगाथा

दूधनाथ सिंह का "यमगाथा"[13] (1989 ई0) ऋग्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में पुरूरवा उर्वशी तथा इन्द्रविषयक आख्यान सूत्रों को उठाकर उसके साथ कल्पना के समावेश से विशिष्ट कालखण्ड के अनतविरोधों के बहाने समकालीन सामाजिक विसंगतियों को अभिव्यक्त करता है । "यमगाथा" का वैशिष्ट्य इस प्रसिद्ध मिथक को एक नये तरीके से प्रयुक्त करने में है, जिसके कारण यह कृति लेखक की अपनी ऐतिहासिक तथा द्वन्दात्मक भौतिक वादी दृष्टि को प्रस्तावित करने में समर्थ सिद्ध हुई है ।

यमगाथा में मिथकीय सन्दर्भों के बर्ताव पर कई प्रश्न खड़े होते हैं । वशिष्ठ की अनार्य ब्राह्मण के रूप में परिकल्पना 'देव-असुर' संघर्ष को 'आर्य-अनार्य' के संघर्ष के रूप में दिखाना वैदिक यज्ञों की शोषण के औजार के रूप में परख- जैसे कई बिन्दु मिथकीय विश्लेषण की दृष्टि पर सवाल खड़े करते हैं । इनके बीच यह प्रश्न गहराता है कि लेखनीय अभिप्रेत के सिद्ध के लिए प्राचीन आख्यानों के साथ किस सीमा तक हस्तक्षेप मान्य किया जा सकता है ? यद्यपि इंद्र सहित अन्य देवों की ईर्ष्यालुवृत्ति के प्रसंग प्राचीन वाड.मय में बिखरे पड़े हैं, लेकिन यमगाथा की मुश्किलें 'इन्द्र-पुरूरवा' के द्वन्दु को शोषक-शोषिक आर्य-अनार्य, प्रभु वर्ग, सर्वहारा यानि कुल मिलाकर वर्ग संघर्ष के रूप में देखने से शुरू होती हे । इस दृष्टि के प्रक्षेपण के लिए नाटककार ने ऋग्वेद के पुरूरवा-उर्वसी-संवाद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेखित पुरूरवा विषयक परस्पर विरोधी विशेषणों से संकेत लिए हैं, जिनसे वर्ग समाज रचाव से लेकर वर्ग संघर्ष तक की प्रक्रिया को अभिव्यक्ति दी जा सके । यहाँ पुरूरवा शासक एवं पुरोहित वर्ग के संयुक्त तन्त्र के विरूद्ध प्रतिकार करने वाले जननायक का प्रतीक बनकर उभरता है, तो इन्द्र सत्ता के मद में चूर शोषक का । दूधनाध ने नारी मन की पीड़ा के युगीन परिदृश्य को भी उभारने का प्रयास किया है ।

वस्तुतः दूधनाध सिंह का 'यमगाथा' मिथकीय सन्दर्भों से जुड़े विवादों के बावजूद

हमारे समय और समाज के कई रंगों को उद्घाटित करने के लिए प्रभावित करता है, जिनकी भयावह उपस्थिति समकालीन विश्व परिदृश्य को असहज बना रही है ।

'यमगाथा' का नाटकीय विधान संहर्ष तथा तनाव की संगति में अत्यन्त प्रभावपूर्ण है । लेखक ने नाटकीय अन्त को त्रासदी के स्थान पर एक आशा के बिन्दु पर छोड़ा है - संघर्षशील जनचेतना के पुनरागमन के विश्वास के साथ ।

8. गुलाम बादशाह (1996 ई0)

नन्द किशोर आचार्य के "गुलाम बादशाह" (1996 ई0) का आगमन नया आयाम रचता है, जो 1284-86 ई0 के बीच सुल्तान ग्यासुद्दीन बलबन के दौर से जुड़ी घटनाओं को आधार बनाता है । प्रस्तुत नाटक इतिहास प्रसिद्ध प्रसंगों तथा चरित्रों के लौह आवरण को तोड़कर उनके पीछे छुपी इंसानी जिन्दगी की तलाश समकालीन नाट्य सृजन की महत्तवपूर्ण घटना है । 'गुलाम बादशाह' के केन्द्र में सुल्तान बलबन के होने के बावजूद व्यापक समाज के तीन चेहरे- सत्तातंत्र, बुद्धिजीवी और जनता यहाँ अपनी-अपनी शक्ति और सीमाओं में कैद नज़र आते हैं । पहले आयाम में बलबन का अन्तर्द्वन्द्व है । शासक पक्ष इतना हावी है कि वह रिश्तों तथा मानवीयता से दूर होता जाता है । उसी अमानवीयता का विस्तार प्रजा पर अत्याचारों के रूप में प्रतिफलित होता है । यही राजसत्ता से जुड़ा शाश्वत प्रश्न उभरता है- 'शासन प्रजा से दूरी रखकर सुरक्षित है या उनके दिलों पर राज करने में' । बलबन सत्ता की सुरक्षा के लिए दूरी का रास्ता अपनाता है । इस धरातल पर 'गुलाम बादशाह' इतिहास के कथानक से न्यायप्रियता के नाम पर जन सामान्य में आतंकराज स्थापित करने के वर्तमानकालीन शासकों के घृणित प्रयासों की व्यंजना करता है । आज के राजनीतिक परिदृश्य के विसंगत, किन्तु अनिवार्य दृश्य- सत्ता में सीमित परिवारों की घुसपैठ, शासक और शासित की असमाप्त दूरी, गुटबाजी के खेल और राजनीति के सनातन हथकण्डे नाटकीय प्रवाह के साथ-साथ मूर्त होते हैं । नाटक का दूसरा आयाम अमीर खुसरो के रूप में बुद्धिजीवी वर्ग से जुड़ा है, जो समय की समझ के बावजूद परिवर्तन लाने में असमर्थ दिखाई देता है । तीसरा चेहरा सामान्य जनता का है, जो शाश्वत काल से राजनीतिक चेतना से सम्पन्न होने के बावजूद निष्क्रियता के बिन्दु पर स्थित है । इतिहास के बहाने समसामयिकता की अभिव्यक्ति का बृहत्तर सन्दर्भ 'गुलाम बादशाह' के आधुनिकता बोध की पहचान बनकर उभरता है ।

सन्दर्भ एवं विवेचित नाटक

1. डॉ० नगेन्द्र — नयी समीक्षा नये सन्दर्भ, पृ० 63
2. डॉ० जगदीश गुप्त — नयी कविता : स्वरूप और समस्यायें, पृ० 20
3. दशरूपक — 1/15-16
4. डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय — इला
5. सुरेन्द्र वर्मा — सेतुबन्ध, नायक खलनायक विदूषक, आठवाँ सर्ग
6. दया प्रकाश सिन्हा — कथा एक कंस की
7. डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल — एक सत्य हरिश्चन्द्र
8. भारत भूषण अग्रवाल — अग्निलीक
9. रमेश बक्शी — देवयानी का कहना है
10. डॉ० शंकर घोष — एक और द्रोणाचार्य
11. नन्द किशोर आचार्य — देहान्तर, गुलाम बादशाह, हस्तिनापुर
12. अनुपम आनन्द — पक्ष विपक्ष
13. दूधनाथ सिंह — यमगाथा

अध्याय – दो

रंगमंच

रंगमंच
नाट्य कृतित्वपक्ष (नाटक)
प्रस्तुतीकरण पक्ष
दर्शक पक्ष
भौतिक पक्ष
(रंगभवन)
निर्देशन
व्यवस्था
मंच
रंगशाला
अभिनय
रंगशिल्प
आंगिक
वाचिक
आहार्य
सात्विक
मंच सज्जा
प्रकाश
वस्तु विन्यास
रूप विन्यास
संगीत तथा
ध्वनि विन्यास
रिहर्सल
टिकट से लेकर विज्ञापन
और समापन तक का
प्रबन्ध
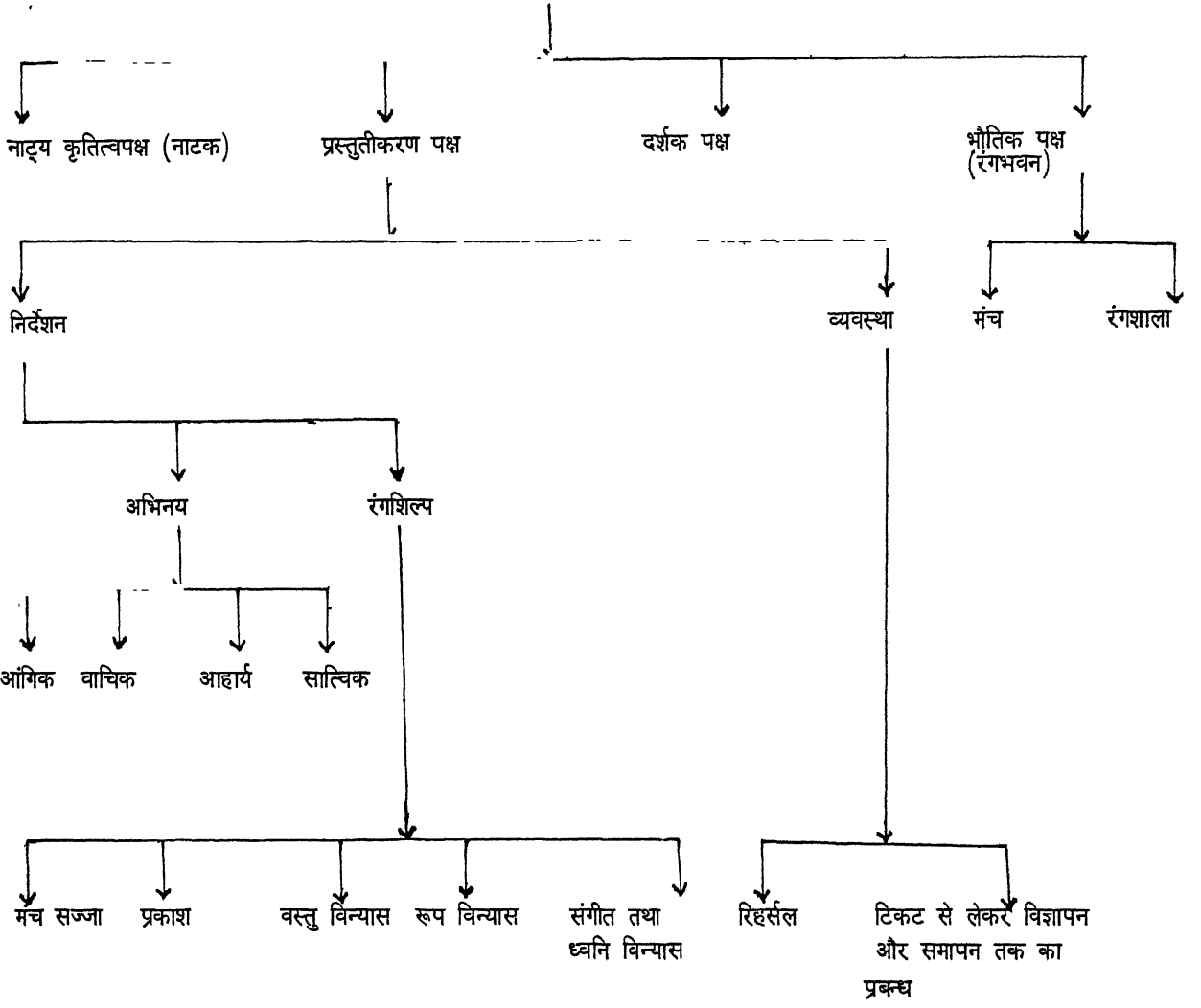
अध्याय - दो

"रंगमंच"

'रंगमंच' में दो शब्द हैं, पहला 'रंग', दूसरा 'मंच' । रंग मायने वर्ण और वर्ण मायने रंग करना, रोशन करना, रंगना, अंकित करना, निरूपण करना।[1] वर्ण का अभिप्राय और भी है, जो अक्षरों, अर्थ समूहों में अपने आपको अभिव्यक्त करता है जिससे छन्द और रस बनते हैं, जिन्हें मंगलों की करने वाली **सरस्वती** और **गणेश** की संज्ञा मिली है।[2] जीवन में जहां कहीं भी हमें उल्लास, उत्साह, सौन्दर्य दिखाई पड़ता है या अनुभूति होती है वहां भी हम कहते हैं कि "वाह क्या रंग है"। प्रायः हम कहते हैं कि "आप में बड़ा रंग है"। हम सुनते हैं कि "आज कल आपके क्या रंग हैं"। रंग का अर्थ है उल्लास । प्रकृति जब उत्साह दिखाती है, मनुष्य जब उत्साह से भरपूर होता है तो उसमें एक विशेष रंग सहज ही उभर आता है। प्रकृति के उल्लास का पूर्ण विकास हम **बसन्त ऋतु** में पाते हैं। मनुष्य जब तरूणाई में प्रवेश करता है तब उस अवस्था में उसकी पूरी प्रकृति में, उसके उठने -बैठने उसके साज श्रृंगार और उसके पूरे आचरण में एक रंग छलकने लगता है। कला के स्तर रूप रंग से अभिप्राय है - एक आन्तरिक उल्लास और एक सम्पूर्ण उत्साह ।

मंच किसे कहते हैं?

मंच उस स्थान, उस जगह को कहते हैं, उस भूमि को कहते हैं जहां पर वह रंग, या कोई रंग प्रगट हो रहा है। जहां वह उल्लास, जहां वह उत्साह प्रतिष्ठित हो रहा है, क्रियान्वित हो रहा है। हमारे यहां रंगमंच शब्द नहीं था;, हमारे यहां 'रंगभूमि' है। मंच शब्द पश्चिम के 'स्टेज' शब्द का सीधा अनुवाद है। 'स्टेज' में एक प्लेटफार्म की व्यंजना है। जिसमें यह रूप प्रकट होता है कि यह एक ऐसी जगह जो जमीन की सतह से ऊपर उठा हुआ है।

हमारे यहां 'मंच' की अवधारणा नहीं है, बल्कि 'भूमि' की अवधारणा है। भूमि समस्त प्रजनन सृजन की अधिष्ठात्री है। हमारी संस्कृति में भूमि पूरे विराट नाटक,

पूरी भूमि का आधार है। सम्भवतः इसीलिए 'भूमि' को हमारे यहां 'मां' कहा गया है और इसकी पूजा का विधान है। चाहे कोई उत्सव हो, पर्व हो, धार्मिक अनुष्ठान हो, ऐसा उद्घोष अवश्य किया जाता है कि 'भूमि मेरी माता है, मैं भूमि का पुत्र हूँ।" इस तरह भूमि हमारी संस्कृति चेतना का मूल तत्त्व है। यह समाज की विधायिका शक्ति है। इसी भूमि तत्त्व से नाट्य में 'दिक्' और 'काल' की व्यंजना है। हमारे यहां 'रंगभूमि' की अर्थवत्ता है, इसका प्रमाण हमारी सम्पूर्ण लोक चेतना और रंगदृष्टि में व्याप्त है।[3]

हमारी संस्कृति में जो शब्द कला के स्तर पर सर्वत्र व्यवहृत होता है वह रंगभूमि है। रामायण में रंगभूमि शब्द अनेक स्थानों पर आया है यथा -

1. रंगभूमि जब सिय पगुधारी।
2. रंगभूमि आये दोउ भाई, असि सुधि सब पुरवासिन्ह पाई।

इसमें 'भूमि' शब्द जिस रूप में प्रयुक्त हुआ है उसमें यही संकेत है कि अब जिस भूमि पर सीता का प्रवेश हुआ है, इसमें एक रंग की सृष्टि सहज हो गयी, क्योंकि भूमा का सारा रंग इसी भूमि में ही घटित हो रहा है। " भूमि का एक विशेष अर्थ नाट्य की दृष्टि से वह जगह है जहां दृष्टि लगी है "।

गोविन्द चातक जी अपनी पुस्तक **'रंगमंच कला और सृष्टि'** में लिखाते हैं कि 'रंगमंच' शब्द का प्रयोग व्यापक और समिति अर्थो में किया गया है। अंग्रेजी में इसके लिए दो शब्द प्रयोग में आते हैं- (1) स्टेज (2) थियेटर ।

"स्टेज" शब्द प्रायः **नाट्य मण्डप** अथवा **रंगशाला** के लिए प्रयुक्त होता है। बहुत खींचा—तानी करने पर इसका जो चित्र उभरता है उसमें नाट्य मण्डम, दृश्य-बंध, जवनिका, प्रकाश-योजना, अभिनेता टिकट घर, सज्जाघर, प्रेक्षागृह आदि नाम आते हैं। वस्तुतः स्टेज शब्द रंगमंच के दृश्य स्थूल पक्ष को ही अधिक व्यंजित करता है, किन्तु रंगमंच बाहर से स्थूल भले ही हो, उसका एक जटिल आन्तरिक सूक्ष्म स्वरूप भी है वाह्य स्थूल रूप उस आन्तरिक सूक्ष्म स्वरूप की उपलब्ध साधन मात्र है।

अंग्रेजी में थियेटर शब्द रंगमंच के स्थूल और सूक्ष्म दोनों अंगों को अभिव्यक्त करता है। थियेटर के अन्तर्गत रंगभवन और उसके स्थूल उपादान ही नहीं आते, वरन् नाट्य कृति और समस्त रंगकर्म और रूढ़ियों और प्रदर्शन में निहित शिल्प, भाव-बोध और सर्जनात्मक धरातल भी उसी में सम्मिलित है। वस्तुतः थियेटर अपने में एक पूरी संस्था, एक पूरा सर्जनात्मक अभियान है और उसके कई आयाम भाव भूमियां हैं।[4]

रंगमंच के सन्दर्भ में 'राबर्ट एडमण्ड जोन्स' का मत है कि "कुछ लोग इसे गम्भीर मन्दिर मानते हैं तो कुछ लोग इसे एक वेश्यालय और कुछ लोग एक प्रयोग शाला या कर्मशाला मानते हैं तो कुछ लोग कला या खेल"[5]

"रिचर्ड साउदर्न" का विचार है कि रंगमंच प्याज के दाने की तरह, उसके एक-एक छिलके को निकालते जाइये तो लगेगा कि यही रंगमंच कला है, माने कभी दृश्य सज्जा, कभी संवाद और कभी अभिनय। एक-एक छिलके को अलग छीलते जायेंगे तो रंगमंच का सही स्वरूप हाथ नहीं लगेगा। रंगमंच की कला तो सम्पूर्ण वस्तु है और उसी में उसका सार तत्त्व निहित है"।[6]

इस तरह रंगमंच भी, तरह - तरह के उद्देश्यों के साथ जुड़ा रहता है, कही उसके पीछे धन है, कहीं पागलपन है, कहीं राजनीति है तो कहीं मात्र मनोरंजन है। इन सारी सीमाओं पर नाटककार, अभिनेता कहीं मारे-मारे फिरते हैं और कहीं आशा निराशा से भरे रहते हैं।

वास्तव में रंगमंच एक अनुभूति है, एक समन्वित कला है, सम्प्रेषण का एक साकार माध्यम है, किन्तु रंगमंच इतना ही नहीं है वह कृति ही नहीं, क्रियामाण भी है। वह स्वयं एक कार्य है। एक सर्जनात्मक कला से अधिक एक प्रदर्शनकारी कला एवं कार्यकारी कला है। रंगमंच तमाम कलाकारों के बीच एक जबर्दस्त आमना - सामना है, जो कहीं चुनौती है, कहीं लड़ाई है जो भी हो रंगमंच अपने समय, काल, समाज, देश, संस्कृति का ऐसा दर्पण है जिसमें हर वस्तु अपने सारे रंगों के साथ उभर कर आती है ।

सन्दर्भ संकेत :

1. वर्णितम् जयदेवेनहरिदं प्रणतेन - गीत गोविन्द-3

2. वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्द सामपि

   मंगलानां च कर्तारौ बन्दे वाणी विनायकौ

   श्री रामचरित मानस, बालकाण्ड, मंगलाचरण

3. रंगमंच देखना और जानना, पृ0 17 -22

   लक्ष्मी नारायण लाल

4. रंगमंच कला और सृष्टि, पृ0 37

   गोविन्द चातक

5. रॉवर्ट एडमण्ड जोन्स ड्रेमेटिक इमैजिनेशन पृ0 - 23

6. रिचर्ड साउदर्न सेवन एजेज आल थियेटर पृ0 - 21

" हिन्दी रंगमंच "

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व नाटक रचना के साथ - साथ लोगों का ध्यान हिन्दी रंगमंच की ओर भी गया था, किन्तु भारत की स्वतन्त्रता के बाद रंगमंच की ओर अधिक ध्यान दिया गया । आज रंगमंच का यथार्थ जीवन से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास हो रहा हैं। रंगमंच नाट्य पद्धति को भी प्रभावित कर रहा है। फलतः आज की नाट्य रचना, पद्धति से भिन्न हो गयी है। पश्चिम से प्रभावित रंगमंच के रूप दृश्य सज्जा, रंग सज्जा आदि पर दृष्टि रहने के कारण परम्परागत रचना पद्धति में परिवर्तन होना अनिवार्य था। स्वगत कथनों का अभाव, दार्शनिक एवं लम्बे कथानकों का अभाव, छोटे-छोटे व्यावहारिक कथोप- कथन, विस्तृत रंग, संकेत, स्थान, काल और । अन्विति की प्रतिष्ठा न्यूनतम दृश्यों की व्यवस्था, तीन अंक, कथा विरलता संघटित कार्य व्यापार, काव्य तत्व की न्यूनता आदि बातों की ओर नाटकों में अधिकाधिक यथार्थता और स्वाभाविक्ता लाने कीदृष्टि से ध्यान जा रहा है। जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश , धर्मवीर भारती और लक्ष्मी नारायण लाल ने कई शिल्पगत प्रयोग किये हैं। इन लेखकों में नाट्य चेतना सर्वाधिक एवं प्रमुख हैं। उनके कथा संघटनों और पात्र कल्पना में नाट्यकीयता रहती है, यद्यपि मोहन राकेश नाटककार और रंगमंच के बीच समन्वय चाहते थे।[1]

हिन्दी रंगमंच की सृष्टि के लिए अनेक स्थानों और अनेक कुलश कलाकारों द्वारा प्रयास हुए हैं और हो रहे हैं और कुछ नाटक केवल मंच प्रदर्शन के लिए ही लिखे गये हैं, किन्तु इस दिशा में अभी अनुकूल सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। वस्तु निर्माण, कार्य - व्यापार, दृश्य आदि की दृष्टि से उनमें दोष दृष्टि गोचर होते हैं। बम्बई (पृथ्वी थियटर वैले यूनिट), दिल्ली (भारतीय कला केन्द्र वैले सेन्टर), ग्वालियर, कलकत्ता (अनामिका), प्रयाग आदि नगरों में पृत्वीराज कपूर, अल्का जी (नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा) आदि के प्रयासों द्वारा रंगमंच स्थापित हुए हैं।[2]

विभिन्न राज्य सरकारें और धनी लोग यदि अधिक से अधिक (Open air theatre) स्थापित करने में सहायता करें तो अमरीका और फ्रांस की तरह (Cafe theatre,) टेप किया हुआ संगीत आदि का प्रचार हो तो न केवल हिन्दी के नाटकों का मंचन कम खर्चीला सिद्ध हो वरन् अनेक नवयुवक प्रतिभाशाली नाटककार भी सामने आयेंगे।[3] अनूदित भाषा के नाटकों की तुलना में हिन्दी नाटकों का मंचन अधिक सफल होगा। पश्चिम के रंगमंच की अपेक्षा अपने यहां की प्राचीन रंग शालाओं और लोक नाट्य परम्परा अधिक उपयोगी होगी ।

संदर्भ संकेत :

1. "द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास" पृ॰ 76
   डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय

2. रंगमंच- चेनी शैल्डन, अनु0 ,श्री कृष्ण दास पृ0-2,3

3. रंग मंच लोक धर्मी-नाटक धर्मी, पृ0- 169
   डॉ0 लक्ष्मी नारायण भारद्वाज

"स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी रंगमंच का विकास"

"नाटक की सर्जनशीलता या कलात्मक रूप तभी अपनी समग्रातन में प्रकट होते हैं जब रचना को दर्शक समूह के समक्ष रंगमंच पर अभिनय करके दिखाया जाये।[1]" डॉ0 मान्धाता ओझा का यह कथन सत्य दिखता है।

इस यात्रा का आरम्भ पृथ्वी थियेटर और इंडियन पीपुल्स थियेटर के साथ माना जा सकता है। क्योंकि पारसी रंगमंच का जादू टूटने के बाद हिन्दी रंगमंच पर ये दो रंगमंचीय संस्थाएं ही पहले अवतरित हुई।

पृथ्वी थियेटर एक शुद्ध व्यावसायिक रंगमंच था जिसने रंगकला उत्तम अभिनय और सुधरे प्रस्तुती करण से एक नई यात्रा आरम्भ की। पठान, दीवार, आहुति, कलाकार आदि नाटकों ने दशक को रंग - दशक बनाया। दूसरी ओर 'इंडियन पीपुल्ज थियेटर' (जो 'इप्टा' के नाम से अधिक जाना जाता है) साम्यवादी दल से प्रेरित रंगमंच था, किन्तु आम जनता के अधिक निकट होने के और लोकरंग को उपस्थित कर सकने के कारण इसने हिन्दी रंगमंच की बहुत सेवा की। शोषण के विरूद्ध एकजुट हो जाने की अपील की एवं समाज को बदल डालने की प्रक्रिया को इस मंच ने सफलता पूर्वक सम्प्रेषित किया।

भारतीय रंगमंच की विश्व को यह पहचान कई स्तरों पर देने की तीव्र आवश्यकता से अखिल भारतीय स्तर पर केन्द्रीय रंग - संस्थाओं के निर्माण की आवश्यकता महसूस की गयी । फलस्वरूप संगीत नाटक अकादमी, सांग एण्ड ड्रामा डिवीजन और नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा का जन्म हुआ।

संगीत नाटक अकादमी सेमिनारों, उत्सवों, समारोहों आदि के आयोजन से न केवल प्रादेशिक रंगकर्मी को समीप लाती है अपितु दुनियां के अन्य विकसित रंगमंचों से सम्पर्क भी स्थापित करती है।

सांग एण्ड ड्रामा डिवीजन मुख्यतः सरकारी प्रचार संस्था है जिसकी अपनी वेतनभोगी -

टीम है। यह टीम गीत, संगीत और नाटक के माध्यम से देश के कोने - कोने में जमा —
होती रहती है साहित्यिक स्तर अधिक न होने पर भी प्रसार कार्य के कारण इसका महत्त्व है। सीमा पर स्थित सैनिकों के मनोरंजन का प्रश्न हो या युद्ध के दिनों में उत्साह जागृत करना हो, यह संस्था बराबर सक्रिय रहती है।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का अभ्युदय इन सबसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। रंगमंच वास्तव में क्या है, इसके कितने पक्ष हैं, आयाम हैं इन सबका स्तरीय विवेचन करने में इस विद्यालय का जो योगदान है उस पर अलग से शोध - प्रबन्ध रचा जा सकता है। भारतीय रंगमंच की तलाश और विशेषकर हिन्दी रंगमंच को एक अपूर्व ऊँचाई पर पहुंचाने का कार्य इस विद्यालय ने किया है। अभारतीय नाटकों में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, चीनी, जापानी आदि विविध भाषाओं के अनूदित नाटकों को उन्हीं की रंगमंच शैलियों में प्रस्तुत् करने के साथ - साथ हिन्दीतर, संस्कृत, कन्नड, मराठी, गुजराती, बंगाली, तेलगू आदि के नाटकीय अनुवादों को अनेक रंग शैलियों में प्रस्तुत् करने का सफल श्रेय इस विद्यालय को है। अभिनय और निर्देश की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य इस विद्यालय ने किया है। रंग-जगत में इस विद्यालय के पहले निर्देशक अल्का जी और व0 व0 कारंत विशिष्ट स्थान रखते हैं, अन्य निर्देशकों और अभिनेताओं में ओम् शिवपुरी, सुधा शिवपुरी, रामगोपाल बजाज, मोहन महर्षि, एम0 के0 रैना, बंशी कौल, बलराज पंडित, मनोहर सिंह, सुरेखा सीकरी, रतन थियेम, उत्तरा बाबकर, नसीरूद्दीन शाह आदि विद्यालय की उल्लेखनीय देन हैं।

हिन्दी - रंगमंच, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु अनेक नगर और. उपनगर आज रंग नगर कहलाते हैं जैसे बम्बई, कलकत्ता, इलाहाबाद, पटना, लखनऊ, कानपुर, चण्डीगढ़, जयपुर, शिमला, आगरा, गोरखपुर, सागर, जबलपुर आदि स्थानों में पूर्ण रूपेण कार्य कर रहा है।

बम्बई में थियेटर यूनिट के अन्तर्गत सत्यदेव दुबे, अमरीशपुरी, अमोल पालेकर, सुलमा देश पाण्डेय आदि ने उल्लेखनीय रंगकर्म किया। उन्होंने इसे चलचित्र जगत तक

पहुंचाया। बम्बई ही की संस्था 'मजमा' जिसमें ओमपुरी और नसरूद्दीन शाह प्रमुख हैं।

कलकत्ता की 'अनामिका' संस्था के अन्तर्गत श्यामानन्द जालान, बद्री प्रसाद तिवारी, शिव-कुमार जोशी और विष्णुकांत शास्त्री इस संस्था के आधार स्तम्भों में हैं। प्रतिभा अग्रवाल ने प्रादेशिक अन्य भाषाओं के हिन्दी अनुवाद रंगजगत को दिये हैं।

इलाहाबाद में डा0 लक्ष्मी नारायण लाल के द्वारा स्थापित 'नाट्य केन्द्र स्कूल ड्रेमेटिक आर्ट्स' ने नए रंगमंच को डॉ0 लाल के अतिरिक्त, सत्यव्रत सिन्हा, जैसे रंगकर्मी दिये । डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने दिल्ली जाकर 'संवाद' की स्थापना की थी जिसमें दिनेश ठाकुर, दया प्रकाश सिन्हा, वीरेन्द्र नारायण और गोपाल माथुर जैसे अभिनेता, निर्देशक हुए ।

कानपुर में प्रो0 सत्यमूर्ति द्वारा पहले 'एम्बेसेडर' फिर 'दर्पण' रंग-संस्था का निर्माण हुआ।

दिल्ली में बेगम जैदी और हबीब तनवीर का 'नया थियेटर' लोकमंच का रक्षक है। इस थियेटर ने लोक कलाकारों को पहली बार महानगरों की फैशनेबल नाटक पसन्द सोसायटी के समक्ष प्रस्तुत किया है।

इसके अतिरिक्त सातवें दशक के बाद रंगमंच के विकास में अहमदाबाद की दर्पण, इलाहाबाद की इलाहाबाद आर्टिष्ट एसोसियेशन, प्रयाग रंगमंच, रंगशिल्पी, कलकत्ता की - संगीत कला मन्दिर, चतुर्मुखा, थियेटर वर्कशाप, थियेटर ग्रुप और शोमनिक, कानपुर की 'नाट्य भारती' रंगवाणी, गोरखपुर की रूपान्तर, ग्वालियर की आर्टिस्ट कम्बाइन और कला मन्दिर, चण्डीगढ़ की पंजाब कला अकादमी, जयपुर की अभिसारिका कल्चरल सोसाइटी ऑफ राजस्थान, राजस्थान तरूण कला परिषद और संकेत, दिल्ली की कला साधना मन्दिर, चतुरंग, यांत्रिक और रंगमंच बिहार आर्ट थियेटर, मगध आर्टिस्ट्स और लोकमंच पूना की प्रोग्रेसिव ड्रेमेटिक एसोसियेशन महाराष्ट्रीय कलोपासक । बड़ौदा की त्रिवेणी, नूतन संस्कार

केन्द्र बम्बई की नाट्य भारती, क्रिएटिव थियेटर, अविष्कार बम्बई नाट्य संघ, रंगायन और रंगभूमि। बैंगलूर की आरती, कला - कुंज, कला - घोषिणी, प्रतिभा नाटक रंग । भुवनेश्वर की कला केन्द्र और रूपाकार थियेटर ग्रुप। मेरठ का मुक्ताकाश, रायपुर का हस्ताक्षर, लखनऊ की थियेटर वर्कशाप, नक्षत्र, वाराणसी की नाट्य - परिषद, नागरी नाटक मंडली, शारदा कला - परिषद और श्री नाट्यम, श्री नगर की काश्मीर भगत थियेटर, सागर की प्रयोग नाट्य कला संस्थान और युवक कल्याण परिषद तथा हैदराबाद की नाट्य संघ रिपेटरी ग्रुप इत्यादि संस्थाएं महत्वपूर्ण है।

हिन्दी रंगमंच के विकास में 1970 ई0 के बाद **पत्रकारिता** का योगदान भी अत्यधिक है। जिसमें निश्चित रूप से नेमिचन्द्र जैन द्वारा सम्पादित नटरंग शिखर पर है। इसके अतिरिक्त जोधपुर से सुधा राजहंस द्वारा सम्पादित रंगयोग, उदयपुर से महेन्द्र भनावत द्वारा सम्पादित अभिनय 'नाट्य पत्र' और लखनऊ से सुरेश अवस्थी द्वारा सम्पादित छायानर प्रमुख माने गये हैं। इसके साथ ही अंग्रेजी की राजिन्दर पाल द्वारा सम्पादित एनेक्ट मासिक पत्रिका प्रमुख है।

हिन्दी के रंगमंच पर इस समय प्रादेशिक रंग - नाटककारों में विजय तेंदुलकर, पु0 ल0 देशपाण्डेय (मराठी), बादल सरकार (बंगाली), गिरीश कर्नाड आद्य रंगाचार्य (कन्नड़), मधुराय (गुजराती) हावी हैं। **विदेशी नाटककारों** में ब्रेपूट, मोल्यिर,. और बैकेट आदि रंगमंच पर खेले जा रहे हैं।[3]

हिन्दी के अपने रंग नाटक कारों में विशेष उल्लेखनीय रहें - **मोहन - राकेश,** धर्मवीर भारती, जगदीश चन्द्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल, मुद्राराक्षस, मणि मधुकर, सुरेन्द्र वर्मा, शंकर शेष, गिरिराज किशोर, बृजमोहन शाह, रमेश बक्षी आदि।

अभिनेताओं में ओम - शिवपुरी, अमरीशपुरी, अमोल पालेकर, मनोहर सिंह, राजेश विवेक, राम गोपाल, बजाज, रवि वास्वानी, पंकज कपूर, रंजीत कपूर, निदेश ठाकुर, नसरूद्दीन शाह आदि और अभिनेत्रियों में सुधा शिवपुरी, सुलभा देश पाण्डे, सुरेखा सीकरी, उत्तरा

बावकर, अनुया पालेकर आदि के नाम सुपरिचित है। अन्य रंग कर्मियों में जे0 पी0 दास, राविनदास, मोहन उप्रेती, नरेन्द्र शर्मा, सुशील बनर्जी आदि के नाम उल्लेखनीय है। प्रयोग की दृष्टि से विजय सोनी, देवेन्द्र राज अंकुर आदि के नाम प्रमुख है।[4]

राष्ट्रीय रंगमंच संज्ञा जिसे भारतीय रंगमंच भी कहा जाता है, नाटक कर्मियों का ध्यान आकृष्ट कर रही है। देशव्यापी रंगमंचीय प्रवृत्तियां जो हिन्दी में है वैसे ही मराठी रंगमंच पर और लगभग वैसी ही कन्नड़ या बंगला रंगमंच पर । ऐसी समान शैलियां और प्रवृत्तियों वाला रंगमंच है। राष्ट्रीय रंगमंच । एक ही भाषा के नाटक अनेक प्रादेशिक भाषाओं में अनूदित हो रहे हैं। बंगला, मराठी, कन्नड़, गुजराती, तेलगू आदि के नाटकों के अनुवाद हिन्दी में होकर पहले हिन्दी पर अवतरित होने हैं, ठीक इसी प्रकार हिन्दी के नाटक अन्य भाषाओं में हो रहे हैं । अतः इसे राष्ट्रीय रंगमंच कहना समीचीन प्रतीत होता है।

संदर्भ संकेत :

1. डॉ0 मान्धाता ओझा । हिन्दी नाट्य समालोचन, पृ0 17
2. इ0 अल्काजी, पु0 ल0 देशपाण्डे, डॉ0 सुरेश अवस्थी (सं0) । आज के रंग नाटक, पृ0 26-27 ।
3. रंगमंच सर्तदानंद पृ0 133
4. रंग मंच उत्तर जय शंकर प्रसाद के नाटक सीता रानी पाली लाल पृ0-25।

हिन्दी रंगमंच के नये आयाम

हिन्दी रंगमंच के विकास के कारण क्षेत्रीय सीमाएं समाप्त प्राय हो गई साथ रंग-आन्दोलन की तीव्र गति मिली। अपने व्यक्तित्व की पहचान, पारम्परिक नाट्य उदय का अन्वेषण और एक नई अधिक मौलिक और प्रामाणिक नाट्य शैली की खोज **सातवें और आठवें दशक** के भारतीय रंगमंच की मुख्य प्रवृत्ति और उसकी सबसे बड़ी घटना है। अन्वेषण तथा प्रामाणिकता की इसी भावना ने सामाजिक भारतीय रंगमंच की नयी चेतना का विकास किया है।

वास्तव में आज भारतीय रंगमंच का कार्य विविध भाषाओं में होने पर भी उसमें एक समग्रता है। व्यापक अर्थो में उसे भारतीय रंगमंच का नाम देते हैं। क्षेत्रीय भाषागत परम्परायें और विशिष्टिताएं रखते हुए भी आज का भारतीय रंगमंच भाषागत सीमाओं में नहीं बंधा है। उसके राष्ट्रीय आयाम हैं। उसकी प्रवृत्तियाँ और मूल्य भी राष्ट्रीय हैं।

गिरीश कर्नाड के कन्नड़ नाटक 'तुगलक' और 'हयवदन' बादल सरकार के बंगला नाटक 'एवम् इन्द्रजीत' और 'वाकी इतिहास विजय तेन्दुलकर के मराठी नाटक 'चुंतला कोर्ट चालू आहे' और 'सखाराम बाइन्डर' तथा **मोहन राकेश** के हिन्दी नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और 'आधे - अधूरे' इसी राष्ट्रीय नाटक चक्र के नाटक है।[1]

हमारे निर्देशक पारम्परिक रंगमंच की कितनी ही प्रदर्शन युक्तियों और रूढ़ियों का उपयोग कर रहे हैं। उदाहरण स्वरूप भवाई (गुजरात), तमाशा (महाराष्ट्र), नौटंकी, भॉण तथा पारसी (उत्तर तथा म0 प्र0) यक्षगान (कर्नाटक), जात्रा (बंगाल) इतना ही नहीं जापान की काबूकी शैली, ब्रेश्टीयन शैली आदि ने भी अभूतपूर्व योगदान दिया है।

गुजरात में भवई नाट्य शैली पर आधारित नाटक है, शांता गांधी लिखित - 'जसमा ओडन' राष्टीय नाट्य विद्यालय के लिए यह नाटक शांता गांधी के निर्देशन में सफलतापूर्वक खेला गया। शांता गांधी की प्रस्तुति पारम्परिक कथा, वेशभूषा एवं संगीत आदि को समेटती हुई आधुनिक सन्दर्भो को उद्घाटित करती है, जिससे जीवन्त जीवनानुभव का दृश्यात्मक रूप सामने आता है।

जापानी रंगमंच और ब्रेश्टीयन रंग - रूढ़ियों (काबुकी शैली) के सुचिंतित उपयोग और विशुद्ध यथार्थवादी अभिनय शैली के साथ 'प्रिजेन्टेशनल स्टाइल' के समन्वय से नवीनता का आकर्षण उत्पन्न करने के लिए मोहन राकेश लिखित 'आधे अधूरे' नाटक राष्टीय नाट्य विद्यालय द्वारा अमाल अल्माना के निर्देशन में 14.10.77 ई0 को खेला गया। प्रस्तुत नाटक तीन ओर से दर्शकों से घिरे मंच पद खेला गया। बीच वाले धरातल की लम्बी पटटी स्टूडियों थियेटर के केन्द्रीय भाग तक चली गयी है। वहीं किनारे पर खाने की मेज और कुर्सियां रखी हैं। ऊपरी धरातल पर सोफा है ओर नीचेर्ज के धरातल पर आराम कुर्सी। प्लास्टर उखाड़ी, पुरानी भुरभुरी दीवारें, तीन खम्भों पर टिका मकान (कमरा), एक खिड़की, तीन दरवाजे - यथार्थवादी दृश्य बन्ध । मंच पर धीरे - धीरे प्रकाश होता है। काला चूड़ीदार पैयजामा, काला कुर्ता और काले मोजे पहने पंक्तिबद्ध 'कोरस' और नैरेटर का प्रवेश । नारी - स्वर में विचित्र ध्वनि के साथ जिसमें पीड़ा, करूणा और त्रासदी का आभास मिलता है। दो काठ के टुकड़ों की भोथरी मगर धनी भरपूर आवाज होती है। काला सूट वाला आदमी यहां (शायद सुविधा हेतु) काली पैंट और लाल शाल के साथ 'प्रस्तावना' आरम्भ करता है। प्रारम्भ से अन्त तक पूरा नाटक अनिश्चित बना रहता है।

राष्टीय नाट्य विद्यालय के रंग मंडल द्वारा शेक्सपियर का 'बरनम बन' नाटक ब0 व0 कारन्त के निर्देशन में खेला गया था। इस नाटक को यक्षगान शैली में प्रस्तुत किया गया।

यक्षगान शैली ओर 'बरनम वन' नाटक को लेकर रोविनदास लिखाते हैं- 'यक्षगान के जिस दूसरे तत्व - . . का मैंने इस्तेमाल किया उसका सम्बंध भी संरचना के विश्लेषण से ही है। मैंने वेशभूषा के शैलीकरण के उददेश्य को समझने की कोशिश की। यक्षगान में चरित्र विशेष व्यक्ति नहीं, बल्कि एक तरह का प्रतिनिधि व्यक्ति (टाईप) होता है।"
उदाहरण के लिए जब राजा मंच पर प्रवेश करता है तो उसकी शैलीगत वेशभूषा पूरे दृश्य विधान का आभास उत्पन्न करती है। प्रस्तुत नाटक में शैली करण का उद्देश्य चरित्र के अन्तरंग की और जिस अभिनय - स्थल में वह सक्रिय है उसके रूप को प्रकट करता है।2

गिरीश कर्नाड लिखित तथा ब0 व0 कारन्त द्वारा अनुवादित 'ह्य - वदन' नाटक यक्षगान शैली में खेला गया है।

धर्मवीर भारती लिखित गीति नाटक 'अन्धायुग' राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के रंग - मंडल द्वारा एम0 के0 रैना के निर्देशन में दिल्ली के पुराने किले के खण्डहरों की पृष्ठभूमि में कथकली, यक्षगान के अलावा उत्तर भारत की कुछ लौकिक शैलियों के मिले जुले रूप में प्रस्तुत नाटक खेला गया।

बर्टोल्ड ब्रेश्ट लिखित 'मदर' नाटक भी एम0 के0 रैना के निर्देशन में यक्षगान शैली में खेला गया।

महाराष्ट्र की पारम्परिक तमाशा शैली में भी कई नाटक प्रस्तुत हुए हैं- विजय तेन्दुलकर लिखित 'घासीराम कोतवाल' बसन्त सबनीस लिखित 'सैंया भये कोतवाल' तमाशा अन्य लोक नाटक शैलियों से भिन्न नहीं है।

मणिमधुकर लिखित 'दुलारीबाई' व्यंग्य नाटक पारसी रंगमंच और कुचामणी ख्याल का मिला - जुला शिल्प है। जिसके द्वारा आम आदमी की दुनियां का नक्शा बनाता है। मणिमधुकर का एक अन्य नाटक है- 'रस - गंधर्व' में अ, ब, स, द, ह में पात्रों के नाम हैं। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल लिखित -व्यक्तिगत नाटक में भी - मैं और वह तथा **तीसरा पात्र है एक निश्चित नाम वाली आदर्श औरत ।**

मुक्ताकाशी नाटकों के अन्तर्गत आते हैं - नुक्कड़ - नाटक, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', विभु कुमार का 'तालों में बन्द प्रजातन्त्र', बादल सरकार का 'जुलूस' (इनका एक अन्य) बहु चर्चित नुक्कड़ नाटक मिछिल' के श्यामा अग्रवाल द्वारा किये गये हिन्दी रूपान्तर जुलूस को 'प्रयोग' की ओरसे एम0 के0 रैना के निर्देशन में दिल्ली के पार्को, नुक्कड़ों - चौराहों, मैदानों में बिना टिकट बिक्री के सफलता पूर्वक खेला गया।

हिन्दी में एक विशेष मोड़ और आया है - कहानी, उपन्यासों का नाट्य रूपांतर - सुहाग के नुपूर, 'गोदान', चित्रलेखा', मित्रों मरजानी', मुख्यमंत्री, 'वंशवृक्ष', रंगनाथ की वापसी, 'महाभोज', निर्मल वर्मा ने अपनी तीन कहानियों को नाटक का जामा 'तीन

एकान्त' के नाम से पहनाया । इस प्रकार यह एक सुदृढ़ स्थिति है।

हिन्दी रंगमंच पर नये प्रयोग इसमें भी दीख पड़ते हैं - मंच-सज्जा, प्रकाश-योजना, संगीत और मुखौटे ।

संदर्भ संकेत:

1. इब्राहीम अल्काजी, पु0 ल0 देशपाण्डे, सुरेश अवस्थी (सं0) आज के रंग नाटक, पृ0-27
2. डॉ0 जयदेव तनेजा, समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ0 138

निर्देशक :

निर्देशक यों तो पश्चिमी रंगमंच में भी एक नया ही तत्व है जिसे प्रकट हुए शायद अभी सौ वर्ष भी नहीं बीतें हैं, फिर भी आधुनिक पश्चिमी रंगमंच का सम्पूर्ण विकास निर्देशक के साथ जुड़ा हुआ है। विशेषकर सुरूचिपूर्ण अथवा मात्र मनोरंजन के कारण से आगे बढ़कर कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में रंगमंच के परिणति में निर्देशक का सबसे बड़ा योग है। निर्देशक ही वह केन्द्रीय सूत्र है जो नाट्य प्रदर्शन के विभिन्न तत्वों को पिरोता है और उनकी समग्रता को एक समन्वित बल्कि सर्वथा स्वतंत्र कला रूप का दर्जा देता है। सार्थक प्रदर्शन में नाटक जिस रूप में दर्शक के पास पहुंचता है, वह बहुत कुछ निर्देशक के कलाबोध, सौन्दर्य-बोध और जीवन-बोध को ही सूचित करता है। निर्देशक ही यह निर्णय करता है कि नाटक के विभिन्न अर्थ स्वरों में से कौन सा एक या कुछेक उसके प्रदर्शन के लिए और उस प्रदर्शन के माध्यम से उसकी अपनी सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए, प्रासंगिक और सार्थक एवं केन्द्रीय है। इसके बाद वही अभिनेताओं तक अपने उस बोध को सम्प्रेषित करके उन्हें इस कलात्मक साहस यात्रा में साथ चलने के लिए आंतरिक रूप में तैयार करता है और फिर उनकी गतियों और रंगचर्या के संयोजन द्वारा, उनके वास्तविक अभिनय के संयोजन द्वारा विभिन्न अभिनेताओं के पारस्परिक सम्बंध के विशेष प्रकार के संतुलन, नियम और प्रक्षेपण द्वारा उनके माध्यम से नाटक का अपना अभिप्रेत अर्थ- निर्णय अभिव्यञ्जित करता है। निर्देशक ही रंगशिल्प के अन्य तत्वों को भी अभिनेताओं की मुख सज्जा, वेश - भूषा, दृश्यबंध, प्रकाश योजना और ध्वनि तथा संगीत योजना को अपनी पूर्व कल्पित और नाटक के स्वीकृत अर्थ निर्णय से जुड़ी हुई समन्वित में बाँधता है

और इस प्रकार का एक समग्र समन्वित प्रभाव दर्शक तक सम्प्रेषित करता है। इस रूप में वह बहुत से अपनी- अपनी विधाओं में सर्जनशील कर्मियों के नाटककार, अभिनेता, दृश्यांकनकार, वेश-भूषाकार प्रकाश-संयोजन और संगीत तथा ध्वनि-संयोजन के कृतित्व का केवल संगठन कर्ता ही नहीं होता, बल्कि उनकी सर्जनशीलता को सम्पूर्ण क्षमता में सक्रिय करके, उनके विशेष प्रकार के सर्जनशील संयोजन द्वारा, एक सर्वथा नयी सृष्टि का रचयिता होता है। उनके अस्तित्व के बिना नाटक का प्रदर्शन सर्जनात्मक कार्य और सर्जनात्मक अनुभूति का वाहक पूरी तरह नहीं बन सकता। निस्संदेह उसके बिना भी नाटककार के अपने कलात्मक चमत्कार का, उक्ति वैचित्र्य का भाव-संघात का आस्वाद मिल सकता है, पर एक समन्वित कृति के रूप में प्रदर्शन द्वारा नाट्यानुभूति का आस्वाद मिलना असंभव नहीं तो प्रायः कठिन अवश्य है।

वास्तव में निर्देशक का जो रूप सामने है उसमें बड़े-बड़े शहरों की कुछ मंडलियों को छोड़कर प्रदर्शन के कार्य में पूरी तरह प्रभावी और सक्षम नहीं बन सका है। इसका महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि निर्देशक के कार्य को पूरी तरह प्रभावी होने के लिए, जिस स्तर के कलात्मक प्रशिक्षण, प्रतिभा और बोध की अपेक्षा है वह प्रायः उपलब्ध नहीं होता। हिन्दी जगत में तो शायद यह भी अभी सर्व स्वीकृत अथवा बहु स्वीकृत बात नहीं है कि रंगमंचीय कार्य के प्रायः प्रत्येक पक्ष के लिए अनुभव के साथ ही उपयुक्त और व्यापक प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

निर्देशक के योग ने हिन्दी रंगमंच को नया स्तर दिया है, इसका प्रमाण दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई के कुछ एक हिन्दी निर्देशकों के कार्य में देखा जा सकता है। इब्राहिम अल्काजी ने राष्टीय नाट्य विद्यालय के छात्रों को लेकर 'अंधायुग' (धर्मवीर भारती) ' 'आषाढ़ का एक दिन' (मोहन राकेश) जैसे हिन्दी नाटक तथा कई एक पश्चिमी नाटकों के अनुवाद दिल्ली के रंगमंच से प्रस्तुत किये हैं, विशेषकर रंगसज्जा के सभी पक्षों में सुरुचि, कलात्मकता और संयम के साथ विविधता के लिए सचेष्ट प्रयास का महत्व स्थापित हुआ है, जिसका प्रभाव दिल्ली के सभी नाट्य प्रदर्शनों पर पड़ा है। पिछले पांच-छः वर्षों में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से उत्तीर्ण छात्रों ने भी अपने ढंग से प्रदर्शन के संयोजन में नयी सजगता कलात्मकता को बढ़ावा दिया है। कुछ नाट्य विद्यालय की गतिविधियों के परिणाम और चुनौती स्वरूप एवं कुछ हिन्दी रंगमंच के विकास की निजी गति के कारण कई एक अन्य निर्देशक भी सामने आये हैं जो किसी भी तरह नाटक को मंच

पर उतार देने के बजाय मंचन की पूरी प्रक्रिया को कई स्तरों पर संगठित और संयोजित करने की ओर ध्यान देते हैं। इन सारी गति के कारण प्रदर्शन के लिए, बल्कि सम्पूर्ण रंगकार्य को कलात्मक अभिव्यक्ति का रूप दे सकने के लिए, निर्देशक की अनिवार्य आवश्यकता को समझा जाने लगा है, प्रदर्शन के पूरे कार्य में उसके केन्द्रीय स्थान की और एक नये कलात्मक आयाम के स्रष्टा के रूप में, उसकी स्वीकृत होने लगी है केवल शब्दों में सिद्धान्ततः ही नहीं, वास्तविक व्यवहार और कार्य में भी । विभिन्न शिक्षा संस्थाएं अब अपने रंगमंचीय कार्यो के लिए निर्देशक की तलाश करती हैं और इसके लिए उसे कुछ परिश्रमिक भी देती हैं। इसी प्रकार नाटक मंडलियां भी विविधता के लिए अपने ही सदस्यों के अतिरिक्त बाहर से एक ऐसे निर्देशकों को आमन्त्रित करती हैं जिनकी कुछ प्रतिष्ठा बन गयी है। कलकत्ते में श्यामानंद जालान और बम्बई में सत्यदेव दुबे द्वारा निर्देशित प्रदर्शनों को भी ऐसी ही मान्यता प्राप्त हुई है और सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र में निर्देशक की आवश्यकता और उसके महत्व को स्वीकृत मिलने लगी है। निस्सन्देह यह हिन्दी रंगमंच की प्रगति का अगला चरण है जिसका अनिवार्य प्रभाव नाटक पर पड़ने लगा है।

संदर्भ - संकेत :

रंगदर्शन - नेमिचन्द्र जैन

पृ0 सं0 45, 46, 47

अक्षर प्रकाशन प्रा0 लि0

2136 अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली।

रंगकर्मी :

रंगकर्मियों द्वारा रंगमंच, दूरदर्शन और सिनेमा के पारस्परिक सम्बंधों और इनके अन्तरविरोधों को गहराई से समझा जाना चाहिए, ताकि रंगमंच और दर्शक की दूरी को कम किया जा सके। आज रंगकर्मियों की चिन्ता आम दर्शक से जुड़नी चाहिए। भोपाल के नाट्यकर्मी श्री इकबाल मजीद के अनुसार रंगकर्मियों की पहली चिन्ता यह हो कि रंगमंच की भाषा कैसी है। जिस साहित्य की भाषा समृद्ध है, वह साहित्य और रंगमंच कभी

नहीं मरता, न उसे कोई नष्ट कर सकता है।'[1] जिन लोगों के बीच **कला और संस्कृति** पलती है उनकी चिन्ता भी रंगकर्मियों में होनी चाहिए, यदि ये लोग जिन्दा है तो हमारी 'कला और संस्कृति' भी जिन्दा है।

नाट्य निर्देशिका **डॉ0 गिरीश रस्तोगी** के मतानुसार - छोटे-बड़े अभिनेता तथा छोटे और ऊँचे निर्देशकों की दूरी और असमानता खत्म होनी चाहिए। छोटे कस्बों और नगरों में जो लोग रंगमंच हेतु कुछ कर रहे हैं उन्हें प्रोत्साहन मिलता चाहिए।[2] **रंगकर्मियों को यथार्थ में चिन्ता अपने रंगकर्म को लेकर होनी चाहिए।**

ओम शिवपुरी - **लेखक व रंगकर्मी** दोनों को एक दूसरे का पर्याय मानते हैं।

रंगकर्मियों के लिए यह बात महत्वपूर्ण है कि **अभिनय-शैली** को या **अभिनय क्षमता** को किस तरह विकसित किया जाये। साथ ही प्राचीन परम्पराओं और नयी मान्यताओं को लेकर रंगमंच की संरचना करना उचित है। क्योंकि लेखक, निर्देशक तथा अभिनेता तीनों को मिलाकर नाटक, रंगमंच की परिकल्पना बनती है। नाट्यकर्मी 'उर्मिल कुमार थपलियाल' ने नाटक की संवेदनशीलता पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए मेघदूत नाट्य समारोह 86, में कहा कि रंगमंच में पहला स्थान 'अभिनेता' को ही मिलना चाहिए क्योंकि वह लेखक के कथन को, दर्शक तक बड़ी मेहनत से पहुंचाता है। अभिनेता को निर्देशन, के साथ ही नहीं बल्कि दर्शकों के प्रति भी न्याय करना पड़ता है। कुछ रंगकर्मी आज भी आस्था के साथ कार्य कर रहे हैं यथा - एम0 के0 रैना, बंशी कौल, अजित पुष्कल, चारूदत्त, अशोक गोस्वामी, सिद्धेश्वर अवस्थी इत्यादि।

आज के वैज्ञानिक युग में रंगकर्म भी अपनी प्राचीन मान्यताओं और सीमाओं को तोड़ता हुआ नया स्वरूप धारण किया है। आज के तात्कालिक रंगकर्म स्वतन्त्रता पूर्व के रंगकर्म के मुकाबले अधिक तकनीकी और संवेदनशील होने के बावजूद अपनी सृजनात्मक जमीन से जुड़ने की कोशिश में प्राचीन और नवीन के बीच मार्ग बनाता हुआ सम्पूर्ण कलात्मकता से जीवित है और इसकी संजीवनी है - रंगकर्मी, जो अपने-अपने क्षेत्रों में सीमित परिमित और अल्प साधनों के बीच भी इस विधा का पुनर्सृजन करते हुए इसे अपनी सृजनात्मक जमीन से जोड़ने आधुनिक सन्दर्भों में स्थापित करने, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण देने के साथ-साथ इसे सामाजिक आवश्यक एकता का रूप देने में प्रयासरत हैं। ये रंगकर्मी अपनी सूझबूझ और कल्पना शीलता

के सहारे या आस-पास के प्राशिक्षित ख्याति प्राप्त रंगकर्मियों के कार्यों के सहारे ही स्वयं को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया में रहते हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगकर्मियों को प्रशिक्षित करने में सराहनीय योगदान कर रहा है।

रंगकर्मियों के सामने सबसे बड़ी समस्या वित्त (धन) की होती है। इसलिए बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों तथा व्यापारिक प्रतिष्ठानों को चाहिए कि जिस तरह वे खेल और खिलाड़ियों को प्रायोजित करते हैं वैसे रंगकर्मियों को भी प्रायोजित करें, क्योंकि रिहर्सल करने के स्थान नहीं, है पात्रों के पास दिन प्रतिदिन के आवा-गमन के खर्चे, जलपान के खर्चे तक रंगकर्मियों के पास नहीं रहते।

हिन्दी भाषी समाज में रंगकर्मियों की कोई उत्साह जनक स्थिति नहीं है आम आदमी रंगकर्मियों को एक 'नचनिया' की हैसियत से सम्बोधित करता है। यह स्थिति अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रों में नहीं लागू होती।

जो रंगकर्मी एक तरफ अरिस्टोफेनीज और दूसरी तरफ किंगलियर को सहन संवेद्य बना सकते हैं, वे निश्चय ही भारतीय समाज की ट्रैजी-कामेड़ी को भी सीधा साक्षात्कार कर सकते हैं, बशर्ते उनका जन-मानस से यानी अपने आप से, सही भरा पूरा रिश्ता बने। यह हमारा सार्वजनिक दुर्भाग्य है कि हमारे सबसे प्रबुद्ध और सूझ-बूझ सम्पन्न लोग 'छायावादी' होकर सन्तुष्ट हैं। यह छाया जीविता, यह परोपजीवी आत्म विश्वास ही आत्म-साक्षात्कार यानी नाटकीय आत्मा साक्षात्कार की राह का सबसे बड़ा रोड़ा है।

अभी तक हिन्दी रंग कर्मियों के सामने जीविका का साधन नहीं बन पा रहा था वरन् अब 'दूरदर्शन' के आने से वहाँ के नाटकों, धारावाहिकों में रंगकर्मियों को काम मिला है। इससे दूरदर्शन में गुणात्मकता आयी है। दूसरा प्रभाव नकारात्मक रहा है इसने रंगमंच के दर्शकों का बड़े पैमाने पर अधिग्रहण कर लिया है। आज के समय में यह भी सोचना चाहिए कि रंगकर्मी की जहां अपनी सीमाएं हैं, वहां कुछ जरूरते भी हैं। आज हम उसे केवल निष्ठा समर्पण के नाम पर नहीं रोक सकते इसे 'आर्थिक सुरक्षा' चाहिए।

हिन्दी रंगमंच इसलिए जीवित है कि यहां **प्रतिबद्ध रंगकर्मी** जीवित हैं वे अभी भी नई ऊर्जा और उत्साह के साथ रंगमंच को एक आन्दोलन के रूप में आगे लेकर बढ़ रहे हैं।

मंचसज्जा :/

मंचसज्जा का प्रश्न उपस्थित होने पर आठवें दशक में बड़े-बड़े कट आउट खड़े जाने लगे। समृद्ध नाट्य संस्था तो मंच सज्जा पर ढाई-तीन हजार रूपये खर्च करती है। बाँस, बल्ली, भूसा, मिट्टी, बरदान और लिटर के लिए इस्तेमाल होने वाले ऊबड़ खाबड़ पटनों तथा शादी - व्याह वाले तख्तों आदि के द्वारा उत्कृष्ट मंचसज्जा का आयोजन डिजायनर या निर्देशक करने लगा है।

एम0 के0 रैना ने डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के व्यक्तिगत नाटक मंच-सज्जा के बारे में अपना मत व्यक्त किया है - "विषय वस्तु की इस पृष्ठ भूमि को देखते हुए मैंने दृश्यबन्ध का इस्तेमाल नहीं किया लेकिन आठ हाथों और पैरों वाला 'एक कट-आउट" बनाया जिसमें छीना झपटी की, तरह - तरह की मुद्राएं अंकित थीं। इस तरह जो संरचना बनी, वह ऑक्टोपस और अष्टभुजा के बीच की थी। इस कट-आउट पर सारी मंच सामग्री टांगी गयी। 'मैं', के लिए बनाये गये उपकरण 'वह' के सामान्य उपकरणों की तुलना में आकार में बड़े थे। इससे एक तीखा विरोधाभास और जोरदार नाटकीय असर पैदा हुआ और नाटक की मूल विषय- वस्तु इस दृश्य-रचना के कारण उभर पायी।"[1]

पर्दा के बार-बार गिराने और उठाने से रंगमंच सज्जा स्वभाविक रूप से बाधित हो जाती है। नाटक की प्रस्तुती कारण पर प्रेक्षकों को इस बात की प्रतीत नहीं होनी चाहिए कि वह किसी जादूगर जैसे किसी स्थल पर बैठे हैं। अतः कथा की सहज स्वभाविक गति के साथ ही दृश्य परिवर्तन का क्रम भी उसी के अनुरूप होना चाहिए।

प्रकाश-व्यवस्था(योजना)

निम्न बातों के माध्यम से नाटक बेहतर बनाया जाता है -

1. नाटक की प्रकाश-योजना का उद्देश्य कई प्रकार से प्रस्तुति को अधिक प्रभावी बनाना ही है। जैसे मंच की वस्तुओं में जो कुछ घटित होता है उसे ठीक से देखा जा सके, उपयुक्त वातावरण निर्मित हो सके; नाटकीय क्षणों को उभारा जा सके; नाटक के मूल भाव को सम्प्रेषित किया जा सके और इस प्रकार पूरे प्रदर्शन को सार्थक बनाया जा सके। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि प्रकाश-योजना न तो चमत्कार का रूप ले और न रोशनी के जादू का।

2. प्रकाश-योजना के दो तथ्य हैं- सामान्य और विशेष प्रभाव। **सामान्य प्रकाश** मुख्यतः वस्तुओं और अभिनेताओं को दिखाने के लिए होता है। विशेष प्रभाव या तो वातावरण अथवा भावदशा (मूड) का निर्माण करते हैं, संरचना तैयार करते हैं या पदार्थों के तीन आयामी स्वरूप को उभारते हैं। सामान्य प्रकाश सामने डाला जाता है। आम तौर पर दो दिशाओं से लगभग साठ (60) अंश के तिरछे कोणों से। **विशेष प्रकार का प्रकाश पार्श्व**- चित्र (प्रोफाइल) आकृति की रूपरेखा (कंटूर) आकारों की तीक्ष्णता (शापनेस), उभार (रिलीफ) इत्यादि पैदा करने के लिए, पीछे से, बगल से, नीचे से, मंच की तरह से, एकदम सिर के ऊपर से और एक- दूसरे को काटते हुए भी डाला जाता है।

3. विशेष प्रभावों को कुछ सेकेण्ड से अधिक नहीं रखना चाहिए और एक ही प्रभाव को एक से अधिक दृश्यों में बार-बार दोहराना भी नहीं चाहिए। अन्यथा इसका असर कम हो जाता है।

4. मन्द (डिमर) का प्रयोग, विशेषकर गम्भीर नाटकों में धीरे-धीरे और सहज ढंग से करना उचित है। उनको इस तरह से चलना चाहिए कि दर्शक-वर्ग बदला हुआ प्रकाश तो देखे पर बदलने की प्रक्रिया पर उनका ध्यान न जाये। राजसी व्यक्तियों अथवा महत्त्वपूर्ण चरित्रों के प्रवेश के लिए अथवा किसी गम्भीर दृश्य में हास्य मूलक चरित्र के प्रवेश के लिए जहां नाटककार ने जान-बूझकर गम्भीर वातावरण में कुछ राहत पैदा करने के लिए चरित्र को रखा है। प्रकाश के एकाएक कम होने से नाटक की गति को तीव्र किया जा सकता है। परिस्थिति की एकरसता को तोड़ा जा सकता है। या वातावरण को हल्का बनाया जाता है।

5. छाया, परछाइयों और रंगतों (टोन) की विशेषताओं का प्रयोग नाटकीय परिस्थितियों को उभारने के लिए करना चाहिए।

<u>संगीत :</u>

आठवें- नवें दशक में संगीत का प्रयोग खास स्थिति को, पात्रों की मनः स्थिति को उसके अन्तर्द्वन्द्व को उभारने तक ही सीमित हो गया है। घासीराम कोतवाल, अबूहसन, एक हरिश्चन्द्र, हयवदन, बकरी, रस-गन्धर्व, दुलारी बाई जैसे नाटक पारम्परिक लोक-नाट्य के रूप होने के कारण इसमें लोक- गीत, लोकनृत्य सम्भावना आप ही है। दूसरी ओर 'तुगलक' और 'अग्निलीक' में उनकी भूमि और आवश्यकता के अनुरूप संगीत का प्रयोग निर्देशकों ने किया है। निःसन्देह

समूहगीत, नेपथ्यगीत रंगमंच को नया जीवन दे रहे हैं। वाद्य-ध्वनियों द्वारा अनेक सूक्ष्मतम् मानसिक स्थितियों को अभिनय के साथ जोड़ा जा सकता है। दृश्य परिवर्तन के लिए संगीत का प्रयोग सफलता पूर्वक किया जा रहा है।

सन्दर्भ संकेतः

1. नटरंग, अंक 18-39 पृष्ठ 29, 31, 87
   सम्पादक - नेमिचन्द्र जैन

वेश - भूषा :

नाटक की प्रभविष्णुता में अभिवृद्धि करने हेतु नाटककार को अपनी रचनाओं में रंगमंच से सम्बद्ध आवश्यक रंग निर्देश मंचीय - व्यवस्था के साथ ही पात्रों की वेश-भूषा आदि की ओर विशेष ध्यान रखाना पड़ता है। वेश-भूषा में पात्रों की पोशाक और अलंकरणों के संकेत दिये जाते हैं। हिन्दी नाटकों में पात्रों की वेश - भूषा विषयक संकेत अभिनय संकेतों के साथ दिये जा रहे हैं। साथ ही पाद टिप्पणियों के रूप में भी यथा -

"एक पत्थर की चट्टान को काट-छांट कर सिंहासन बनाया हुआ, उस पर राजा जी विराजमान, ताड़ के पत्तों का छत्र लगा चंबर होता, नकील चौबदार आदि खड़े। सरदारगण यथा स्थान भूमि पर बैठे, दाहिनी ओर सिंहासन के पास भीलों का सरदार काछा काछे, सिर पर लाल पाग, मोर का पंख खोंसे, हाथ में धनुष वाण लिए।[1]

वस्तु परिधान, आभूषण धारण करना शृंगार आदि प्रसाधनों का प्रयोग वेश-विन्यास के आवश्यक अंग हैं, जो व्यक्ति, समाज की रूचि मनःस्क्रिया, सौन्दर्य-बोध आदि की युगगत विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं। अतः सांस्कृतिक अनुशीलन के दृष्टिकोण से इसका अत्यधिक महत्त्व है। वस्त्र परिधानों को वेश-विन्यास का अनिवार्य अंग माना गया है तथा अलंकरण आदि को उसका सहायक । अवस्थाभेद के अनुसार पुरूषों तथा स्त्रियों के वस्त्रादि का उल्लेख रंग संकेतों, पाद टिप्पणियों अथवा पारस्परिक संवादों के माध्यम से हुआ है। यथा -

पुरूषों के वस्त्र :

धोती, लम्बा, अंगरखा, उष्णीय,[2] उत्तरीय चादर, दुपेंची, पगड़ी,[3] दुपट्टा पीतम्बर,--

कमर पट्टा, बगल बंडी, लम्ब कंचुक,[4] आदि ।

स्त्रियों के वस्त्र :

कंचुकी, कौर्शय वस्त्र,[5] उत्तरीय, साड़ी,[6] धोती - चादर, चीनाशुंक,[7] टोपी,[8] पैजामा,[9] आदि।

सन्दर्भ संकेत:

1. राधा कृष्ण दास, महाराणा प्रताप सिंह पृ0 91।
2. चतुरसेन शास्त्री, धर्मराज, पृ064
3. सेठ गोविन्ददास, शशि गुप्त पृ0 31।
4. सेठ गोविन्द दास, शशि गुप्ता, पृ0 35
5. उदय शंकर भट्ट, मुक्तिपथ पृ. 10
6. सेठ गोविन्द दास , शशि गुप्त पृ0 65
7. राम कुमार वर्मा, विजय पर्व पृ0 22
8. वृंदावन लाल वर्मा, झांसी की रानी पृ0 19
9. वृंदावन लाल वर्मा, झांसी की रानी पृ0 15

आधुनिक युग में रंगमंच पर"मुखौटों"का प्रयोग या तो किसी चरित्र और स्थिति की व्याख्या के अनुसार होता है या किसी ऐसे अनुभव को अभिव्यक्त करने जो साधारणत: अन्य प्रकार से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इस तरह मंच में मुखौटों का प्रयोग बराबर होता रहा है।[1] **सातवें दशक** में गिरीश कर्नाड, के 'हयवदन' तथा हमीदुल्ला के 'दरिंदें' वृजमोहन शा के 'त्रिशंकु' नाटकों में मुखौटों का सफल प्रयोग हुआ है। दरिन्दें नाटक में शेर, लोमड़ी और भालू को मुखौटा धारी व्यक्ति द्वारा मंच पर दर्शाया है। इसी प्रकार हयवदन नें घोड़े को ।

सम्प्रति मुखौटों का प्रयोग बौद्धिक यथार्थ वाद और उसके परित्याग से जुड़ा है, इस समय मुखौटों में अमूर्तीकरण का तत्त्व बड़ी मात्रा में है। वह केवल उसके प्रयोग से पहचाना

जाता है। जो किसी रूढ़ि का पालन नहीं करता है। आधुनिक मुखौटों की सामग्री, आकृति, आकार और प्रयोग में बड़ी विविधता है।

मुखौटे के सन्दर्भ में एच0 वी0 शर्मा कहते हैं - आधुनिक मुखौटा की अपनी अमूर्त आकृतियों के साथ, अभिनेता के चेहरे पर दूसरे मुखौटों की तरह ही लगाया जा सकता है। या किसी व्याख्या मूलक पृष्ठभूमि को सूचित करने के लिए मंच पर लटकाया जा सकता है। वह हाथ में पकड़ा या छोटी - बड़ी छड़ियों पर उठाये रखा जा सकता है। इस प्रकार मुखौटे का प्रयोग विविध प्रकार से सृजनात्मक और सार्थक रूपों में हो सकता है।

नाटक में स्वगत का पुनः प्रवेश नये प्रयोग की तरह हुआ है। विजय तेन्दुलकर लिखित 'खामोश', अदालत जारी है' नाटक का स्वगत इस सम्बंध में दृष्टव्य है। न्यायाधीश बना काशीकार कहता है - "अभियुक्त बेणारे, सजा भोगने से पहले तुम्हें अपने अभियोग के बारे में कोई सफाई देनी है? (घड़ी सामने रखकर) अभियुक्त को दस सेकेन्ड का वक्त दिया जाता है। बस अब सारे पात्र फ्रिज हो जाते हैं और बेणारे जो कि बेजान सी बैठी थी, उठकर खड़ी हो जाती हैं मूर्ति की तरह । वह कहती हैं - "हाँ। बहुत: कुछ कहना है मुझे (अंगड़ाई लेकर) कितने बरस बीत गये, कुछ कहा ही नहीं। क्षण आये, चले गये।[2]

प्रस्तुत स्वगत में नाटककारों में 'बेणारे' के मन की व्यथा, आक्रोश को व्यक्त किया है। केवल दस सेकेण्ड में चार पन्नों का स्वगत कथन टेप द्वारा नेपथ्य से सुनाया जाता है।

हम कह सकते हैं कि विशेष रूप से सातवें, आठवें एवं नवें दशक में हिन्दी रंगमंच के नये प्रयोग स्पष्ट रूप से उभर कर आये हैं। नये कथ्य की माँग के अनुसार यक्षगान, नौटंकी, भाँण, जात्रा, तमाशा, भवई, पारसी आदि विविध परम्परागत शैलियों के माध्यम से आज का निर्देशक नये मंचसज्जा के उपकरणों के माध्यम से नाटक को नई अर्थवत्ता प्रदान कर रहा है। संगीत, मुखौटे और अलग-अलग रंग युक्तियों के माध्यम से नाटक को अधिक प्रखर रूप से दर्शकों के सम्मुख लाया जा रहा है। नाटक देखने वाला दर्शक वर्ग सीमित होता है। अधिक -तर दर्शक सिनेमा हॉल की ओर दौड़ते हैं। ऐसी स्थिति में नाटककारों ने नुक्कड़ नाटकों

के लिखने का विशेष कार्य शुरू किये। बादल सरकार का 'जुलूस' आगन मंच है जो विना किसी तामझाम के, बिना टिकट के नुक्कड़ों, पार्को में खेला जा रहा है। ऐसे नाटकों से नाटक देखने वाले दर्शकों की संख्या बढ़ी है। इस तरह नाटक समाज प्रबोधन का सशक्त माध्यम है।

---

1. हिन्दी साहित्य कोष भाग-1, त2, सम्पादक - धीरेन्द्र वर्मा पृ0 54

सन्दर्भ संकेतः

2. विजय तेन्दुलकर : खामोश अदालत जारी है। (मनु0 सरोजनी वर्मा) पृ0 117

सन् उन्नीस सौ सत्तर के बाद प्रयोगों से स्पंदित हिन्दी रंगमच

भारतीय रंगमंच की पहली चुनौती 'फिल्म उद्योग' था तो दूसरी ओर एक चुनौती 'टेली-विजन' बना । इन दोनों माध्यमों ने रंगमंच को काफ़ी नुकसान पहुंचाया। एक ओर जहां फ़िल्मों के ग्लैमर और पैसे ने रंगमंच के बेहतरीन अभिनेता, अभिनेत्रियों को रंगमंच से दूर किया वहीं फ़िल्मों में नाट्य लेखन की संभावनाओं को भी क्षीण किया। हालांकि बहुत से कलाकर तक की शौकिया तौर पर रंगमंच से जुड़े रहे। इस प्रकार दर्शकों में होने वाली कमी के बावजूद रंगमंच को बनाये रखा।

सन् 1972 ब0 व कारन्त के निर्देशन में गिरीश कर्नाड प्रसिद्ध नाटक 'हयवदन' के प्रदर्शन ने हिन्दी रंगमंच को बृहत्तर संदर्भ दिया और नये मुहावरों और नयी शैलियों के विकास की संभावनाएं जगायी । सन् 1973 में विजय तेन्दुलकर के सशक्त नाटक 'घासीराम कोतवाल' का मंचन हुआ। इसी तरह कई दूसरी भाषाओं में लिखे गये नाटकों के अनुवाद की हिन्दी में हुए और खेले गये । सेमुअल बैकर, सजिन आइनेस्को, ब्रेखत, सार्त्र का हिन्दी रंगमंच ने खासा इस्तेमाल किया। हिन्दी रंगमंच का एक सशक्त गुण है इसकी प्रयोगधर्मिता। इसी प्रयोग धर्मिता के कुछ प्रमुख उदाहरण रहे हैं। सन् 1954 में हबीब तनवीर के निर्देशन

में खेला गया 'आगरा-बाजार' और 1979 ई॰ में ब0 व0 कारन्थ के निर्देशन में 'बरनम वन' का प्रदर्शन । 'आगरा-बाजार' में हबीब तनवीर ने लोकप्रिय कवि 'नजीर' की कविताओं और उनके जीवन पर नाटक लिखा और 'रघुवीर सहाय' ने शेक्सपीयर के नाटक 'मैकवेथ' का अनुवाद छंद में किया। इसे 'यक्षगान शैली' में प्रस्तुत किया गया। ये नाटक कविता और नाटक के बीच एक विशेष संबंध बनाने वाले प्रयोग थे । इसी बीच उपन्यास, कहानियों के भी नाट्य रूपान्तर किये गये और उनका मंचन हुआ । इस तरह यह कभी व्यावसायिक नहीं बन पाया।

इसी बीच टेलीवीजन का विस्तार हुआ जिसके चलते रंग मंच को एक बार फिर संकट का सामना करना पड़ा । टेलीविजन पर नाटकों, कविताओं, कहानियों के प्रस्तुतीकरण को लेकर अनेक विवाद हुए, लेकिन यह सच है कि नाटकों के ही नहीं फिल्मों के दर्शक को भी टेलीविजन ने 'जीत' लिया है। यह भी निश्चित सा हुआ कि टी0वी0 एक आधुनिक और प्रभाव शाली माध्यम है और यदि इस माध्यम का सही इस्तेमाल किया जाये तो 'तमस' जैसी प्रस्तुति भी दी जा सकती है। पिछले वर्षो में अनेक कहानियों और उपन्यासों पर टी0वी0 के लिए फिल्में बनीं और अनेक नाट्य कर्मी रंगमंच से टी0वी0 की ओर आकर्षित हुए पर तमाम आर्थिक और व्यावहारिक समस्याओं के बावजूद हिन्दी रंगमंच ने अपनी जगह नहीं खोयी । टी0वी0 के प्रभावशाली रहते भी नये प्रयोग रंगमंच में हुए हैं।

आज जिस दौर से हम गुजर रहे हैं और जहां विदेशों से आ रही अपसंस्कृति और उपभोक्तावाद का बोलबाला है, उसमें न केवल रंगमंच को बल्कि सभी विधाओं को एक दूसरे से जुड़ते हुए एक दूसरे को समृद्ध करने की जरूरत है।

यदि कविता, कहानी और उपन्यास रंगमंच के लिए नये मुहावरे, नया कथ्य और नयी शैलियां दे सकते हैं तो रंगमंच भी कविता को वाचिकता लौटा सकता है, और अधिक से अधिक लोगों में आधुनिक कविता पढ़ने और उसे समझने की क्षमता तथा ललक पैदा कर सकता है।

नाग बोड्स का विचार है कि दर्शकों के बीच वे ही नाट्य प्रदर्शन अत्यन्त सफल होते हैं जिसमें 'लोकतत्व' होते हैं। नाग वोड्स ने 'खूब सूरत बहू' में लोकतत्व का समावेश इतनी गहराई से होने के कारण इतना सफल हुआ।

एक ओर जहां हिन्दी रंगमंच दर्शकों की कमी झेल रहा है तो दूसरी ओर हिन्दी साहित्य भी पाठकों की कमी महसूस कर रहा है। इसका एक बहुत बड़ा कारण हिन्दी में जातीयता की कमी है। मराठी, कन्नड़, बंगला, मलयालम, उड़िया आदि भाषाओं में जितनी गहरी जातीयता है उतनी हिन्दी में नहीं है। अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में हिन्दी लेखकों को प्रोत्साहित भी कम ही किया जाता है। जो सातवें दशक से दर्शकों की बहुत कमी आयी है। इसका कारण रंगकर्मी 'अनिल रंजन भौमिक' मानते हैं कि इस क्षेत्र में अच्छे रंगकर्मियों का अभाव है। प्रतिबद्ध रंगकर्मी द्वारा किया गया कार्य अच्छा होगा तो अच्छे कार्य को दर्शक अवश्य देखेंगे। **अविनाश चन्द्र मिश्र** का कहना है कि धैर्य पूर्वक उत्साह के साथ कार्य करने से हिन्दी रंगमंच की खामियों को दूर किया जा सकता है। इसके प्रति नाट्य निर्देशक रंजीत कपूर बहुत ही आशावादी हैं उनका मानना है कि अब रंगमंच को एक सम्मानजनक पेशे के रूप में मान्यता मिली है। इसका भविष्य उज्ज्वल है।

दर्शक की साझेदारी :

जीवन के कार्य-व्यापार की अनुकृति नाटक है। नाटक में नाटककार की कल्पना का पुट होता है, पर कल्पना जीवन आधारित ही होती है। इसी सन्दर्भ में नाटक दृश्य काव्य है और रंगमंच उसकी कसौटी है।

'रंगमंच' शब्द रंग और मंच से मिलकर बना है। रंग का अभिप्राय जीवन व्यापारों से तथा मंच का 'स्थल' से है। विभिन्न देश-काल और पात्रों के कार्य-व्यापार एक स्थान और सीमित काल में जहां प्रस्तुत किये जायें, उसे रंगमंच कहते हैं। रूढ़ अर्थ में यह शब्द रंगशाला को बोधक बन गया। रंगशाला नाटक की कसौटी है जिसपर नाटक की परख होती है। परख करने वाला धर्मी वर्ग दर्शक है। नाटक की प्रस्तुति में उसके बिना कार्य की सफलता पूर्ण संदिग्ध है। एक नाटक की पूर्णता में विचार, लेखन, मंच-प्रस्तुति के समस्त व्यापार तथा प्रचार - प्रसार जुटाने पर भी दर्शक भी जुटाये जा सकते हैं। पर उनकी अपनी मांग पर नाटक की मंच-प्रस्तुति नाटक की पूर्ण सफलता है।[1] अतः नाटक में दर्शक का स्थान सर्वोपरि माना जा सकता है।

भरतमुनि के नाट्य शास्त्र से अब तक नाटक के सम्बंध में जो भी कृतियां लिखी

गयीं, वे सभी दर्शक की महत्ता पर प्रकाश डालती हैं, पर दर्शक नाटक का अपरिहार्य तत्त्व है, इस पर पृथक, दृष्टिकोण से विचार नहीं किया गया है। आज का नाटकार इसको अधिक गम्भीरता से अनुभव करता है। 'नरनारायण राय' ने लिखा- "इन दिनों नाटककारों में यह अहसास काफी गहरा हुआ है कि नाटक वस्तुत: एक समूह द्वारा दूसरे समूह सम्प्रेषण का एक कलात्मक माध्यम है।"[2]

नाटक में 'जीवन' घटित होता है। जीवन का अर्थ सही सन्दर्भ में गृहीत हो सके, इसके लिए परिवेश की समझ प्रस्तोता, भोक्ता और रचयिता तीनों के लिए जरूरी है। भोक्ता के लिए तो यह भी और आवश्यक है। उसकी समझ ही नाटक का मूल्यांकन करती है जो कृतिकार का पुरस्कार है। यही उसके श्रम की वास्तविक सफलता है।

दर्शक की समझ के अनेक स्तर होते हैं। वे सभी एक साथ नाटक की सम्प्रेषणीयता का भोग करते हैं। यही अग्निपरीक्षा साहित्य की अन्य विधा के कृतिकार को नहीं देनी पड़ती है। उसका सामना एक समय में एक स्तर के पाठकों से होता है। वह अपनी समझ को सुधार कर भी कृतिकार के भाव को ग्रहण कर सकता है, पर नाटककार को इसका अवसर नहीं। वह एक समय और एक ही समझ में अपनी बात दर्शकों को देता है। विभिन्न स्तर के दर्शक एक साथ ही सन्तुष्ट हों, इसके लिए नाटककार को मध्यम मार्ग अपनाना पड़ता है। उसे ऐसे दृश्यों को सजाना पड़ता है जो हर स्तर के दर्शकों को मोहित कर सके। 'नरनारायण राम' ने सही ही लिखा है -"वस्तुत: रंगमंच दृश्य आयामों का एक सुसंगठित रूप है।"[3]

आज का नाटककार दर्शक की समस्या से अपरिचित नहीं है। डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल' ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है- "व्यवहारिक स्तर पर आज नाटककार से पहले रंगशाला में दर्शक की समस्या है।"[4]

नाटककार दर्शक की अवहेलना करके अपनी मौत को ही बुलाता है। दर्शक हमारे समाज का जीता-जागता सदस्य है। समाज का जीवन ही नाट्य-लेखन बनता है। इसी अर्थ को बल प्रदान करते हुए डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल ने लिखा है- 'नाटक का सीधा-सम्बंध हमें अपने समाज और जीवन से जोड़ने के लिए नाटकाकर को स्वभावत: उन्हीं राग-रंग में

उतारना होगा।'[5] आज वही नाटक सफल है जो अपने रचयिता के भीतर को नहीं, दर्शक के विषय, यथार्थ, भावानुभूति और दर्शन को प्रदर्शित करता है। दर्शकों के प्रति यह धारणा हिन्दी नाट्य साहित्य में ही नहीं, विश्व-रंगमंच पर उभरी है। पश्चिम के नाटककार भी इसे अनुभव करते हैं। एक पश्चिमी नाट्य-चिन्तक ने माना कि दर्शकों के प्रति सम्मान व्यक्त करना चाहिए। नाटककार दर्शक को स्वीकारे, उसे घनिष्ठ रूप से जाने, उसकी बुद्धि का सम्मान करे तथा उसकी सहभागिता को स्वीकार करें।

अपनी मंच प्रस्तुतियों में मैंने (डॉ0 अवधेश अवस्थी) सदैव यह अनुभव किया है कि दर्शक की आँख से देखने वाले नाटककार को कभी नीचा नहीं होना पड़ता है। अपने लेखन तथा प्रस्तुती करण में यही मेरी सफलता है।

हिन्दी रंगमंच का इतिहास संस्कृत रंगमंच से प्रभावित है, पर इसे इसका उत्तराधिकारी मानना ठीक नहीं है। राम लीला, कृष्ण लीला, स्वांग, भगत, नौटंकी आदि को भी हिन्दी रंगमंच पर परोक्ष प्रभाव ही माना जायेगा। बंगला के लोक नाट्य यात्रा तथा पश्चिमी नाटकों का प्रभाव भी है। हिन्दी रंगमंच अपना स्वतंत्र अस्तित्व लेकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के प्रयत्न से सामने आया। उन्होने बंगला नाटकों का अनुवाद तथा स्वतंत्र लेखन द्वारा हिन्दी के रंगमंच का रूप उभारा । उनका 'अन्धेर नगरी' नाटक हिन्दी रंगमंच का इतिहास बनाता है। भारतेन्दु के बाद एक गतिरोध उत्पन्न हुआ जो एक तरह से जड़ता में परिणत हो गया। इस जड़ता को पारसी रंगमंच ने तोड़ा इसे चरम सफलता का काल मान सकते हैं। इस रंगमंच ने जन भावना और अंग्रेजी हुकूमत के बीच अपना रास्ता बनाया। अतः रंगमंच एक ओर हास्य प्रेम तथा दूसरी ओर धार्मिकता को उजागर करने लगा । राधेश्याम कथावाचक तथा आगा हश्र काश्मीरी ने जनरूचि की परख कर चरम सफलता प्राप्त की है। इस सफलता को देखकर कुछ व्यावसायिक लोग इधर मुड़े। उन्होने धन को ही विशेष महत्व दिया। फलतः जनरूचि का ह्रास होते-होते आज इनके प्रति घृणा की चरम सीमा है। इससे स्पष्ट है कि **जनरूचि की अवहेलना नाटक की मृत्यु लाती है।** पारसी रंगमंच इसका प्रमाण है।

इस रंगमंचीय अधोगति से दुःखी होकर ही जयशंकर प्रसाद ने गम्भीर मंच देने का सफल प्रयत्न किया इस सन्दर्भ में उन्होने भिन्न प्रकार के दर्शकों की अवहेलना कर

एक स्तर के दर्शक की ओर ही ध्यान दिया। फलतः उनके नाटक रंगमंच की कसौटी पर खरे नहीं उतरे। वह सस्ती जनरूचि से बचना चाहते थे। धीरे-धीरे इसे समझा और 'ध्रुवस्वामिनी,' नाटक की रचना कर इसके लिए मार्ग खोल दिया। लक्ष्मी नारायण मिश्र, सेठ गोविन्द दास हरि कृष्ण प्रेमी आदि नाटककारों ने इस दिशा में जो कार्य किया, वह सराहनीय है इन्होने दर्शकों की साझेदारी के साथ ही हिन्दी रंगमंच का विकास किया है।

भारतेन्दु, प्रसाद तथा फारसी रंगमंच ने हिन्दी रंगमंच के प्रति रूचि उत्पन्न की। फलतः संरक्षणविहीन शौकिया रंगमंच विद्यालयों संस्थाओं में उठ खड़ा हुआ। विश्वविद्यालयीय रंगमंच के द्वारा दर्शकों की आन्तरिक वाणी को प्रदर्शित करने का श्रेय डॉ0 राम कुमार वर्मा को है। उन्होंने अपने नाटकों में दर्शकों की साझेदारी का पूरा ध्यान रखा है। बाहर पृथ्वी थियेटर इप्टा (इंडियन पीपुल्स थियेटर) संगीत नाटक अकादमी, नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा ने वातावरण ही नहीं बनाया, दर्शकों की साझेदारी को पूर्ण रूप से स्वीकार किया।

सातवें दशक के बाद नाटकों में यह दृष्टि खूब उजागर है। इसमें 'अन्धा -युग' (धर्मवीर भारती), 'आधे-अधूरे', 'रस-गन्धर्व', आदि प्रमुख है। इस दिशा में कुछ अनुवाद भी कारगर, हुए हैं। इनमें हयवदन, गिरीश करनाड, कस्तूरी मृग, पु0 ल0 देश पांडि तथा अरण्यक विजय वापट प्रमुख हैं। इस प्रकार यह तथ्य परक मान्यता अब स्वीकार्य है कि नाटकों में दर्शकों की साझेदारी प्रमुख स्थान रखती है।

सन्दर्भ संकेतः

1. नाटक में दर्शक की साझेदारी - 'नाट्य समीक्षा विशेषांक' (शीर्षक) पृ0 102
   लेखक - डॉ0 अवधेश अवस्थी।
2. आधुनिक हिन्दी नाटक : एक यात्रा दशक पृ0 346
3. नाटक : रचना-विधान और आलोचना के प्रतिमान।
4. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच पृ0 349
5. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच पृ0 14
6. 'नाट्य समीक्षा विशेषांक' नाटक में दर्शक की साझेदारी पृ0 103
   डा0 अवधेश अवस्थी ।
   (हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद।)

हिन्दी रंगमंच की वर्तमान समस्याएं :

रंगमंच की समस्याएं कभी भी एकोन्मुखी नहीं हो सकती, चूंकि रंगमंच का सम्बन्ध सर्जनात्मक पक्ष से है और रंगकर्म अपने में सामूहिक संश्लिष्ट कलारूप है इसलिए जुड़ी समस्याएं भी बहुआयामी है और बहुत सूक्ष्म और जटिल हैं। उसके साथ नाट्यलेखन की चुनौतियां भी हैं।

हिन्दी रंगमंच की स्थिति संघर्ष से अधिक द्वन्द्व, अनिश्चय और प्रयोग, अन्वेषण और निरन्तर नवीनता की तलाश भी अधिक रही हैं। वर्षों के इतिहास और विकास के बाद रंगमंच के प्रति जनरूचि, सामाजिक वातावरण में संस्कार और चेतना, सार्थक रंगकर्म की निश्चित परिभाषा बनी ही नहीं । न जनरूचि को समझना चाहा, न बदलना चाहा। दरअसल हिन्दी रंगमंच का उदय ही उसकी वास्तविक सत्ता प्रतिष्ठा प्रयोगात्मक वृत्ति से बौद्धिकता और पश्चिमी शैलियों से हुआ और धीरे धीरे रंग-शैली और शिल्प के नये अन्वेषण में लगते-लगते रंगमंच शैली-बद्धता का शिकार हुआ। जन-संवेदना, भारतीय संस्कृति और मनुष्य के साथ रागात्मक सम्बन्ध के कारण या उस अन्दरूनी जरूरत और अभिरूचि के दबाव से रंगमंच का इतिहास नहीं बना। वर्षों से यह बात कही जा रही है कि हिन्दी रंगमंच मूलत: निर्देशक का रंगमंच है। उसमें नाटककार, अभिनेता, दर्शक गुम हो गये हैं - उपेक्षित हुए हैं।

रंगमंच अपनी शैलीबद्धता में विशिष्टता का वैयक्तिक अभिरूचियों की प्रधानता का मंच होता है। सारे विकास के बाद भी आज की सबसे बड़ी और ताजा समस्या भारतेन्दु की तरह व्यापक आन्दोलन करने और गम्भीरता से यह विचार करने की है कि रंगकर्म की सार्थकता किसमें है? हिन्दी प्रदेश की संस्कृति क्या है? आज हमारी आवश्यकताएं क्या हैं? देश- काल के अनुसार, लोकवृत्ति के अनुसार अपने को बदलते रहने की बात बहुत पहले भारतेन्दु ने कही थी। युग-धर्म, जनरूचि, जीवन की नयी समस्याएं और आज की संक्रांति को, यंत्रणा को, जनता की भाषा उसके मुहावरे और लहजे में उसके जीवन की लय में ढालने और संप्रेषित करने के अनुकूल आधार तलाशने में हैं। इस दायित्व को केवल लोक परम्पराओं से जुड़ने और लोक नाट्य शैलियों के प्रयोगों, अपरिपक्व अनुकरण में नहीं अनुभव किया जा सकता। निर्देशक की शैलीवद्धता से नाट्य लेखन, अनुवाद, प्रदर्शन, प्रति-क्रियाएं, संवाद की उन्मुक्तता, स्वस्थ, आलोचनात्मक दृष्टि और बहस का अभाव होता गया।

रंगकर्म हमारे यहाँ बौद्धिक मानसिक विलास अधिक बन गया। लोकजागरण और सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना का आधार कम। जिस सामूहिक चेतना के लिए रंगमंच जाना जाता है, वह वैयक्तिक बन गया, यानी अपने ही प्रशंसक अपने ही समीक्षक। आत्मतुष्टि और रोमांटिक प्रवृत्ति। रंगकर्म में हिन्दी-नाटककार उपेक्षित हुआ और वह क्रमशः पूरे रंग-फलक से कटता गया। साहित्य और रंगमंच का विरोधाभास हिन्दी नाटक और रंगमंच इतिहास की सबसे बड़ी दुर्घटना रही है जिसने अच्छे नाटक-कारों को पनपने नहीं दिया और हिन्दी नाटक-कार की कोई व्यापक छवि नहीं बनने दी। हीन मानसिकता क्षोभ और अलगाव पैदा करने की स्थितियाँ बनीं, अहमन्यता बढ़ी और पहले भारतीय भाषाओं और फिर विदेशी नाटकों के अनुवादों, रूपान्तरों, भारतीयकरण और प्रस्तुतियों का इतना बोलबाला हुआ है कि "हिन्दी रंगमंच और हिन्दी नाटक" जैसी चीज गायब हो गयी है।

इसका यह अर्थ तो नहीं है कि देशी-विदेशी नाटकों के मचंन नहीं होने चाहिए, अवश्य होने चाहिए क्योंकि श्रेष्ठ-कृतियाँ देश-काल की सीमा से परे कालजयी, सार्वजनीन होती है। अच्छी कृतियों की सर्जनात्मकता प्रस्तुतियों ने निश्चय ही हिन्दी रंगमंच को समृद्ध और जीवन सशक्त बनाया है, लेकिन क्या लगातार शैक्सपियर, ब्रेख्त, चेखव, गोर्की, लोर्का में अपनी जड़ें खोजी जा सकती हैं ? 'भुवनेश्वर,' भीष्म साहनी, नन्दकिशोर, आचार्य, गिरिराज किशोर, रामेश्वर-प्रेम, के नाटकों को कितनी बार कितने नये मौलिक प्रयोगों के साथ किया गया? 'यमगाथा (डी.एन. सिंह) इधर के विराट फलक के नाटक हैं- उतने प्रदर्शन उनके नहीं

हुए। अगर एक विदेशी कहानी या नाटक को किसी स्थानीय बोली और शैली में ढालने का परिश्रम किया जा सकता है या प्रसिद्ध हिन्दी नाटक "एन्टीगनी" की व्यापक गंभीर त्रासदी को प्रयोग के नाम पर 'छाऊ शैली' या अन्य किसी शैली के प्रयोग से नष्ट किया जा सकता है तो हिन्दी की किसी नाट्यकृति को प्रयोगों और प्रयास से श्रेष्ठ क्यों नहीं किया जा सकता ? जैसा कि ब0 व0 कारन्त ने 'विद्या सुन्दर,' 'विशाख', 'कामना' और 'स्कन्दगुप्त' के साथ किया; मृणाल पांडे ने कई नाटक लिखे "मुक्तिकथा" के सन्दर्भ में उन्होंने कहा था कि किसी रंगमंडल के साथ कार्यशाला या रिहर्सल के दौरान् वह इस नाटक की पुनर्रचना करना चाहती हैं।[1]

पारसी रंगमंच की यह बात अनुकरणीय लगती है कि उसने नाटककार पैदा किये। समय की आवश्यकता के अनुरूप नाटक लिखवाये। बंगला रंगमंच अपनी ही भाषा की नाट्यकृति को महत्त्व और प्राथमिकता देता है। मराठी रंगमंच से सीधे जुड़कर रंगमंच और निर्देशक की सहभागिता में विजय तेंदुलकर, बसन्त देव लिखतें हैं — 'किसी दृश्य के असफल होने पर उसी अन्तिम क्षण तक पुनर्रचना करते हैं। हिन्दी रंगमंच इस स्वास्थ्य, सक्रिय, दृष्टि से इसीलिए नहीं जुड़ा क्योंकि रंगकर्मी का हिन्दी भाषा की अस्मिता से गहरा जुड़ाव नहीं है और नाटककार पूर्णतः नाटककार नहीं है ; वह अपने को कवि, कथाकार से अलग नहीं कर पाता।

---

1. हिन्दी रंगमंच की मौजूदा समस्याएं (राष्ट्रीय सहारा 3 जुलाई, 1994) गिरीश रस्तोगी।

एक साहित्यकार की छवि से मुक्त होकर रंगकर्म के बीचोबीच नहीं पहुँचा पाता। एक बार यह प्रक्रिया शुरू हुई थी लेकिन सह-अस्तित्व और नाटककार की सत्ता का सवाल उठ खड़ा हुआ जिसके पीछे कई कारण थे।[1]

रंगमंच का जीवन समाज और परिवारों में कोई संस्कार नहीं है। जड़ता और पूर्वाग्रह के कारण रंगमंच को पग-पग पर अनेक समस्याओं से सामना करना पड़ता है। इसलिए रंगमंच की शिक्षा अनिवार्य रूप से 'बचपन' से करना चाहिए। विश्वविद्यालयीय शिक्षा में संगीत और चित्रकला की तरह "नाटक - विभाग" भी होना चाहिए। इलेक्ट्रानिक मीडिया ने रंगमंच के सामने खतरे और चुनौतियाँ दोनों खड़ी कर दी हैं। कुछ लोग मानते हैं कि हिन्दी में नाटक लेखन इसलिए कम होता है कि क्योंकि नाटककारों का रूझान टी0वी0 और फिल्मों की ओर बढ़ता जा रहा है। यह बात सहीं नहीं है। हिन्दी के श्रेष्ठ नाटककारों और उनके नाट्यलेखन का दूरदर्शन से खास सम्बन्ध जहाँ तक फिल्म एवं टी0वी0 में सफलता का फार्मूला 'सेक्स' बनने और रंगमंच पर असर का सवाल है तो आज तक कोई भी श्रेष्ठ कृति ऐसी नहीं हुई जिसमें 'सेक्स' प्रमुख रहा हो।[2]

रंगमंच की सबसे ताजा समस्या आज पुनः एक संगठित आन्दोलन,

---

1. रंगमंच की ओर जल्द ही लौटेगा दर्शक । (आलेख)

विभा मिश्रा

2. हिन्दी रंगमंच को क्रांतिकारी बदलाव का इंतजार है। (हस्ताक्षेप- राष्ट्रीय सहारा- 03.07.94

सामूहिक शक्ति से युद्ध कार्य शुरू करने की और अपने जीवित सौन्दर्य प्रमाणित करने की है। रंगमंच की निजी विशेषता एक ही है- जीवित शक्ति, प्रत्यक्ष अनुभूति और सीधे साक्षात्कार। इसे प्रमाणित करना पहला धर्म है। आज की आवश्यकता चकाचौंध शैली और प्रयोग की उतनी नहीं जितनी कथ्य की ताकत को और अभिनेता के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करने की है।[1]

आज ऐसे रास्ते तलाशने होंगे जिनमें रंगमंच 'जीवन का अनिवार्य व्यवसाय' बने और जीवन में अजीविका का साधन भी बन सकें, पर भोंडी व्यावसायिक मनोवृत्ति का शिकार भी न हो जैसा कि 'दूर दर्शन और फिल्म' पक्ष में है। इस दृष्टि से 'भारत भवन' भोपाल का रंगमंडल एक सुखद घटना की तरह शुरू हुआ। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली और श्रीराम सेंटर दिल्ली एवं भारतेन्दु नाट्य अकादमी-लखनऊ भी इस प्रकार के रंगमंडल चला रहें है। इन व्यावसायिक रंगमंडलों की संख्या बढ़नी ही चाहिए। प्रख्यात नाट्य समीक्षक नेमिचन्द्र जैन ने कहा था कि 'अव्यवसायी और पेशेवर रंगमंच एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों को विराधी के रूप में देखने के बजाए सही परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है।

रंगमंच की मूल समस्या उदासीनता और द्वन्द्वात्मकता की है, उसके व्यापक स्वरूप की प्रतिष्ठा के बदले निष्क्रियता की हैं। इसलिए रंगमंच के संस्कार रंगकर्म के प्रति रचनात्मक सम्मान का भाव कलात्मक गौरव का भाव सर्जनात्मक रंगमंच की निरुतरता से ही संभव है।[2]

---

1. आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच- लक्ष्मी नारायण पृ0-93
2. रंगकर्म -विरेन्द्र नारायण प्रधान, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0-59

आधुनिक रंगमंच : विकास और सम्भावना

रंगमंच एक सहयोगी एवं संश्लिष्ट कला-रूप है, जो नाट्य लेखन से प्रदर्शन तक एक संयुक्त रचनात्मक प्रक्रिया से गुजर कर जीवन्त अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में साकार और सार्थक होता है। आधुनिक रंगमंच चाहे वह ब्रेख्त का हो, चाहे ग्रोटोवस्की का, चाहे बादल सरकार का और चाहे वर्तमान प्रतिष्ठित निर्देशकों का, वस्तुतः वह अभिनेता की शक्ति में ही विश्वास करता है, बाह्य उपकरणों में नहीं, दृश्य परिकल्पना अभिनेता द्वारा ही अनुभूत कराना तथा पात्रों के प्रवेश-प्रस्थान, गतियों आदि के विभिन्न आधुनिक प्रयोगों के पीछे मूल प्रेरणा प्राचीन नाट्य शास्त्र की है। आधुनिक रंगमंच केवल परदों का मंच नहीं है; बल्कि सादे मंच पर एक ही अंक में कई अभिनय - स्थल बदलते रहते हैं और प्रायः यह परिवर्तन या तो सूचित किये जाते हैं या अभिनय द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं।[1] अनेक ऐतिहासिक और जटिल कारणों से हमारा आधुनिक भारतीय और विशेषकर हिन्दी रंगमंच कई प्रकार के अन्तर्विरोधों से घिरा है। जहाँ तक परिमाण, विस्तार और लोकप्रियता अथवा व्यावसायिक सफलता का प्रश्न है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मराठी, बंगला और कन्नड जैसी रंग-समृद्ध साहित्य के मुकाबले हिन्दी का रंगकर्म अभी उतना विकसित और समृद्ध नहीं है, परन्तु सवाल यदि प्रयोगशीलता

---

1. प्राचीन नाट्यशास्त्र और आधुनिक रंगमंच पृ0-4। (नाटय समीक्षा विशेषांक) (निबन्ध)

श्रीमती गिरीश रस्तोगी

कलात्मकता और अकुंठ ग्रहणशीलता का है तो समकालीन हिन्दी रंगकर्म किसी से कम नहीं है।

मौलिक नाट्य-लेखन की दृष्टि से देखें तो आजादी के बाद "धर्मवीर भारती" के "अंधायुग", जगदीश चन्द्र माथुर के 'कोणार्क' ('शारदीया' और 'पहला राजा' के बावजूद), मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' और 'आधे-अधूरे', शंकर शेष के 'एक और द्रोणाचार्य' और 'पोस्टर', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'बकरी', भीष्म साहनी के 'हानुश', 'कबिरा खड़ा बाजार में और 'माधवी' तथा लक्ष्मी नारायण लाल के 'मादा कैक्टस' से 'गंगामाटी' तक कुछेक को निश्चय ही अपनी तमाम कमियों और सीमाओं के बावजूद उल्लेखनीय कृतियाँ कहा जा सकता हैं। बाद की पीढ़ी के रचनाकारों ने 'द्रोपदी', 'सूर्य की अन्तिम किरण से 'सूर्य की पहली किरण तक', 'सेतुबंध' तथा 'आठवाँ सर्ग' के लेखक सुरेन्द्र वर्मा हैं, वर्मा जी के ये उपर्युक्त नाटक अत्यन्त ज्ञानवर्धक हैं वरन् 'छोटे सैयद बड़े सैयद' जैसे विवादास्पद बड़ें नाटक के बाद सुरेन्द्र वर्मा के अप्रकाशित किन्तु मंचित 'एक दूनी एक' का ही प्रमाण दिया। रमेश बक्षी 'तीसरा हाथी', 'बामाचार' और कसे हुए तार' के बावजूद 'देवयानी का कहना है' से आगे नहीं बढ़ें, तो मुद्राराक्षस भी 'संतोला', 'गुफाएँ', 'तेंदुआ', 'तिलचट्टा' के बावजूद 'मरजीवा' और 'योअर्स फेथफली' की जमीन पर खड़ें हैं। मणि मधुकर ने 'बुलबुल सराय', ' दुलारी बाई', 'खेला पोलमपुर का' और 'इकतारे की आँख' जैसे छोटे- बड़ें कई नाटक लिखे, लेकिन वह आज भी 'रस गंधर्व' के लेखक के रूप

में उसी प्रकार जाने जाते हैं जैसे ज्ञानदेव 'अग्निहोत्री' 'शुतुरमुर्ग', वृजमोहन शाह 'त्रिशंकु', विपिन अग्रवाल 'तीन अपाहिज', बलराज पंडित 'पाँचवाँ सवार', दयाप्रकाश सिन्हा 'कथा एक कंस की', शरद् जोशी ' एक था गधा उर्फ अलादाद खाँ', हमीदुल्ला 'उलझी आकृतियाँ', सुशील कुमार सिंह 'सिंहासन खाली है', सत्यदेव दुबे 'सम्भोग से संन्यास तक', रमेश उपाध्याय 'पेपर वेट', गिरराज किशोर 'प्रजा ही रहने दो', नरेन्द्र कोहली 'शम्बूक की हत्या', नाग बोड्स 'कृति-विकृति ' और कुसुम कुमार 'सुनो शेफाली' या 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' जैसे आरम्भिक नाटकों के रचनाकारों के रूप में जाने जाते हैं।[1]

इसके बावजूद इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्व0 शंकर शेष के 'कोमल गांधार', मृणाल पाण्डेय के 'जो राम रचि राखा', 'आदमी जो मुछुआरा नहीं था', 'चोर निकल कर भागा, रामेश्वर प्रेम के 'अजातघर, 'चारपाई', 'कैम्प' और 'अन्तरंग' गिरिराज किशोर के 'घास और घोड़ा ', असगर वजाहत के 'इन्ना' और वीरगति', त्रिपुरारी शर्मा के 'अक्स पहेली', 'बहू' तथा 'काठ की गाड़ी' कुसुम कुमार के 'रावण लीला', प्रभात कुमार भट्टाचार्य के 'काठ महल', विभु कुमार के तालों में बन्द प्रजातन्त्र', नागबोडस के 'टीन टम्पर', धर्मपाल अकेला के 'देखो वह पुरुष ', नरेन्द्र कोहली के 'निर्णय रुका हुआ' तथा 'हत्यारे' विनय के 'एक प्रश्न मृत्यु', राजेश जोशी के 'जादू जंगल', किरण चन्द्र शर्मा के 'सावधान पुरुरवा' विलास गुप्ते के 'आदमी का गोस्त' जैसे चर्चित -अचर्चित कई मौलिक नाट्यालेख इस बीच हमारे सामने आए ही हैं।[2]

---

1. रंग मंच नया परिद्रष्टा रीतारानी पाली लाल पृ0- 202
2. नया नाटक स्वरूप और संभावना पृ0 61
चन्द्रशेखर मिश्र

जहाँ तक कालजयी रचनाओं और बड़ी उपलब्धियों का सवाल हैं, कन्नड़ में आद्य रंगाचार्य के बाद गिरीश कर्नाड़ ने 'ययाति', 'तुगलक' और 'हयवदन' के बाद कुछ विशेष नहीं लिखा और उनके पुनर्लिखित नए नाटक 'बलि' ने निराश ही किया। कम्बार 'जो कुमार स्वामी' और लंकेश 'परतें' पर ही टिके हैं। बंगला में बादल सरकार ने 'एवम् इन्द्रजित', 'बाकी इतिहास', 'पगला घोड़ा', 'सारी रात' के बाद नाटक लिखने के बजाए 'बनाने' का काम शुरू कर दिया और 'जुलूस' से शुरू होकर अब 'बासी खबर' भर बनकर रह गये हैं। मोहित के गिनीपिंग तथा देवाशीष मजुमदार के 'ताम्रपत्र' के अलावा काफी समय से कोई श्रेष्ठ मौलिक रचना बंगला में भी सामने नहीं आई है। मराठी में विजय तेंदुलकर 'खामोश', - अदालत जारी' और 'घासीराम कोतवाल' की अपनी ऊँचाई नहीं लाँघ पा रहे हैं, हालाँकि 'बेबी', 'अंजी', 'कन्यादान' और अब 'सौभाग्यकांक्षिणी' तक उनकी सतत् सक्रियता और रंग-शिल्प की विकसित होती समझ। कुशलता निश्चय ही प्रशंसनीय है। गोविन्द देशपाण्डे 'उध्वस्त धर्मशाला' पर अटके हैं और जयंत दलवी 'संध्याछाया' और 'सूर्यस्त' से आगे नहीं बढ़ें। हाँ, महेश एलकुंचवार 'वासनाकांड', 'गार्बो', 'रक्त पुष्प' 'होली', 'पार्टी' से होते हुए 'विरासत' तक जरूर आए हैं, जबकि सतीश आलेकर 'महानिर्वाण' के 'बेगम बर्वे', मिक्की और मेमसाब' तथा 'शनिवार-रविवार' की काम-कुंठाओं में ही उलझे हैं। कमोवेश यही स्थिति अन्य भाषाओं की भी है। मणिपुरी उड़िया, मलयालम, गुजराती इत्यादि में भी मौलिक नाट्य-लेखन की स्थिति निराशाजनक ही है। हाँ, इनके कई निर्देशकों द्वारा लिखे कुछेक नाट्यलेख प्रदर्शनों में प्रभावी

अवश्य सिद्ध हुए हैं, लेकिन केवल आलेख के रूप में देखने पर उन्हें भी श्रेष्ठ नाट्य-लेखन का उदाहरण नहीं माना जा सकता है।[1]

आधुनिक भारतीय रंगमंच के उद्भव और विकास का दौर निस्संदेह वेहद उत्साह वर्धक रहा है। हिन्दी रंगमंच की नींव को मजबूत करने वाले छोटे-बड़े शहरों-कस्बों के बहुसंख्य अज्ञात अथवा अल्पज्ञात उत्साही रंगकर्मियों के अलावा इब्राहीम अल्काजी, सत्यदेव दुबे, हबीब तनवीन, शान्ता गांधी, श्यामानन्द जालान, ब0व0कारंत, राजिंदर नाथ, शीला भाटिया, सथ्यू, ओम शिवपुरी, वृज मोहन शाह, मोहन महर्षि, रामगोपाल बजाज, डॉ0 लाल, सत्यव्रत सिन्हा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, प्रो0 सत्य मूर्ति, सरनबली, वीरेन्द्र मेंहदीरता प्रभृति का निर्णायक योगदान रहा है। इनके बाद देश भर में अपने स्तरीय रंगकर्म एवं बहुसंख्य रंग-प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से नई रंग-चेतना लाने वालोंमें एम0के0 रैना, रंजीत कूपर, अमाल अल्माना, बन्सी कौल, भानु भारती, देवेन्द्र राज अंकुर, राजेन्द्र गुप्त, फैजल अल्काजी, नादिरा बब्बर, रवि बास्वानी, रमेश मनचन्दा, राज विसारिया,उर्मिल कुमार थपलियाल, कुमुद नागर, निरोश रस्तोगी, विचमल लाठ, कृष्ण कुमार, अतुलवीर अरोड़ा, अलखनंदन, सतीश आनन्द और अख्तर बन्धुओं जैसे अनेक युवा एवं उत्साही रंग कर्मियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं, परन्तु मौजूदा हालत यह है कि पिछले काफी समय से हमारे ज्यादातर वरिष्ठ निर्देशक जहाँ के तहाँ खड़े प्रतीत होते हैं। अल्काजी 'तुगलक' में अपने चरम पर थे ओर उसी के साथ उन्होंने थियेटर छोड़ दिया। दुबे

---

1. रंगमंच-मन्मथ नाथ गुप्त, पृ0- 7

के 'अरण्य', 'बलि' और काफी हद तक विरासत ने भी विकास के कोई संकेत नहीं दिये। हबीब तनवीर के 'हिरमा की अमर कहानी' ने निराश किया। श्यामानन्द जालान 'शकुंतला' या 'आधे-अधूरे' में कहीं भरे पूरे नहीं लगते। राजिन्दर नाथ 'घासीराम कोतवाल' जात ही पूछो साधु की' की ऊचाँइयाँ लाघ पाने में स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं। शान्ता गांधी 'जसमा ओढ़न' से आगे नहीं बढ़ी। शीला भाटिया अपने हर प्रदर्शन में पीछे नहीं तो ज्यादा से ज्यादा वहीं होती है और जहाँ पहले थी। सथ्यू फिल्म में 'गर्म हवा' और थियेटर में 'बकरी' से आगे बढ़ने का कोई संकेत नहीं देते। ओम शिवपुरी ने तो खैर रंगमंच पूरी तरह से छोड़ दिया है, लेकिन बृजमोहन शाह और रामगोपाल बजाज भी खास कुछ नहीं कर रहें है। मोहन महर्षि ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रथम वर्ष के अपने छात्रों के साथ 'इडिपस रैक्स' में जिस सम्भावना का समर्थ संकेत दिया था उसके विकास का कोई भी ठोस-परिणाम इस बीच सामने नहीं आया।[1]

विजय मेहता के 'हम्मबदन' और 'शकुन्तला' सौन्दर्य-बोध एवं प्रदर्शन- मूल्यों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, परन्तु स्वयं उन्हीं की पूर्ववर्त्ती उपलब्धियों को आगे नहीं बढ़ाते । जब्बार पटेल, घासीराम कोतवाल तथा ' तीन पैशाचा खेला' और सतीश आलेकर 'महानिर्वाण' पर ही अटके । इन दोनों के नये प्रदर्शन 'पडधम' तथा शनिवार-रविवार ने निराश किया। कुमार सोहानी का 'अर्थ मानुस जगन है, महाराष्ट्र में पुरस्कृत एवं प्रशंसित होने के बावजूद बहुत सरलीकृत और फिल्मी-

---

1. दूर संचार नई दिशाएँ सी0एल0 गर्ग, पृ0 45

सी नाट्यकृति है। वरिष्ठ निदेशकों में अकेले ब0व0 कारंत ही हैं जिन्होंने 'स्कन्दगुप्त' से अपनी चार-पाँच साल की एकरसता को तोड़ने की सार्थक कोशिश करके अपनी रचनात्मकता का परिचय दिया है।

मलयालय में कवलम् नारायण पणिक्कर और मणिपुरी में रतन थियम तथा कन्हाईलाल का नाम और काम राष्ट्रीय स्तर पर जाना और माना है। पणिक्कार तथा थिमम की कल्पनाशीलता, और रंग-तकनीक भी पिछले कुछ समय से अति-परिचित सी हो जाने की कारण अपना असर खोने लगी थी, परन्तु पणिक्कर ने 'कर्ण भारम' और रतन ने 'चक्रसमूह' से नई ताजगी और प्रतिभा का प्रमाण देकर फिर से नई उम्मीद बँधाई है, जबकि मलयालम में ही जी0 शंकर पिल्लई के 'कथा बीजम', एस0 रामानुजम के 'करूधा देविआथेथेडी, बन्सी कौल के 'अंदनम अदाकोदनम', नरेन्द्र प्रसाद के 'सौपर्णिका' तथा वेल्लियाजचा' केवल मनोरंजक भर ही है। इस प्रकार मणिपुरी में वाई0 राजेन्द्र सिंह लिखित- निर्देशित 'नौग्दा अपाम चौएबा' तथा एच0 कन्हाई लाल लिखित निदेर्शित 'लैगी माचा सिघा', 'इम्फाल' 73, और 'मृत्यु श्योर' भी सिर्फ दिलचस्प ही रहें। कन्नड़ में जी0 श्री निवास द्वारा रूपांतरिक निर्देशित ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त उपन्यास 'चिकवीर राजेन्द्र' बहुत कमजोर प्रदर्शन हैं। इसके मुकाबले प्रसन्ना के 'डाँग्या मुचीना दिनाग्लू', 'मदर' और 'गैलीलियो' में काफी ताजगी हैं। कलकत्ता में बादल सरकार और प्रवीर गुहा के मंच मुक्त प्रदर्शनों के अतिरिक्त 'चेतना' के अरुण मुखर्जी निर्देशित 'जगन्नाथ', बगिया बांछाराम की,

'रोशन' तथा 'मारीच सम्वाद' और नान्दीकार के रूद्रप्रसाद सेनगुप्त निर्देशित 'सिक्स कैरेक्टर्स इन सर्च ऑफ ऐन आथर' 'मानवीय विचारक मंडली' (रशोमन) और 'एण्टीगन'के अलावा साँवली मित्रा अभिनीत निर्देशित काली प्रसाद घोष के एक पात्रीय नाटक 'नाथवत अनाथवती' पुराने होने के बावजूद जीवित और चर्चित प्रदर्शन कहे जा सकते हैं।

पहले फिल्म और अब टी0वी0 धारावाहिकों ने रंगमंच पर सीधा असर डाला है। वरिष्ठ, प्रतिष्ठित और प्रतिभावान् कलाकार भरपूर नाम और दाम देने वाले इन 'बडे माध्यमों' की ओर भाग रहें हैं। इसमें गलत और सही का सवाल नहीं है, लेकिन यह एक कटु सच्चाई और वास्तविक स्थति है - जिसे नकारा नहीं जा सकता। दो-एक अपवादों को छोड़ दें तो पिछले लगभग आठ वर्षों में कोई नया बड़ा नाटक, प्रदर्शन और अभिनेता उभर कर सामने नहीं आया। पुराने नाट्य-दल और निर्देशक या तो चुप हैं या फिर सिर्फ अपने आप को दोहरा-तिहरा रहे हैं। नये दलों और कर्मियों में उत्साह तो है, लेकिन आस्था, समझ और कल्पनाशीलता की कमी है।[1] शौकिया अथवा अर्द्धव्यावसायिक नाट्य दलों की बात तो जाने दीजिए। सरकारी या अन्य संस्थानों की भारी, पूरी आर्थिक सहायता पाने वाले तथा कथित व्यावसायिक रंगमंडलों की हालत भी खासी है। बड़े से बड़े आयोजन का महत्वाकांक्षी समारोहों में भी प्राय: (प्राय:) रस्म अदायगी भर होकर रह जाते हैं। वैविध्यपूर्ण रंग प्रयोगों के बावजूद किसी आधुनिक भारतीय प्रदर्शन शैली या अभिनय पद्वति

---

1. नाटक चित्रपट और समाज पदारानी, पृ0 102

का विकास नहीं हो सका है। कभी हम स्तालिनोवस्की की ओर भागते हैं तो कभी ब्रेख्त, ग्रोतोवस्की, शेखनर या पीटर ब्रुक की ओर। हममें आत्म गौरव और आत्म-विश्वास की सख्त कमी है; फिर भी इन सारे दबावों और तनाओं के बावजूद यह सच है कि वरिष्ठ के मुकाबले आज नई पीढ़ी अपेक्षाकृत ज्यादा और बेहतर काम कर रही हैं।[1] उपलब्धि की सम्भावना के बीज उसमें हैं। दिल्ली में मन्नू भण्डारी के 'महाभोज', रंजीत कपूर के 'बेगम का तकिया' और 'मुख्य मंत्री' के बाद 'रूका हुआ फैसला', 'एक घोड़ा छह सवाल' तथा 'नेक्रोसोव', एम0 के0 रैना के 'मैं ही हूँ कालपुरुष, ओपन हाइमर', 'एण्टीगनी', 'कबिरा खड़ा बाजार में', और 'माधवी', त्रिपुरारी शर्मा का 'काठ की गाड़ी', 'फैजल अल्काजी का 'रक्त पुष्प', विनोद शर्मा का 'टुट्टू', देवेन्द्रराज अंकुल के 'महाभोज', 'सत्य हरिशचन्द्र' और 'अनारो', राजेन्द्र गुप्त के 'जायज हत्यारे', 'कैम्प' और 'पाप और प्रकाश' सुभाष उद्गाथा, 'एक इंस्पेक्टर से मुलाकात', वीरेन्द्र सक्सेना के 'ये आदमी ये चूहे', अमिताभ श्रीवास्तव के 'खूब मिलाई जोड़ी', भानु भारती के 'चन्द्रमा सिंह उर्फ चमकू' रमेश मनचन्दा के 'कोमल गांधार', प्रसन्ना के 'फूजीयामा' तथा इरपिन्दर पुरी के 'एक रौशन आवाज' को उल्लेखनीय प्रदर्शन माना जा सकता है। बम्बई में 'अंक' (निदेश ठाकुर) के 'हाय मेरा दिल', 'गुले गुलजार', 'बीबियों का मदरसा', 'कमला', 'खमोश' अदालत जारी है', 'अपना अपना', 'सपने' और 'अंजी', 'एकजुट', नादिरा बब्बर की चन्दनपुर की चम्पाबाई', 'संख्याछाया', 'मैं जिन्दा हूँ, मैं सोचता हूँ, 'राग दरबारी', 'इप्टा' के 'सुफेद कुंडली', 'बकरी', 'होरी', 'एक और द्रोणाचार्य', 'शतरंज के मोहरे' कलात्मक

---

1. रंगमंच बलवन्त गार्गी, पृ0 187

उत्कृष्टता के कारण न सही,फिल्मी ग्लैमर के कारण ही सही लोकप्रिय तो हैं ही। 'आविष्कार द्वारा जयदेव हटगड़ी के निर्देशन मे प्रस्तुत मराठी में 'चागुष (यर्मा) 'मीडिया' और 'शुतुरमुर्ग' तथा हिन्दी में 'पोस्टर' 'अबूहसन' तथा 'आधी रात के बाद' जैसे नाटक कलात्मक और व्यावसायिकता का अच्छा सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं।पिछले कुछ वर्षों में लखनऊ , कानपुर, बनारस, इलाहाबाद, नैनीताल, देहरादून, आगरा, पटना, राँची, आजमगढ़, जयपुर, बीकानेर, और चण्डीगढ़ जैसे रंग-नगरों में भी कई चर्चित एवं स्तरीय प्रस्तुतीकरण हुए हैं, हो रहें है। इस बीच अपनी जमीन और जड़ों की तलाश में हम अपनी शास्त्रीय अथवा लोक रंग-परम्पराओं की ओर भी मुड़ें हैं। इस दिशा में संगीत नाटक अकादमी की ओर से युवा रंगकर्मियों को अपनी पारम्परिक रंगशैलियों में नए प्रयोग करने की व्यापक योजना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें है।[1]

इस योजना के अन्तर्गत प्रस्तुत अनेक प्रदर्शनों में से रतन थियम के मणिपुरी प्रदर्शन 'चक्रव्यूह', उर्मिल कुमार थपलियाल और सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ के हिन्दी नाटक 'हरिचन्नर की लड़ाई' तथा 'रामलीला', भानु-भारती के मेवाड़ी प्रस्तुतीकरण 'पशु गायत्री', वंशी कौल के मालवी प्रदर्शन 'खेल गुरू का', भरत दवे निर्देशित गुजराती 'मुक्तधारा' , बी0 जयश्री निर्देशित कन्नड़ नाटक 'लक्षपति राजा ने कथे' तथा नारायण पति लिखित निर्देशित उड़िया नाटक 'मुक्तिपथ' को पारम्परिक रंग-शैलियों के आधुनिक प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृतियाँ कहा जा सकता

---

1. तीसरा पक्ष- लक्ष्मी कान्त वर्मा , पृ0 102

है। रंगमंच में बोलियों के रचनात्मक उपयोग की दृष्टि से म0प्र0 रंगमंडल (भोपाल) द्वारा ब0व0 कारंत के निर्देशन में प्रस्तुत 'मालविकाग्निमित्र', फिट्ज बेनेविट्ज निर्देशित 'इंसाफ का घेरा', तथा अलखनंदन निर्देशित 'गोडाला देखन हन (वेटिग फार गोदो) बुन्देली में और 'कलासंगम' (पटना) द्वारा सतीश आनन्द निर्देशित 'अमली' तथा 'माटी गाड़ी' बिहार की भोजपुरी-मैथिली बोली/भाषा तथा विदेसिया शैली में पर्याप्त सफलता पायी है।

दिल्ली के 'मंजर -थियेटर' और साहित्य-परिषद् के समारोहों और अन्य सरकारी - गैर - सरकारी आर्थिक सहायता प्राप्त प्रदर्शनों ने प्रदर्शन मूल्यों की दृष्टि से समकालीन रंगमंच को विस्तार मिला है और रंगमंच की लोकप्रियता भी बढ़ी हैं इस लोकप्रियता को बढ़ाने में फिल्मों या दूरदर्शन के धारावाहिकों के लोकप्रिय कलाकारों के नाटकों का विशेष योगदान रहा है।

इस तकनीक-समृद्ध रंगद्वारी और अभिजात्य सौन्दर्य-बोध सम्पन्न रंगमंच के समान्तर इस बीच एक कम खर्च सादे, लेकिन प्रांसगिक और प्रभावशाली रंगमंच का विकास भी हमारे यहाँ हुआ हैं। इसे मंचमुक्त अथवा नुक्कड़ नाटक के नाम से जाना जाता है। यह तय करना शायद कठिन है कि इसकी जड़ों में हमारे लोकमंच की प्रेरणा अधिक है या ग्रोतोवस्की के 'पुअर थियेटर' अथवा बादल सरकार को 'तीसरे रंगमंच' की। यह आम आदमी द्वारा आम आदमी के लिए आम

आदमी का आम रंगमंच है:, जो भ्रष्टाचार के छिपे हुए सूत्रधारों को बेनकाब कर जनता में जागरूकता लाने और विरोध., विद्रोह की प्ररेणा जगाने के लिए प्रतिबद्ध है। कथ्य और शिल्प, दोनों धरातलों पर इसकी भी अपनी शक्ति और सीमाएँ हैं और एक हद के बाद इस क्षेत्र में भी ठहराव नहीं तो कमोवेश शिथिलता के संकेत तो मिलने ही लगे है।

नए मौलिक अथवा अनूदित। रूपांतरित अच्छे नाट्य लेखों की कमी को पूरा करने के लिए कथा-साहित्य ही नहीं, काव्य-क्षेत्र से भी बहुत कुछ रंगमंच पर लाया जा रहा है। यह काम नाट्य रूपान्तरों के माध्यम से भी हो रहा है और कहानी या कथा-मंच के माध्यम से भी लेकिन 'गोदान', 'बेगम का तकिया', 'मुख्यमंत्री', 'महाभोज', और किसी हद तक 'राग दरबारी' या 'कभी न छोड़ें खेतें', को छोड़कर कोई नया उल्लेखनीय उपन्यास-प्रदर्शन भी इस बीच नहीं हुआ है।

कई निर्देशकों ने नाट्य एवं रंगमंच दोनों पर अपनी लेखनी चलायी है। महिला निर्देशिका विनीता पंकज एवं गिरीश रस्तोगी का कार्य अत्यन्त सराहनीय है। यदि रंगकर्मियों को सहयोग नाटक कारों के साथ ठीक-ठीक चलता रहा तो साहित्य के इस सबसे अधिक जनतांत्रिक माध्यम से बड़ी क्षमता विकसित हो सकेंगी। पर यह होगा तभी सम्भव, जब नाटक सृष्टि पुस्तक के पृष्ठों से बाहर सामान्य जनता के बीच रंगमंच पर होगी।[1]

---

1. नाट्य समीक्षा विशेषांक पृ0- 35, हिन्दी नाटक और रंगमंच का विकास (निबन्ध)

डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी

हमारे यहाँ व्यावसायिक रंगमंच नगण्य और अव्यावसायिक अनिश्चित हैं। सांस्कृतिक या शिक्षा-संस्थाएं यदा-कदा ऐसे आयोजन कर लेती हैं, परन्तु ऐसे विरल अवसर अभिनय कला को विकास के लिए अवकाश नहीं दे सकते। रंगमंच अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण शिल्प भी हैं। अन्य देशों में मंच यवनिका, नेपथ्य पट-परिवर्तन, अलोक आदि का विज्ञान प्राचीन से आधुनिकतम होते-होते हुए बहुत से क्रम पार कर चुका है। नाट्यशास्त्र तथा रंगमंच साहित्य का निर्माण और प्रकाश भी रंगमंच के विकास को स्वस्थ्य दिशा देता है। दर्शक की रूचि का परिष्करण ही रंगमंच का लक्ष्य रहता है।[1]

जीवन से भी कठिन पर अधिक प्रभावशालिनी जीवन की अनुकृति है, यह सत्य है कि जितना रंगमंच पर परीक्षित होता होता है, उतना अन्य क्षेत्र में नहीं। नाटक की तात्कालिक कसौटी रंगमंच है और रंगमंच का अकालक्षम् परीक्षक दर्शक समाज। रंगमंच या तो तत्क्षण परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है या अनुत्तीर्ण, अतः उस प्रथम क्षण की तैयारी ही सारे क्रिया-कलाप और सृजन का केन्द्र रहती है। अभिनय-काव्य का वास्तविक उपभोग तो समाज की रूचि को अधिक परिष्कृत बनाकर उसे प्रगति पथ के पथ पर आगे बढ़ाना ही है।[2]

---

1. हिन्दी रंग मंच, 'निबन्ध', पृ0 -12-13

महादेवी वर्मा।

2. हिन्दी रंग मंच, 'निबन्ध', पृ0- 12-13

महादेवी वर्मा।

यह सच है कि पिछले लगभग बीस पचीस वर्षों के बहुत थोड़े से समय में हमारे आधुनिक भारतीय रंगमंच ने उत्साहवर्धक विकास किया है। हमारी उपलब्धियाँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं रही है, लेकिन इन्कार इस बात से नहीं किया जा सकता कि कुछ समय से यह विकास प्रक्रिया न केवल शिथिल हुई है, बल्कि किसी हद तक उसमें ठहराव सा भी आ गया है। इसके लिए नाटककार पार्श्वकर्मी और अभिनेता की उपेक्षा तथा हिन्दी रंग-प्रेक्षक की संस्कार-हीनता के साथ-साथ रंगकर्मियों के झूठे अहं एवं संकीर्ण स्वार्थो की अर्थहीन टकराहट एवं राजनीति तथा सम्पादकों, पत्रकारों, समीक्षकों की गुटबाजी अलावा। फिल्म टी0वी0 के मुकाबले रंगमंच की गौण ही नहीं, नगण्य तक मानने की कुंठित ,। दूषित मनोवृत्ति भी जिम्मेदार हैं।[1]

रंगमंच पर चारों ओर से घिरते आते इस घने काले अंधेरे के बावजूद जटिल अनुभव के इस जीवन्त एवं सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति माध्यम के भविष्य को लेकर निराश होने की कतई जरूरत नहीं है। विज्ञान, उद्योग और तकनीक की दृष्टि से विश्व के सर्वाधिक विकसित देशों का इतिहास इस बात का गवाह है कि सब प्रकार के चतुर्रफा आक्रमणों के चलते भी इस गहन-गम्भीर त्रि-आयामी-कला-माध्यम की लोकप्रियता एव प्रतिष्ठा समय के साथ घटने के बजाए बढ़ी हैं। देर-सबेर हमारे यहाँ भी यही होने कहा है। रंगकर्म के क्षेत्र में देश व्यापी सरकारी,

---

1. आधुनिक रंग मंच: विकास और सम्भावना (निबन्ध) पृ0-42-48 (नाट्य समीक्षा विशेषांक प्रकाशक- हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद)

डॉ0 जयदेव तनेजा

गैर सरकारी विविध पुरस्कारों, सम्मानों, अनुदानों समारोहों और प्रतियोगिताओं इत्यादि का सीधा असर हमारे रंगकर्म पर पड़ेगा ही। म0प्र0 रंगमंडल (भोपाल), राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, रंगमंडल (दिल्ली) और दिल्ली की नाट्य संस्था 'सम्भव' को यदि हम उदाहरण के तौर पर देख लें तो बेझिझक यह नतीजा निकाला जा सकता है कि संस्थान चाहे सरकारी हो, चाहे गैर सरकारी, यदि सबमें इच्छा, इरादा और साहस, लगन है तो कुछ भी असम्भव नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि एक व्यापक रंग सक्रियता आई है जिसने हिन्दी क्षेत्र में फिल्म-प्रेमी दर्शकों को एक नया रंग'-संस्कार अवश्य दिया। स्कूलों कालेजों, विश्वविद्यालयों और सामाजिक स्तर पर भी नाट्य प्रदर्शनों ने एक उल्लेखनीय प्रतिष्ठा अर्जित की है। नाट्य-कर्म शालाओं के बहु स्तरीय आयोजनों बहुभावी राष्ट्रीय नाटयोत्सवों एवं बाल रंगमंच के विस्तार ने एक सर्जनात्मक भूमिका निभाई हैं। निरन्तर बदलते हुए आज समाज के बहुविध दबावों, तनाओं और रचनात्मक चुनौतियों के भीतर से हमारा समकालीन रंगकर्म एक भारतीय आधुनिक, प्रसंगिक, सार्थक और मौलिक रंगशैली की तलाश कर रहा है। यह एक जटिल-कठिन और लम्बी यात्रा है। अभी हमारी दृष्टि उपलब्धियों के बजाय दिशा और सम्भावना पर होनी चाहिए। हमें अपनी मौलिकता, प्रतिभा, सर्जनात्मकता और कल्पनाशीलता पर अटूट विश्वास होना चाहिए। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक बार कहा था, "जो कुछ हमें दिखाई देता है,

उसका उतना महत्त्व नहीं है जितना हमारे देख पाने की व्याकुलता का है, और निश्चय ही हमारी यह व्याकुलता, छटपटाहट और तलाश अँधेरे की छाती चीर कर सुबह की रोशनी से हमारा साक्षात्कार कराएगी।"

अध्याय – तीन

रेडियो नाटक – परिचय

अध्याय – तीन

रेडियो नाटक : परिभाषा

भारतीय विद्वानों का दृष्टिकोण :

नाटक क्या है ?

भारतीय विद्वानों के मतानुसार ''भरत'' के नाट्यशास्त्र में ब्रह्मा नाटक का प्रयोजन बताते हुए कहते हैं कि इसमें भावों तथा वृत्त का अनुकरण तथा विविध प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं ।[1] इसी प्रकार ''दशरूपक'' के रचयिता ''धनञ्जय'' ने जीवन की विभिन्न अवस्थाओं और उनके नाना रूपों की अनुकृति द्वारा तथा समारोप द्वारा रस की अनुभूति को नाटक माना है। अत: जब जन–क्रियाओं का अनुकरण अनेक भावों और अवस्थाओं द्वारा परिपूर्ण होता है तो वह 'नाटक' कहलाता है ।

आधुनिक भारतीय नाटककार ''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'' के मतानुसार ''दृश्य, काव्य का वह गुण है जो कवि की वाणी को उसके हृदयगत आशय को हाव–भाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे ।'' अर्थात् नाटक में घटनाओं का वर्णन नहीं रहता वरन् वे घटित होती दिखाई जाती है । वैसे नाटक भी क्या हैं ? मानव के बाह्य तथा आन्तरिक संघर्ष की कहानी''। डा0 दुर्गा दीक्षित के अनुसार '' जिस रचना में संवादों के माध्यम से चरित्र की मानसिकता कार्य–व्यापारों में प्रत्यक्षीकृत हो जाती है, उसे नाटक का अभिधान दिया जाता है।''

पाश्चात्य विद्वानों का दृष्टिकोण :

''निकॉल'', महोदय के अनुसार ''नाटक जीवन की अभिव्यंजक कला है जिसके प्रदर्शन द्वारा अभिनेता इस अभिव्यंजना की उस रूप में व्याख्या करते हैं कि उनके अभिनीति

---

1. नाट्य शास्त्र – भरत मुनि, पृ0 16

कार्य–व्यापारों को देखने से तथा संवाद श्रवण से एकत्रित प्रेक्षकों में अभिरूचि उत्पन्न हो सके ।"

अरस्तू "त्रासदी" की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "त्रासदी किसी गंभीर, स्वतः पूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न–भिन्न भागों में भिन्न–भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है, जो समाख्यान के रूप में न होकर कार्य–व्यापार रूप में होती है और जिसमें करूणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।"

"ड्राइडन" भी नाटक को मानव प्रकृति के सार्थक एवं जीवन्त बिम्बों में प्रस्तुत उसकी वासनाओं, हास्य और जीवन में आरोह–अवरोह की अभिव्यक्ति मानते हैं और फलतः इसे मानव जाति के आनन्द तथा ज्ञान का विषय स्वीकारते हैं ।

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार कुछ निश्चित धारणाएँ बनती हैं–

(क) नाटक में वृत्त, भावों तथा अवस्थाओं का अनुकरण होता है।

(ख) अनुकरण की प्रक्रिया पात्रों द्वारा पूर्ण की जाती है।

(ग) नाटक को बोधगम्य बनाने हेतु भाषा का प्रयोग होता है।

(घ) घटनाओं का घटित होते दिखाने के लिए, अर्थात् प्रस्तुतीकरण के लिए अभिनेता एक माध्यम होता है ।

(ङ) नाटक में निश्चित उद्देश्य होता है ।

(च) नाट्यगत कार्य–व्यापारों का प्रत्क्षीकरण सहृदय अथवा सामाजिक (दर्शक अथवा श्रोता) के लिए किया जाता है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पात्रों के कार्य–व्यापारों और संवादों द्वारा जीवन की विभिन्न स्थितियों के सहृदय–सापेक्ष प्रत्यक्षीकरण के निमित्त अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुतीकरण की क्रिया ही नाटक है ।

रेडियो–नाटक की परिभाषा :

उपर्युक्त तत्वों से युक्त किसी रचना के प्रस्तुतीकरण (प्रसारण) का माध्यम जब 'रेडियो' होता है तो उसे रेडियो नाटक कहा जाता है ; क्योंकि "नाटक का आस्वादन शिल्प कीविविधिता के बावजूद भी अन्ततोगत्वा नाट्य तत्व पर ही आधृत है। रेडियो के पात्र श्रव्य माध्यम होने के कारण उसमें ध्वनि (उच्चरित शब्द अथवा भाषा ध्वनि–प्रभाव संगीत) ही प्रमुख होती है और सहृदय, दर्शक न होकर श्रोता होता है।[1] अतः पात्रों के कार्य–व्यापारों और ध्वनि द्वारा जीवन की विभिन्न स्थितियों के श्रोता सापेक्ष मानसी प्रत्यक्षीकरण के निमित्त रेडियो पर प्रस्तुतीकरण की क्रिया को रेडियो नाटक मानना चाहिए । अतः नाटक के एकरूप रेडियो–नाटक की स्वीकृत पर कोई भी आक्षेप मात्र दुराग्रह ही होगा ।

रेडियो–नाटक या ध्वनि नाटक :

भिन्न–भिन्न विद्वानों ने रेडियो–नाटक को भिन्न–भिन्न नाम दिये, डॉ0 राम कुमार वर्मा इसे "ध्वनि नाटक" कहा (आजकल अगस्त 1951), प्रो0 रामचरण महेन्द्र इसे "ध्वनि एकांकी" कहते हैं ; (कल्पना दिसम्बर 1952) अधिक लोगों ने दोनों नामों के व्यवहार किये हैं, कुछ लोग इसे रेडियो–नाटक भी कहते हैं।

---

1. रेडियो नाटक : अघतन अध्ययन, पृ0 63, जयभगवान गुप्ता ।

ध्वनि–नाटक में प्रयुक्त "ध्वनि" शब्द अनेकार्थी है। संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर में इसके चार अर्थ दिये हुए हैं, जो इस प्रकार हैं :–

1) वह विषय जिसका ग्रहण श्रवणेन्द्रिय से हो । शब्द, नाद, आवाज़।

2) शब्द का स्फोट। आवाज की गूंज। लय।

3) वह काव्य जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक विशेषता वाला हो ।

4) आशय । गूढ़ अर्थ । मतलब ।

इसलिए "ध्वनि नाटक' से" रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटक का बोध नहीं होता । यह सत्य है कि रेडियो से प्रसारित किये जाने वाले नाटकों में शब्द की आवाज़ अथवा ध्वनि की प्रधानता होती है, पर रेडियो नाटक के सभी उपकरण इसके अन्तर्गत नहीं आ पाते हैं । संगीत जो रेडियो नाटक का प्रधान साधन है, उसकी व्यंजना ध्वनि से होती है। सच कहा जाये ध्वनि या आवाज़ (साउंड इफेक्ट) रेडियो नाटक का केवल एक उपकरण है। अतः रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटक को ध्वनि कहना उचित नहीं जंचता ।

"ध्वनि एकांकी" नाम तो रेडियो नाटकों के ही सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न कर देता है, यह भ्रम बहुत लोगों में है । लोग समझते हैं कि रेडियो से प्रसारित किये जाने वाले नाटक एकांकी नाटकों की ही श्रेणी के होते हैं । स्वंय डा0 राम कुमार वर्मा की इस पंक्ति से यही ध्वनि निकलती है – "रंगमंच पर अभिनीति होने वाले एकांकी नाटकों में और रेडियो द्वारा प्रस्तुत एकांकी नाटकों में बड़ा भेद है (आजकल अगस्त 1951) – पर रेडियो नाटकों में अंक का प्रश्न ही नहीं उठता । उसमें आवश्यकतानुसार छोटे–बड़े अनेक दृश्य होते हैं

यों कभी-कभी एक ही दृश्य में समूचा नाटक समाप्त हो जाता है। जैसे स्वयं 'वर्मा जी' का "आंखों का आकाश" है, एकांकी नाटक के लिए यह कहना सत्य है कि कार्य-संकलन और स्थान-संकलन की मर्यादा से उसमें एक सम्पूर्ण कार्य एक ही अवधि में एक ही स्थान पर होना आवश्यक है ।-----------यही एकांकीकार का कौशल है कि बिना समय का विस्तार बढ़ाये और बिना स्थानों को बदले वह कौतहूल का संचय कर मनोविज्ञान में क्रान्ति उपस्थित कर दे ; पर रेडियो-नाटक के सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है। यों कुछ रेडियो-नाटक में 'संकलन त्रय' की रक्षा भले ही की गई हो, पर रेडियो-नाटक का कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं है । तात्पर्य यह कि रेडियो के लिए लिखित नाटक को ध्वनि एकांकी भी नहीं कहा जा सकता ।

रेडियो से प्रसारित किये जाने वाले नाटकों के लिए एक ही नाम उचित है-रेडियो नाटक । "रेडियो" शब्द हिन्दी के लिए अपना शब्द हो चुका है, सबके लिए यह बोधगम्य भी है । इसके अन्तर्गत रेडियो के लिए लिखित सब प्रकार के नाटक आ जाते हैं।[1] अतः इसी नाम (से) का व्यवहार किया जाना चाहिए ।

रंगमंच नाटक और रेडियो नाटक :

रंगमंच नाटक दृश्य और श्रृव्य दोनों हैं, उसके प्रभाव को हम आंख और कान दोनों द्वारा ग्रहण करते हैं। दृश्य होने के कारण उसकी अभिव्यक्ति के अनेक साधन हैं। रंगमंच नाटक में वातावरण एवं परिस्थितियों को सूचित करने वाले दृश्यों का उल्लेख करना

----

1. रेडियो-नाट्य शिल्प लेखक श्री सिद्ध नाथ कुमार पृ0 43

पड़ता है । रंगमंच पर काम में आने वाली वस्तुओं का भी निर्देश रहता है। पात्रों की रूपरेखा, अवस्था, शारीरिक गठन, वस्त्र-विन्यास, अस्त्र--शस्त्र, अलंकार आदि द्वारा उनके देश एवं व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। पात्रों के घूमने--फिरने, उठने--बैठने आदि कार्य एवं भाव--भंगिमा, मुद्रा आदि भी घटनाओं एवं भावनाओं को प्रकट करने का बहुत बड़ा साधन है। फिल्मों में यह साधन बड़े ही प्रभावशाली होते हैं ।[1]

रेडियो--नाटकों में इन सभी साधनों का अभाव है। यहाँ इन सबकी पूर्ति श्रव्य--साधनों से ही करनी पड़ती है । इनके अतिरिक्त रंगमंच तथा सिनेमा के बहुत से नाटकों की शान्ति में व्यंजना होती है। इसका अनुभव हमें उन फिल्मों को देखते समय हमेशा ही होता है जिनमें बिना किसी कथोप-कथन के कितने चलचित्र आंखों के सामने निकल जाते हैं । घटनाओं की गति एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति वहाँ केवल दृश्यों, पात्रों की मुद्राओं तथा पृष्ठभूमि संगीत के द्वारा ही स्पष्ट हो जाती है । रेडियो--नाटक के लिए यह असम्भव है, क्योंकि दृश्य साधन है ही नहीं ।

रंगमंच नाटकों में एक ही दृश्य में रंगमंच पर कई पात्र आ सकते हैं पर दर्शकों को उन्हें पहचानने में कोई कठिनाई नहीं होगी। दर्शक यह भी हमेशा देखते और समझते रहते हैं कि कौन पात्र कब रंगमंच से बाहर गया और कब रंगमंच पर लौटा । इन क्रियाओं को शब्दों में व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं होती। रेडियो--नाटक में यदि इन बातों पर ध्यान न दिया जाय तो श्रोताओं के लिए उन्हें समझना ही असंभव हो जाये।

---

1. रेडियो नाट्य शिल्प -- लेखक सिद्ध नाथ कुमार पृ0 23--45.

एक और दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा कि रेडियो--नाटक की कला कितनी कठिन है । लोग रंगमंच के नाटक देखने अपनी इच्छा से जाते हैं, पैसे खर्च करते हैं और तब नाटक देखने बैठते हैं; चूंकि सब लोग अपने पैसों का पूरा उपयोग करना चाहते हैं, इसलिए वे शान्त होकर नाटक देखने का प्रयत्न करते हैं । बीच में कहीं कोई शोरगुल नहीं होने पाता । तात्पर्य यह कि यदि नाटक में कुछ नीरसता रही तो भी दर्शक उसे देखते रहते हैं लेकिन रेडियो--नाटक के श्रोताओं के लिए पैसा कोई बंधन नहीं है;, उन्हें नाटक सुनने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता, पैसा नहीं खर्च करना पड़ता, इसलिए नीरसता का थोड़ा सा आभास मिलने पर भी वे रेडियो सेट बन्द कर देंगे, अथवा मीटर बदलकर दूसरा कुछ सुनने लगेंगे, साथ ही श्रोताओं की आपस की बातचीत बच्चों के शोर--गुल, किसी के आने--जाने की आवाज़, किवाड़ की खड़खड़ाहट जैसी कितनी ही चीज़ें हैं जो बीच--बीच में श्रोताओं का ध्यान भंग किया करती हैं । इसलिए रेडियो नाटककार का उत्तरदायित्व बहुत कठिन है उसे एक क्षण के लिए नीरस नहीं होना चाहिए और उनके विघ्न बाधाओं के बावजूद अपनी कृति को सामान्य श्रोताओं के लिए बोधगम्य बनाना है ।

रेडियो--नाटकों की तुलना में रंगमंच नाटकों को एक और सुविधा प्राप्त है। रंगमंच नाटक समूह के लिए लिखे जाते हैं, रेडियो के नाटक व्यक्ति के लिए। समूह की प्रतिक्रिया व्यक्ति की प्रतिक्रिया से भिन्न होती है। समूह में संवेदन--शक्ति अधिक होती है, वह शीघ्र ही भावावेश में आ सकता है, उत्तेजित हो सकता है। यदि किसी कारण दृश्य को देखकर समूह के कुछ व्यक्तियों की आंखों में आँसू आ जायें तो सम्भव है कि दूसरे व्यक्तियों की आँखें भी भर आयें। अभिनेता एवं दर्शक परस्पर प्रतिक्रिया द्वारा प्रभावित होते हैं, उन्हें अभिनय में अधिक कुशलता बरतने की प्रेरणा मिलती है ।

रेडियो के स्टूडियो में कोई 'दर्शक' नहीं होता है, 'सब अभिनेता' ही होते हैं, जो या तो एक दूसरे को देखते हैं या अपने हाथ में रखी हुई नाटक की प्रति से अपना अंश पढ़ते रहते हैं । बगल के कमरे में शीशे की खिड़की की दूसरी ओर संचालक या प्रस्तुतकर्ता रहता है अवश्य, पर अभिनेता समूह की प्रतिक्रिया से वंचित रह जाते हैं; उन्हें ज्ञात नहीं होता कि वे अपने श्रोताओं को कहां तक प्रभावित कर रहे हैं । रेडियो नाटककार इससे यह अर्थ निकाल सकता है कि जो घटनायें समूह को प्रभावित करती हैं संभव है वे व्यक्ति को प्रभावित न करें । इसलिए उन्हें उसी विषयों और घटनाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिनसे वह व्यक्तिगत श्रोताओं को प्रभावित करने में समर्थ हो सके ।

रगमंच--नाटकों में इतनी सुविधाएं हैं, वहीं उनकी कुछ सीमाएं भी हैं । उनमें दृश्य परिवर्तन एक समस्या है, जिसमें उनमें कम से कम दृश्य रखने का प्रयत्न किया जाता है । उनमें न कोई दृश्य बहुत छोटा हो सकता है और न कोई दृश्य बहुत बड़ा, लेकिन रेडियो नाटक में ऐसा कोई बंधन नहीं है। इनमें तीन पंक्तियों का भी दृश्य हो सकता है और सौ पंक्तियों का भी । फिल्मों में सुविधा और अधिक है, उनमें दृश्य परिवर्तन तो पल--पल होता रहता है। दृश्य परिवर्तन की कठिनाई के कारण रंगमंच नाटक के दृश्यों में दूसरे स्थानों की घटनाओं का विवरण संलाप में देना पड़ता है, पर यदि हम आवश्यक समझे तो रेडियो नाटक में दूसरे स्थानों की घटनाओं को भी प्रत्यक्ष रूप में चित्रित कर सकते हैं।

रंगमंच में दूसरी समस्या पात्रों के वेश--भूषा की है; यदि कोई पात्र पहले दृश्य में राजकीय वस्त्राभूषण पहन कर आता है तो दूसरे दृश्य में हम उसे युद्ध की वेश--भूषा में नहीं उपस्थित कर सकते । उसे इतना अवकाश मिलना चाहिए कि वे अपना परिधान

बदल सके । रेडियो–नाटक में कोई कठिनाई नहीं होती है। रेडियो अभिनेता अपने साधारण कपड़ा पहन कर ही अभिनय करता है । वेशभूषा उसके लिए कोई समस्या नहीं है। वह लगातार कई दृश्यों में बड़ी सरलता से आ सकता है ।

रंगमच नाटक की एक सीमा भी है कि उनमें घटनाओं की गतिशीलता बहुत कम रहती है। ऐसा संभव भी नहीं है क्योंकि वह दृश्य परिवर्तन जल्दी–जल्दी नहीं किया जा सकता है । फिल्मों में तो यह विशेषता सबसे अधिक होती है ।

रंगमंच पर भीड़, घुड़दौड़, हवाई जहाज आदि के दृश्य नहीं दिखलाये जा सकते, पर रेडियो के लिए यह बहुत ही आसान काम है, इस तरह रेडियो–नाटक स्वतन्त्र कला है ।

<u>रेडियो–नाटक के प्रकार :</u>

रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटक अनेक प्रकार के होते हैं, विषयवस्तु के अनुसार तो भेदों की संख्या अगणित हो जायेगी, किन्तु "शिल्प" की दृष्टि से विचार करें तो रेडियो–नाटक के सात भेद हमारे सामने आते हैं – 1. नाटक 2. रूपक 3. रूपांतर 4. फैन्टेंसी 5. मोनोलॉग 6. संगीत रूपक 7. झलकियां ।

रेडियो–नाटक :

रेडियो–नाटक शीर्षक तो बहुत व्यापक है इसके अन्तर्गत रेडियो–नाटक के सभी प्रकार आते हैं। रेडियो नाटक के ये सभी रूप गद्य और पद्य दोनों में होते हैं। कुछ नाटकों में गद्य और पद्य दोनों का सम्मिलित उपयोग किया जाता है ।

रेडियो--नाटककार के लिए विषय का कोई बंधन नहीं है। आकाशवाणी के नाटक विभाग के चीफ प्रोड्यस्यर श्री चिरंजीत के कथनानुसार "शब्द प्रधान होने के कारण रेडियो नाटक पूर्णतया एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा है। इस पर रंगमंचीय नाटक का अंकोवाला गणित लागू नहीं होता, यदि हम अंकों, दृश्यों और दृश्यबंधों को ही दृष्टि में रख कर बात करें तो हम कह सकते हैं कि रेडियो नाटक एकांकी भी होता हे और अनएकांकी भी । यह एक दृश्य का भी हो सकता है और अनेक दृश्यों का भी और रेडियो--नाटक की लम्बाई--चौड़ाई पर कोई बंधन नहीं होता । एक दृश्य भी एक संवाद का हो सकता है और दो सौ संवाद का भी । रेडियो धर्मी सही नाटक स्थान एव काल की अन्वित्तियों के बंधन से भी मुक्त होता है । यदि उसका एक दृश्य मकान के कमरे में अभिनीति हो रहा है तो दूसरा दृश्य सड़क के चौराहे पर, तीसरा दृश्य रेलवे ट्रेन, हवाई जहाज या नदी की लहरों पर अभिनीति हो सकता है । रेडियो--नाटक वर्तमान कक्ष में अतीत और भविष्यत की झलक प्रस्तुत कर सकता है ।"

रेडियो--नाटक की कुछ सीमायें हैं, जिससे होकर उसे गुजरना होता है। इसकी पहली सीमा है कि यह पात्र माइक के भरोसे जीता है, सिर्फ माइक ही इसे व्यक्तित्व और जीवन देता है । दूसरी बड़ी सीमा है कि यह पात्र श्रवण को माध्यम बनाता है। एक श्रोता को बांध्य रखने के लिए इसके पास शब्दों के अलावा और कोई साधन नहीं होता है। तीसरी सीमा यह है कि रेडियो सेट्स से निरन्तर कार्यक्रम चलते हैं, उस बीच नाटक भी आ सकता है, इसलिए इसके श्रोता सिनेमा के दर्शकों की तरह टिकट लेकर एक जगह जमा होकर इसका इंतजार नहीं करते । इसका श्रोता तो पारिवारिक गोरखधन्धों में फंसा हो सकता है।

दूसरी ओर बहुत सी सुविधाएं भी हैं, यह स्थान काल आदि की सीमाओं में जकड़ा नहीं रहता है । एक व्यक्ति एक दृश्य में दिल्ली के चांदनी चौक में टहलता हुआ दिखलाया जा सकता है ; तो दूसरे दृश्य में यह स्वर्ग में धर्मराज से संवाद बोलता हुआ प्रस्तुत किया जा सकता है। रेडियो–नाटक के श्रोताओं को मंचीय नाटक के दर्शकों की तरह रोशनी, पोशाक, सेट्स आदि पर ध्यान बटाना पड़ता है। यानि इसके श्रोता अधिक आत्मीय होते हैं । यह अपने को अधिक प्रभावी बनाने के लिए संगीत आदि का सहारा लेता है। रेडियो नाटक में स्मृति, दृश्य, स्वप्न आदि की प्रस्तुति संभव है, जिसमें यह अपने श्रोताओं को अधिक विशाल मनोभूमि पर रस बोध करा सकता है ।

इन्हीं सीमाओं – सम्भावनाओं के बीच रेडियो नाटक की स्थिति है । इसके लिए विद्वानों ने कुछ आवश्यक शर्ते रखीं हैं –

- रेडियो नाटक के लिए यह अनिवार्य है कि इसे मन पर दृश्यांकित करें। यानी, यह मन को जो कहना चाहता है उसका बोध अवश्य करायें।
- रेडियो नाटक को प्रायः एक इन्द्रिय बोधक होना चाहिए ।
- रेडियो नाटक सार्थक एवं विश्वसनीय होना चाहिए, इसे सरल, संचारी तथा सुहृद बोधगम्य होना चाहिए ।
- रेडियो नाटक के विविध अंगों–उपांगों की चर्चा इस प्रकार कर सकते हैं :–

नामकरण या शीर्षक :

नामकरण या शीर्षक में नाटक के सार संक्षेप होने के साथ–साथ ऐसा आकर्षण

होना चाहिए कि श्रोता सुनकर ही प्रभावित हो जाय । इसके लिए आवश्यक है कि शीर्षक सरल, उच्चारण–योग्य, समझने लायक रोचक नवीन हो ।

विषय :

रेडियो नाटक के बिना आज समय व्यतीत करना बड़ा दुष्कर कार्य हो गया है, इस कारण रेडियो–नाटक के लिए कोई भी विषय चुना जा सकता है। सारी बातें इस पर निर्भर करती हैं कि लेखक विषय को किस रूप में किस उद्देश्य से रखना चाहता है । इसलिए इस बारे में कोई नियत परिभाषा नहीं तैयार की जा सकती है । मुख्य रूप से निम्नांकित विषय लिए जा सकते हैं :–

(1) सामाजिक

(2) ऐतिहासिक

(3) राजनैतिक

(4) स्त्री–पुरूष संबंध (सेक्स)

(5) रोमांचक

(6) हास्य–व्यंग्य ।

विषय तथा कथा–वस्तु का चुनाव प्रत्येक लेखक अपनी रूचि के अनुसार करता है । व्यक्ति का चिन्तन जितना हो सकता है वह सब रेडियो संहिता की सीमा के भीतर रह कर जो भी लिखा जाये उसे नाटक के लिए चुना जा सकता है ।

दृश्यांतर :

रेडियो–नाटक में दृश्यान्तर हेतु अधिक रुकावट नहीं होती इसलिए न अधिक

छोटे और न अधिक बड़े दृश्यांतर होने चाहिए, रेडियो नाटक में निम्नांकित ढंग से दृश्यांतर किया जाता है :-

1) चुप्पी

2) क्रमागत लोप (फेडिग)

3) प्रवक्ता

4) ध्वनि प्रभाव

5) संगीत और

6) प्रतिध्वनि, अनुगूंज (इकोज) ।

दृश्यांतर मूल नाटक के प्रतिकूल ही अधिकतर काम करता है। कम से कम एक दृश्यांतर में 10, 15 सेकेण्ड का समय लगता है। यह श्रोता के मत्थे जाता है, यह अस्वाभाविकता को जन्म देता है ।

पात्र :

रेडियो नाटक के पात्रों का बड़ा महत्व है, कम से कम पात्र रखना चाहिए। दो तीन पात्रों से अधिक पात्र एक साथ उपस्थित न किये जायें तो अच्छा होता है।

पात्र के व्यक्तित्व को शब्दों के द्वारा उभारा जाये वास्तविकता जीवन के अनुरूप बनाने की चेष्टा की जाये । इससे पात्रों के प्रति श्रोताओं में विश्वसनीयता पेदा होती है।

संवाद :

संवाद हेतु सिर्फ चार शब्द याद रखने को हैं – संक्षिप्त, सरल, साफ, सबल । इन चार शब्दों के पालन से संवाद महत्वपूर्ण बन जाता है ।

रेडियो--नाटक में पात्र सामने रहते नहीं, सो संवाद ही उन्हें जीवन्त बना सकता है और लोगों के मन में उसकी तस्वीर उभार सकता है। पात्रों के आने--जाने की सूचना भी संवादों द्वारा ही दी जानी चाहिए, शब्दों से आकृति उभारी जा सकती है। जैसे – कोई पात्र जो पहले से मौजूद है एक आने वाले पात्र के बारे में कहे--लो, यह कौन भीम आ रहा है ? भीम कहने से अगन्तुक का एक नक्शा उभर आता है। इस प्रकार आने--जाने की गतिविधि का विवरण भी संवाद के द्वारा ही उपस्थित किया जाना चाहिए। जैसे – दो व्यक्ति बातें करे । या सदर दरवाजे से तुम नहीं आये । वहां बंधा रहने वाला कुत्ता नहीं भौंका। कुत्ते के डर से दीवाल फांद कर आया --संवाद--घटना और वातावरण के अनुसार रखना अच्छा होता है ।

अक्सर संवेदना के गहन क्षणों में छोटे वाक्य एवं कम शब्दों का प्रयोग हितकर होता है ।

प्रश्नवाचक, आश्चर्यबोधक, फुसफुसाहट, कराह आदि वास्तविक जैसे हों, क्योंकि रेडियो--नाटक में इसकी जरा सी असावधानी घातक होती है। संवादों के बीच में गतिरोध उत्पन्न करने वाली चुप्पी, ध्वनि प्रभाव, संगीत, उपाख्यानों से यथा साध्य बचना चाहिए, क्योंकि रेडियो--नाटक में संवाद का प्रवाह ही उसकी जान है ।

ध्वनि संगीत :

संगीत तथा ध्वनि का प्रयोग रेडियो नाटक में मानसिकता की तैयारी के लिए होनी चाहिए इससे भावनात्मक आवेग उत्पन्न किया जाता है। ध्वनि से चित्रमयता लाने की चेष्टा की जाती है। मुख्य रूप से इनके प्रयोग के उद्देश्य हैं--

1) मानसिकता की तैयारी ।

2) प्रवाह की रक्षा ।

3) चित्रमयता ।

4) वातावरण--निर्माण और

5) उत्सुकता ।

कायिक भेद अक्षरशः रेडियो नाटक को और श्रेष्ठ बना देते हैं। कायागत मुख्य भेद ये हैं :-

1) गंभीर नाटक ।

2) रूपांतर ।

3) प्रहसन ।

4) एकपात्री ।

5) प्रतीक ।

6) क्रम--लेखन और

7) कार्टून ।

<u>रेडियो नाटक :</u>

रेडियो से प्रसारित होने वाले नाटक मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं –

1– सामाजिक 2– ऐतिहासिक ।

इन दो भेदों के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक एवं सेक्स सम्बन्धी अथवा अन्य समस्याओं को रखा जाता है । प्रायः रेडियो–नाटक में समसामयिक समस्या रखी जाती है। रेडियो में

सदैव विवादहीन आक्षेपहीन ही विषय उपयुक्त होते हैं। सामाजिक कुरीतियों, विकृतियों को आधार बना कर सामाजिक नाटक लिखना उपयुक्त होता है ।

ऐतिहासिक नाटक :

ऐतिहासिक नाटक में स्मृति, फ्लैश–बैक आदि दृश्यों में उस काल के अनुरूप ध्वनि और संगीत का प्रयोग किया जाता है । रेडियो में व्यवहृत इतिहास हमेशा वर्तमान का दिशा निर्देशक होना चाहिए, हाँ इतिहास विकृत नहीं होना चाहिए ।

रेडियो–नाटक मात्र ध्वनि आधारित होता है; अतः यह उन महान दृश्यों को भी उपस्थित कर सकता है; जिन्हें मंच पर प्रस्तुत करना कठिन ही नहीं असंभव भी है;[1] यानी व्यावहारिक रूप में हम कह सकते हैं कि रेडियो नाटक अदृश्य सिनेमा है ।

अतिकल्पना (फैंटेसी) :

फैंटेसी अंग्रेजी शब्द है और हिन्दी में इसके लिए भावनाट्य, प्रतीक नाटक तथा अतिकल्पना शब्दों को प्रयुक्त किया जाता है । वास्तव में फैंटेसी एक प्रकार का नाटक ही है, अन्तर मात्र इतना है कि नाटकों में कल्पना गौण होती है तो फैंटेसी में प्रमुख अर्थात् फैंटेसी में कल्पना का उन्मुक्त विचरण होता है ।[2] अतीन्द्रिय, अनूभूति तथा असम्भाव्य घटना का कल्पना लोक में निर्माण और उसका रेडियो के माध्यम से घटित होते दिखाना रेडियो फैंटेसी है ।

---

1. रेडियो लेखन – मधुकर गंगाधर पृ0 43
2. हिन्दी रेडियो नाटक अद्यतन अध्ययन डा0 जयभवान गुप्ता, पृ0 26

सिद्धनाथ कुमार के अनुसार, "यथार्थ जगत में जिन घटनाओं का होना सम्भव नहीं है, उन्हें रेडियो फैंटेसी में घटित होते चित्रित किया जाता है और उनके माध्यम से किसी विचार या मार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति की जाती है।"[1] मानव कल्पना जितनी असीम है उतना ही विस्तृत एवं असीम रेडियो–फैंटेसी का क्षेत्र है ।

"मधुकर गंगाधर" ने "गर्म पहलुओं वाला मकान" में ग्लास बक्सा और फ्लैंट को मनुष्य की बोली बोलते दिखाया है और मानवीय संवेदनाओं को उभारा है।

<u>एकपात्री नाटक</u> (मोनोलॉग) :

इसे स्वोक्ति स्वगत नाट्य तथा एक पात्री नाटक भी कहा जाता है । इसमें मात्र एक पात्र होता है जो आरम्भ से अन्त तक अपनी कहानी कहता हुआ अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति करता है और मानवीय संवेदना को उभारता है । मोनोलॉग में एक पात्र की विभिन्न भाव दशायें आपस में कथोप-कथन करती हैं। कई बार जो परोक्ष होता है, उपस्थित किया जाता है। अनेक बार जड़ पदार्थों को सम्बोधित करके भी वार्तालाप किया जाता है।

"मधुकर गंगाधर" एक सफल मोनोलॉग हेतु निम्नलिखित बातें आवश्यक मानते हैं –

क) कथा में तीव्र प्रवाह ।

ख) अटूट एकतानता ।

ग) संवाद ऐसे हों कि कहानी का परत दर परत उद्‌बोधन हो।

घ) जहाँ तक हो सके, भावगत एकरसता जोड़ी जाए ।

ड.) भाषा में चित्रमयता

विष्णु प्रभाकर का ''सड़क'' ''नहीं नहीं नही'' तथा विमल वर्मा की कहानियाँ ''वीक एण्ड'' और ''डेढ़ इंच ऊपर'' एक पात्री नाटकों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

" झलकी " :

इसे प्रहसन, हास्य नाटक (नाटिका) इन्द्रधनुष, लहर, रंगतरंग, रंगारंग प्रोग्राम, नमकदान आदि शीर्षकों के अन्तर्गत प्रसारित किया जाता है, झलकी का मुख्य उद्देश्य हास्य व्यंग्य द्वारा श्रोता का मनोरंजन करना रहा है और इसकी अवधि प्रायः पांच मिनट से पन्द्रह मिनट की होती है। इन छोटी नाटिकाओं में तात्कालिक प्रभाव के लिए जीवन के हल्के-हल्के पक्षों से घटनाओं का चयन किया जाता है और कल्पना के पुट से उन्हें मनोरंजकता प्रदान की जाती है। झलकी में चुस्त एवं मार्का-संवाद अधिक सफल रहते हैं। इसमें समसामयिक जीवन की विद्रूपताओं, बदलते जीवन मूल्यों, मानवीय सम्बन्धों तथा मध्यम वर्गीय समाज की साधारण दीखने वाली घटनाओं को असाधारण ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। यथा ''कुल्फी मंहगी पड़ी'' डा0 रूप नारायण शर्मा द्वारा लिखित ''बुरे फंसे फ्रिज लेकर'' झलकी आदि।

धारावाहिक रेडियो नाटक :

इसे ''नाटक का क्रम लेखन'' भी कहा जाता है। धारावाहिक रेडियो नाटक के मुख्य तत्व वही हैं जो एक एक रेडियो नाटक के होते हैं। अन्तर मात्र इतना है कि रेडियो-नाटक एक ही प्रस्तुति में समाप्त हो जाते हैं, जबकि धारावाहिक रेडियो-नाटक की प्रस्तुति दो अथवा दो से अधिक खण्डों में समाप्त होती है ।

धारावाहिक रेडियो नाटक को प्रस्तुत करने के मुख्यतः 3 ढंग हैं-

(क) एक ही कथा को एक से अधिक खण्डों में प्रस्तुत किया जाता है या किया जाय; क्योंकि रेडियो पर समय सीमा होने के कारण कई बार लम्बे इतिवृत्त को एक बार प्रस्तुत करना सम्भव नहीं हो पाता । लम्बे मंचीय नाटक, उपन्यास आदि को रेडियो नाटक के रूप में इसी प्रकार प्रसारित किया जाता है; ऐसा करते समय मूल कृति की आत्मा की रक्षा करना नाटककार तथा निर्देशक का मुख्य दायित्व रहता है ।

(ख) ऐसे नाटकों को भी रखा जाता है जिनके चरित्र रूढ़ (स्टाक करैक्टर) होते हैं जिनमें पात्र स्थायी रूप से वही रहते हैं। ये चरित्र नाम से भी रूढ़ होते हैं; किन्तु कार्यों से जीवन्त। ऐसे चरित्र दिन–प्रतिदिन की घटनाओं में जीते हुए नवीन इतिवृत्तों का निर्माण करते हैं ।

(ग) कई बार एक चरित्र के सम्पूर्ण अथवा आंशिक जीवन का क्रमिक विकास एक नाटक में संभव नहीं हो पाता । उसके जीवन विभिन्न काल खण्डों को अनेक नाटकों में प्रस्तुत किया जाता है। ये नाटक एक लेखक द्वारा भी लिखे जाते हैं और लेखकों द्वारा भी । एक ही लेखक में सुसम्बद्धता अधिक बनी रहेगी। चरित्र के क्रमिक विकास, घटनाओं तथा भाषा में बदली हुई परिस्थिति तथा समय के अन्तराल के अनुरूप, स्वाभाविक एवं विश्वसनीय परिवर्तनों के प्रति लेखकों को पूर्ण रूप से जागरूक रहना पड़ेगा ।

मधुकर गंगाधर, राधाकृष्ण प्रसाद एवं सुहैल अजीमाबादी ने मिलकर अलग–अलग शीर्षकों से तीन नाटक "पगडंडी", "रास्ता" और "राजपथ" तैयार किये थे। मधुकर गंगाधर

ने पगडंडी नाटक में पार्थ नाम के एक युवक की कथा ली जो गांव से शहर में कालिज की पढ़ाई के लिए आता है । उसके मन में नागरिक जीवन की संवेदक लकीर खिंचने लगी । एक भावनापूर्ण स्थल पर नाटक समाप्त किया गया । इसी चरित्र को राधाकृष्ण प्रसाद ने अपने नाटक ''रास्ता'' में आधार बनाया । पार्थ पढ़-लिखकर एक दफ्तर में नौकरी करता है, शादी करता है और नये व्यवस्थित जीवन को आरम्भ करता है। पार्थ को लेकर ही सुहैल अजीमाबादी ने 'राजपथ' नाटक लिखा । पार्थ रिटायर्ड हो चुका है, जिन्दगी की सभी मान्यतायें उसके लिए रूढ़ हो चुकी हैं ।

ये तीनों नाटक अपने में स्वतन्त्र होते हुए भी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। पार्थ में जीवन का क्रमिक विकास तीन खण्डों में दिखाया गया है ।

<u>रेडियो कार्टून :</u>

रेडियो कार्टून रेडियो नाटक का आधुनिकतम तथा लघुतम् प्रकार है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग कलकत्ता रेडियो केन्द्र के तत्कालीन केन्द्र निर्देशक श्री दिलीप कुमार सेन गुप्त ने किया। रेडियो कार्टून की निम्न विशेषताएँ हैं--

1) इसकी अवधि डेढ़ दो मिनट से अधिक नहीं होती ।

2) विषय चयन सामयिक होना चाहिए ।

3) एक दो चरित्रों को लेकर कम से कम शब्दों की मदत से एक अप्रत्याशित स्थिति को चित्रित किया जाता है ।

4) व्यंग्य एवं कटाक्ष इसके प्राण हैं ।

अखबारी कार्टून तथा रेडियो कार्टून में उद्देश्य की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता। माध्यम की भिन्नता के कारण अखबारों में कार्य रेखाएं करती हैं। रेडियो पर वही कार्य शब्द, ध्वनि, प्रभाव और संगीत से पूरा किया जाता है ।

काव्य नाटक :

काव्य नाटक वे हैं जिनमें नाटकीयता और कवित्व का ऐसा सामंजस्य हो कि उनमें न तो गद्य नाटक जैसी स्थल क्रिया व्यापार की बहुलता ही हो और न कविता जैसी भावुकता की प्रचुरता । इनमें गद्यात्मक नाटकों की अपेक्षा अधिक भावमयता और कविता से अधिक व्यापार हो । ऐसे काव्य नाटकों के आस्वादन के लिए रेडियो माध्यम सर्वाधिक अनुकूल है। क्योंकि श्रव्यत्व में दृश्यत्ता की सम्भावनाएं अधिक होती हैं तथा माइक्रोफोन का माध्यम स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म को प्रेषित कर सकने में अधिक सशक्त होता है ।

आकाशवाणी से प्रसारित – उदय शंकर भट्ट के विश्वामित्र, एकला चलो रे, सुमित्रानन्दन पन्त के शिल्पी, रजत–शिखर तथा सिद्धनाथ कुमार का संघर्ष तथा धर्मवीर भारती के अन्धायुग और सृष्टि का आखरी आदमी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

संगीत नाटक :

संगीत नाटकों में गीतों की प्रधानता रहती है और गीतों का आधार होता है संगीत। संगीत से तात्पर्य उस ध्वनि से है जो लय या ताल के माध्यम से गेय हो । संगीतधर्मी इस रचना के लिए नाटकीयता उतनी ही अनिवार्य है जितनी नाटकों के लिए । आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री का "पाषाणी" एक सफल संगीत नाटक है ।

पद्य नाटक :

पद्य नाटक में कविता की प्रधानता होती है । मधुकर गंगाधर ने इस रूप को काव्य रूपक कहा है; किन्तु काव्य रूपक की अपेक्षा पद्य नाटक आकाशवाणी पर अधिक प्रचलित हैं । 21.8.89 ई0 को आकाशवाणी दिल्ली से रात साढ़े नौ बजे "श्रृंखला नाटक" के अन्तर्गत प्रसारित डॉ0 विनय का स्वंय साक्षी की उद्घोषणा में इसे पद्य नाटक कहा गया है ।

रेडियो रूपक :

आज रेडियो रूपक का अपना एक विशिष्ट स्वरूप है जिसे अंग्रेजी के रेडियो फीचर के लिए व्यवहृत किया जाता है। जार्ज ग्रियर्सन ने सन् 1926 ई0 में पहली बार डॉक्यूमेन्टरी शब्द का प्रयोग रूपक के साथ किया है; जिसे हिन्दी में आलेख रूपक कहते हैं। हरिश्चन्द्र खन्ना, यथार्थ वस्तु-प्रधान नाट्य कृति तथा सिद्ध कुमार सही अर्थ में फीचर या डाक्यूमेन्टरी कही जाने वाली रचनाओं को आलेख-रूपक या वस्तु-रूपक कहना उचित मानते हैं, तथा अन्यान्य रचनाओं को मात्र रूपक आज रेडियो पर फीचर या डॉक्यूमेन्ट्री फीचर ने एक अलग स्थान बना लिया है जिसका अपना स्वतन्त्र स्वरूप है । श्री विलियमसन का तो यहां तक कहना है कि रेडियो के पास यदि कोई अपनी कला है जिसके स्वरूप विधान का निर्माण केवल रेडियो ने किया है, तो वह रूपक ही है । अतः "आलेख रूपक", वस्तु-रूपक अथवा "वृत्त रूपक" (डाक्यूमेन्ट्री) आदि को रूपक कहना उचित होगा; क्योंकि रूपक शब्द इन सबके लिए अब रूढ़ हो चुका है । रूपक हमारे सामाजिक जीवन को, मानों दर्पण में हमें दिखाता है । इसलिए रेडियो रूपक में निम्न गुण अपेक्षित होते हैं--

1. वास्तविकता अथवा तथ्यपरकता 2. प्रामाणिकता 3. रोचकता 4. नाटकीयता ।

हिन्दी रेडियो नाटक : उन्नीस सौ इक्हत्तर से अब तक

सन् 1971 ई0 से 96 ई0 तक का समय हिन्दी रेडियो नाटक के विकास का वह चरण है, जहां उसकी अस्मिता काल और तकनीक संदर्भों में न केवल पूर्णता प्रतिष्ठित हुई है, बल्कि इस काल की अन्य रचनात्मक विधाओं से होड़ ले रही है । यह काल स्थूल स्तर पर कहें तो अस्वीकार और स्वीकार के मध्य संघर्ष का काल है; जिसमें व्यक्ति स्वंय से भी लड़ रहे हैं और पूरे परिवेश से भी, उसकी चेतना एक ऐसे चक्रव्यूह में फंस कर रह गयी है कि उसके सामने जिजीविषा का प्रश्न उत्तरोत्तर बड़ा होता जा रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर कभी उसे प्रतीत होता है कि उसके कल्याण की योजनाएं वैधानिक सम्मति प्राप्त कर चुकी हैं तो दूसरे ही क्षण व्यवारिक स्तर पर उसे अपने मूल अधिकार भी छिनते दिखाई पड़ते हैं। भ्रष्टाचार के वात्याचक्र में फंसा वह एक साथ विद्रोह की लालसा और दमन के आतंक से आक्रान्त हो उठा है। वह स्वंय को व्यवस्था के ऐसे पुर्जे के रूप में देख रहा है जिस पर नागरिक का ठप्पा तो है किन्तु उसकी कीमत घटिया कच्चे माल की सी होकर रह गयी है । कुल मिलाकर यहां काल प्रवृत्यात्यात्मक स्तर पर बिखराव का काल कहा जा सकता है ।

इस स्थिति और नियति को हिन्दी रेडियो नाटक, नयी कविता, नयी कहानी और रंग नाटक ने बहुत सूक्ष्म स्तर पर उकरने का प्रयास किया है । इस बीच आयात काल एक ऐतिहासिक संदर्भ बनकर उपस्थित हुआ कि साहित्यकार का दासित्वबोध लड़खड़ा उठा।[1]

---

1. रेडियो के लिए कैसे लिखें -- अमर नाथ चंचल.

हिन्दी रेडियो नाटककार ने इस सम्मयावधि में मानव की चेतना को भीतरी रूप में पकड़ते हुए उसे कभी भी नकारात्मक रूप में नहीं देखा। अन्य विधाओं से, यही उसकी अलग पहचान है ।

प्रत्येक काल की परिवेशगत अपेक्षाओं की पूर्ति साहित्यिक स्तर पर विगत मानदण्डों द्वारा वहन नहीं हो सकती हैं। अस्तु रेडियो नाटकों में इस काल में अनुभूति के स्तर पर प्रवृत्यात्मक बिखराव दीखते हुए कथा विहीन स्तर पर नाटक लिखे गये और मुक्त चेतना को अन्यथा सम्प्रेष्यन पाकर वाचन शैली की स्थापना की गई। वाचन शैली न्यूनाधिक रूप में पहले भी रेडियो नाटक में प्रयुक्त होती रही है; लेकिन इसे प्रायः दोष ही माना जाता था।[1] अपने वर्तमान रूप में वाचन शैली नयी उपकरण के साथ प्रस्तुत हुई, जिससे मुक्त चेतन प्रवाह के बीच के कथ्यात्मक सूत्रों की अन्विति के साथ--साथ स्थूल शारीरिक चेष्टाओं तथा संचारियों को बिम्बित किया । उसी तकनीक में भी बहुविधि प्रयोग और तत्जन्य उपलब्धियां सामने आयीं ।[2]

हिन्दी रेडियो नाटक : दिशा और दृष्टि

राष्ट्रीय चेतना प्रधान रेडियो नाटक :

सन् 1971 ई० में भारत-पाक युद्ध की समाप्ति पर नितान्त राष्ट्र की भीतरी चेतना से जुड़कर नाटक लिखे गये हैं । जिसमें व्यवस्था जनित भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश और असफलता का स्वर प्रमुख रहा है। दूसरे स्तर पर राष्ट्रीय स्वर प्रधान कथानक

---

1. हिन्दी रेडियो नाटक अद्यतन अध्ययन 1, पृ० 40, डा० जय भगवान गुप्ता।
2. हिन्दी रेडियो नाटक अद्यतन अध्ययन, पृ० 27, डा० जय भगवान गुप्ता।

वातावरणगत विशाक्तता को दूर करने के स्थान पर आस्था जगाने के रचनात्मक स्वर को लेकर चले हैं । इस स्तर पर राष्ट्रीय संगठन को अन्तरजातीय और अन्तर–राज्यीय कटाव और द्वेश उभार कर भारतीयता के आलोक में देखा गया है। इसके साथ ही निर्धनता दूर करने और कमजोर वर्गों के उत्पादन तथा परिवार कल्याण की दिशा में राष्ट्रीय स्तर पर होते प्रयत्न को सहयोगी रूप में देखा जा सकता है। तीसरी ओर इस काल में पहचानी गयी 'युवा शक्ति' को राष्ट्रीय स्तर पर निर्माणात्मक दिशा देने की दृष्टि को रेडियो नाटक में आत्मीय किया गया है ।

चूंकि रेडियो नाटक समसामयिकता के गहरे रूप से जुड़ा होता है इसलिए आपात स्थिति से पूर्व के नाटक भ्रष्टाचार, बेईमानी, भाई–भतीजावाद, मिलावट, कार्यालयों में काम न करना, कारखानों में हड़ताल तथा तालाबन्दी आदि का घिनौना रूप प्रदर्शित किया गया है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के "लड़ाई" (20.10.72 ई0) का प्रमुख पात्र 'सत्यव्रत' कहता है कि "हमारे देश में पच्चीस वर्ष बाद भी लड़ाई समाप्त नहीं हुई है। आलस्य से लड़ाई, उदासीनता से लड़ाई, जहालत से लड़ाई, गन्दगी, बदनीयती, बेईमानी से लड़ाई, गरीबी, मानसिक गुलामी, औपनिवेशिक संस्कार, सामन्तवादी स्वभाव, भाषावाद, जातिप्रथा, धर्मान्धता, प्रान्तीयता से लड़ाई अभी जारी है।"[1] सत्यव्रत एक लेखक है और रिटायर्ड जीवन बिता रहे हैं, वे सत्य का व्रत लेकर इन सबसे लड़ने का व्रत करते हैं। सबसे पहली लड़ाई उन्हें घर में ही लड़नी पड़ती है। सत्य की लड़ाई में वे अकेले हार कर पंगु बन जाते हैं। वे सत्य और ईश्वर से कटे हुए हैं, आस्था और विश्वास से कटे हुए हैं। निराश्रित अपने आस-पास व्याप्त झूठों से लड़ते हुए विक्षिप्त अवसथा में पहुंच जाते हैं। रात के अंधेरे में पुलिस स्टेशन के सामने

---

1. रेडियो नाटक–लड़ाई–पृ0 3–5.

की सड़क से उठा कर उसे अस्पताल में भर्ती करा दिया जाता है। सत्यव्रत की यह लड़ाई गलत रास्ते चलते साईकल सवार, डबल रोटी बेचने वाले, बस कण्डक्टर, इंस्पेक्टर, भिखारी, विद्यार्थी आदि से लेकर डाक्टर तथा बुद्धजीवी, सम्पादक, संन्यासी और व्यवस्था के रक्षक पुलिस वालों से है; क्योंकि सभी तो भ्रष्ट व्यवस्था के अंग बनकर रह गये हैं। यह ट्रेजडी व्यापक स्तर पर संगठित प्रयास की ओर प्ररित करती है।

रेवती सरन शर्मा ने "जहर का कोई रंग नहीं" (29.11.74 ई0) में तस्कर व्यापार में लगे उन लोगों के काले धन्धों का उद्‌घाटन किया है जो अपने स्वार्थो के लिए देश के मान–सम्मान की चिन्ता किए बगैर इसकी अर्थव्यवस्था को खोखला एवं जीर्ण–शीर्ण किये दे रहे हैं। एक सच्चे ईमानदार और शोषण के विरूद्ध संघर्ष करने वाले 'विमल' का ऐसे लोगों के सम्पर्क में आने से चारित्रिक पतन इसमें दिखाया गया है। नौकरी का झूठा आश्वासन देकर, झूठे कागज़ तैयार कर गांव के भोले भाले लोगों से पैसा ऐंठ कर उन्हें विदेशों में रहने वाले भारतीयों से डालर लेकर भारत में उनके सम्बन्धियों को उसके बदले रूपया देना और फिर इस विदेशी मुद्रा से तस्करी करना, वास्तविक स्थितियों का यथार्थ उद्‌घाटन इसमें किया गया है। इसी प्रकार चिरंजीत के "रतजगा" (27.7.73 ई0) का स्वतन्त्रता सेनानी राम दयाल अपने बेटे कृष्ण मोहन, उसकी पत्नी शकुन्तला और उसके बेटे राजेश के देश तथा समाज विरोधी कार्यों से अत्यन्त दुखी है। कृष्ण मोहन टैक्स की चोरी, जमाखोरी, तस्करी तथा ब्लैक मार्किट जैसे धन्धे करता है। रामदयाल स्वयं अपने बेटे को गिरफ्तार कराने के लिए पुलिस को बुलाता है। कृष्ण मोहन निराश होकर आत्महत्या कर लेता है। रेवती सरन शर्मा के ही एक अन्य रेडियो नाटक "तुम्हारे गम मेरे हैं" (1.3.74 ई0) में राजनीतिक

भ्रष्टाचार, संसद और न्यायालय का संघर्ष, निर्देशक सिद्धान्त तथा व्यक्ति के मूल अधिकारों का संघर्ष आदि के चित्रण के साथ-साथ स्वतन्त्र भारत में जातीय तथा साम्प्रयदायिक वैमनस्य की विभीषिका का प्रदर्शन है। "काले सूरज की शव यात्रा" (24.7.75 ई0) में मुद्राराक्षस ने सूरज के माध्यम से आम आदमी के खण्डित सपनों को प्रस्तुत किया है। 'सूरज' रामलीला में 'राम' का अभिनय करना चाहता है; किन्तु वह 'अछूत है और मुसलमान' भी, वह 'राम नहीं बन सकता'। "30 जनवरी" के नाटक में गांधी बनना चाहता है; किन्तु 'सूरज को गोडसे' बनाया जाता है क्योंकि वह 'शराब' पीता' है। सूरज शराब पीना छोड़ देता है, खादी पहनने लगा है, लेकिन धर्म और जाति कैसे बदल ले ? उसका मन विद्रोह कर उठता है, उसके भीतर एक गहन संघर्ष होता है। फलस्वरूप वह पूंजीपतियों और नियामकों के विरूद्ध लड़ाई छेड़ता है । नत्थूलाल और मुन्ना के शोषण के विरूद्ध आवाज़ उठाता है अपने ही जैसे-शोषितों को इकटठा कर विद्रोह करना चाहता है; किन्तु अपने को असहाय स्थिति में पाता है और अन्त में अकेला रह जाता है। धर्म निरपेक्षता तथा समानता के गांधी का — सूरज के रूप में लाभ बन कर सिसकते-सिसकते प्राण त्याग देते हैं।

इस समय का सर्वाधिक लोकप्रिय एवं उल्लेखनीय रेडियो नाटक है चिरंजीत का "नया जनम" (22.1.76 ई0) । इसका महत्व कथ्य एवं शिल्प, दोनों ही दृष्टियों से है और चिरंजीत के बृहत्‌ रेडियो नाटकों की कड़ी में इसे सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है। विवाह के अगले दिन ही 'सावित्री' के पति 'रणवीर सिंह' को नेफ़ा में युद्ध के मोर्चे में जाना पड़ता है। चीनी उसे बन्दी बना लेते हैं। वहां से छूटने पर भी अपने को हारे हुए देश का सिपाही मानता है ओर इस आत्मग्लानि के कारण घर पर नहीं लौटेगा। भारत को हारा हुआ समझ

कर वह दार्जिलिंग के पहाड़ों पर भटकता रहता है। सावित्री यातनाएं झेलती हुई अन्त में किसी प्रकार दार्जिलिंग माउंटेनियरिंग स्कूल के कर्नल की सहायता द्वारा नाटकीय ढंग से उसे खोजने में सफल होती है। रेवती सरन शर्मा के "जिन्दगी खत्म नहीं होती" (31.12.76ई0) में भारतीय वायु सेना के अवकाश प्राप्त अधिकारी गजाधर की कहानी है। वह समाज के पिछड़े वर्गों के लड़के-लड़कियों को व्यवसायिक तथा व्यवहारिक प्रशिक्षण देकर आत्मनिर्भर बनाना चाहता है। चिरंजीत के दो और नाटक इसी श्रृंखला में आते हैं। "चक्रव्यूह" (14.10.75 ई0) और "इन्द्रधनुष" (13.4.76 ई0)। चक्रव्यूह का 'कैलास नाथ' सिफारिशों के चक्कर में न पड़कर भाई-भतीजावाद, प्रान्तीयता, जातीयता तथा भाषावाद के संकीर्ण स्वार्थों से ऊपर उठकर योग्यता के आधार पर एक इंजीनियर की नियुक्त करता है। "इन्द्रधनुष" में अन्तर-प्रान्तीय तथा अन्तर-जातीय सद्भावना पर बल दिया गया है। गिरीश बख्शी के "लकीरे और घेरे" (1975 ई0) में 'प्रकाश' और 'रजनी' विवाह के तुरन्त बाद बच्चा पैदा न करने का निर्णय लेते हैं। घर वाले 'रजनी' को बांझ समझते हैं। प्रकाश की मां उसे 'दूसरी शादी' करने को कहती है। प्रकाश अपनी मां को स्थिति से अवगत कराता है और बताता है कि उपयुक्त समय पर ही वे बच्चा पैदा करेंगे, इस प्रकार नाटक "दुखान्त" होते-होते सुखान्त में परिवर्तित हो जाता है। गिरीश बख्शी का ही एक और नाटक है "रेडियो खराब होगा" (15.11.77ई0) इसमें बढ़ते परिवार की समस्या को अतिसूक्ष्म ढंग से प्रतीक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार हरि मेहता ने अति सूक्ष्म स्थितियों के माध्यम से "एक आदमी" (13.5.80 ई0) में इस समस्या को उठाया ।

'युवा वर्ग' से जुड़ी गलत धारणाओं का खण्डन कर के0पी0 सक्सेना ने अपने नाटक "खुशबुएं कैद हैं"[1] (9.7.78 ई0) में युवा मानस को सही परिप्रेक्ष्य में रखने का प्रयास किया है । क्लास रूम तथा स्टडी चैम्बर तक सीमित, सदा अतीत के आदर्शों आस्थाओं और विश्वासों में जीने वाले अर्थशास्त्र के प्रो0 सोमनाथ नारंग, एक दिन अचानक कालिज़ के लॉन में शोर करते विद्यार्थियों के बीच आ जाते हैं। ऐसा करने के लिए उनका अन्तःसंघर्ष उन्हें प्रेरित करता है । अध्यापक तथा विद्यार्थियों के बीच की दरार को पाटने हेतु वे व्याकुल हो जाते हैं। नालन्दा का विद्यार्थी, उज्जयिनी का चित्रण, कालिदास के काव्यों का आदर्श, भारतीय नारी का वर्णन, पश्चिम की सभ्यता का प्रभाव, सम्राट कनिष्क का विद्यार्थियों की समस्याएं जानने के लिए भेष बदलकर नगर में निकलना आदि घटनाएं उनके मानस में साकार हैं। ये सभी घटनाएं प्रो0 नारंग के मानस में घटती हैं। इन घटनाओं के सन्दर्भ में वह आज के विद्यार्थियों की विवसता का अनुभव करता है और पाता है कि खुशबुएं तो इनके अन्दर कैद हैं जिसे निकालना उसका दायित्व है और वह अपने को विद्यार्थियों से घिरा पाता है। अध्यापक तथा विद्यार्थियों के निकट आने से आत्मीयता का वातावरण निर्मित होता है। घटना तथा कथा विहीन यह रेडियो नाटक कथ्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा सकता है। "रंगीन रोशनदान" (1.6.79 ई0) में के0पी0 सक्सेना ने कालेज में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की आंखों में चमकने वाले सपनों का चित्रण किया है। विश्वविद्यालय एक ऐसे रंगीन रोशनदान के सामने है, जिसमें से प्रत्येक छात्र अपनी भावी कल्पनाओं को साकार होता देखता है। इस संदर्भ में मुद्राराक्षस का "विदूप" 726.2.76 ई0) उल्लेखनीय है। प्रत्यक्ष की घटनाएं वातावरण निर्मित करने के लिए दिखाई गई हैं। आतंकवादियों का सूक्ष्म मानसिक विश्लेषण इस नाटक में मिलता है । अजित पुष्कल जी का "घंटी के चक्कर" मनोरंजन की दृष्टि से लिखा गया रेडियो नाटक है ।

इसी दृष्टि से प्रथम और प्रतिनिधि रेडियो नाटक के रूप में सुरेन्द्र तिवारी के ''एक और राजा'' (24.7.81 ई0) को ले सकते हैं। यह नाटक प्रतीकात्मक नाटक है जिसमें मिथकीय घोड़े उच्चश्रवा को शासक द्वारा महामंत्री नियुक्त किया गया है। जनमानस इसे ही नायक मानकर इसी की बोली बोलने लगता है। विशेष बात यह है कि घोड़े के रूप बदलने की बात को प्रभा मण्डित करके राजा शासन के आसन और घोड़े की पीठ को अद्वैत भाव से देखता है। षडयंत्र और दलबंदी की एक लम्बी श्रृंखला भीतर ही भीतर बुनी जाती है और परिणाम होता है सही आदमियों का बहिष्कार और दमन । घोड़े का विवाह एक सुन्दरी कन्या से करवा कर नाटककार ने शासकीय प्रलोभनों की पराकाष्ठा को इंगित किया है । इस सुन्दरी के माता-पिता यह जानते हुए भी कि घोड़ा एक पशु है, शासन के निकट पहुंचने के लिए अपनी पुत्री का बलिदान देते हैं । दूसरे शब्दों में जन विवेक शासकीय मूर्खता की बलि चढ़ घोड़े के सेवक रूप में प्रियव्रत नाम का व्यक्ति शासन और कुशासन की मर्यादा अमर्यादा के बीच झूलता हुआ राजा रूपी पशु और पशुरूपी राजा के अन्तर्भेद को अपनी व्यंग्य दृष्टि द्वारा संकेतित करता चलता है। कुल मिलाकर यह नाटक एक नये दौर की शुरूआत का सूचक माना जा सकता है ।

सांस्कृतिक चेतना युक्त रेडियो नाटक :

सांस्कृतिक स्तरीय नाटकों का अभिप्राय इस कथ्य के आधार से लिया गया है जो हमारे लिए दुरूह आदर्श के रूप में अब तक चला आ रहा था और जिसके बदलते भाव बोध और यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता थी । इस स्तर पर रेडियो नाटककार ने अपने इस महत्वपूर्ण दायित्व का पालन किया है, जिसके अधीन परम्परा और संस्कृति में नये खून को संचरित करना एक नैतिक आवश्यकता होती है ।

"गोल रोटी का सूर्य" (15.7.75 ई0) में गिरीश बख्शी ने द्रोणाचार्य के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से आज के मानव की विशेषताओं एवं बिडम्बनाओं को मुखरित किया है। अपने बेटे अश्वत्थामा को एक कटोरी दूध उपलब्ध कराने में असमर्थ द्रोण नहीं चाहता कि उसका बेटा भी निर्धनता का अभिशाप भोगे। द्रोण द्वारा परशुराम से दिव्य अस्त्र-शस्त्र दान में मांगना, अश्वत्थामा को सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी बनाने के लिए अन्य शिष्यों से छिपाकर शस्त्र विद्या के रहस्य बताना, भील पुत्र एकलव्य से गुरूदक्षिणा में अंगूठा मांगना आदि घटनाओं के अतिरिक्त धन और प्रतिष्ठा के लोभ के कारण राज्याश्रय में रहकर अपमान सहना और अन्याय का साथ देना आदि । आज के मानव की मानसिकता का ही तो चित्रण है। द्रोण स्वीकार करते हैं उन्होंने स्वार्थ के वशीभूत होकर कर्तव्य पालन के नाम पर अन्याय का साथ दिया। जिसके लिए इतिहास क्षमा नहीं करेगा ।

डा0 हेमराज निर्मम का "करूणा के प्रतिनिधि" (15.5.77 ई0) शासक और शासित के बीच का अन्तराल पाटने की ओर एक प्रयास है। "सत्य मेव जयते" (9.9.75ई0) में कणाद ऋषि भटनागर ने सम्राट अशोक के काल की घटनाओं को समसामयिकता से जोड़ा है ।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक में प्रसारित देवराज दिनेश का "मैं व्यथा साकार" (30.4.76 ई0) में द्रोपदी के अन्त:वृथा का चित्रण है। द्रोपदी और श्वान के साथ पांचों पाण्डव स्वर्ग के लिए हिमालय यात्रा पर जाते हैं। द्रोपदी चलती-चलती थक जाती है। युधिष्ठर उसे रूप गर्विता और अहंकारिणी कहता है और उसे वहीं असहाय स्थिति में छोड़ पाण्डव आगे बढ़ने लगते हैं ।

द्रोपदी का मन चीत्कार कर उठता है, उसे अतीत की घटनाएं याद आने लगती हैं। वह सामने देखती है कि सभी पाण्डव एक एक करके बर्फ में गिरते जा रहें हैं, शायद दूर युधिष्ठिर भी गिर गया । जब सभी की यही नियति है तो नारी ही तिरस्कार क्यों सहे ? पुरूष प्रधान समाज में आज भी नारी की वही दयनीय स्थिति है। कैसी विडम्बना है कि धर्मराज सत्यनिष्ठ युधिष्ठिर स्वंय को हारकर भी अपनी पत्नी को दांव में लगाता है। यदि युद्धिष्ठिर चाहता तो कुन्ती द्वारा अनजाने में कही गयी बात का विरोध कर सकता था और द्रोपदी को पत्नी रूप में स्वीकार करने से इन्कार कर सकता था; किन्तु द्रोपदी का पति बनने का लोभ वह संवरण नही कर सका । द्रोपदी के त्याग और बलिदान को भी हेय की दृष्टि से देखा जाता है । इसकी वेदना को किसी ने भी समझने का प्रयास नहीं किया। भगवान कृष्ण की ऊपरी सहानुभूति उसके साथ अवश्य है; किन्तु इससे अधिक कुछ नहीं । द्रोपदी की मानसिक व्यथा उर्मिला की भांति साहित्यकारों द्वारा प्रायः उपेक्षित रही है। प्रस्तुत रेडियो नाटक में द्रोपदी का अन्तः संघर्ष और वेदना का चित्रण आज की नारी की व्यथा भी है । इसका प्रदर्शन नाटककार की सफलता है।

पुरूष नारी के पवित्र संबंधों का चित्रण कैलाश भारद्वाज ने अपने नाटक "यक्षप्रिया" (11.3.75 ई0) में किया है इसमें कालिदास रचित "मेघदूत" की कथा को पृष्ठभूमि रूप में प्रयुक्त किया है । यक्ष का मित्र तक्षक एक षडयंत्र द्वारा यक्ष को एक वर्ष के लिए एकान्तवास का दण्ड दिलाता है ताकि वह यक्ष की नव-विवाहिता पत्नी अनंगजा को अपने वश में कर सके, किन्तु तक्षक की योजनाएं विफल होती है। प्रचार है रामगिरि की अन्य महिलाओं

से भी सम्बन्ध हो गये हैं तथा उसकी मृत्यु हो गयी है ; किन्तु अनंगजा को विश्वास नहीं होता और गवाक्ष में बैठे मेघ को अपने पति को संदेशवाहक समझकर आश्वस्त होती है कि यक्ष शीघ्र ही लौट आयेगा । अनंगजा की यक्ष के प्रति आस्था एवं श्रृद्धा के साथ – साथ उनका विरह जनित स्थिति का स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण इस नाटक की विशेषता है ।

अतः कहा जा सकता है कि इस काल के हिन्दी रेडियों नाटकों में ऐतिहासिक पौराणिक कथानकों को यथार्थपरक दृष्टि से समसामयिकता से सम्पृक्त किया गया है ।

सामाजिक चेतना के रेडियो नाटक "

आधुनिक भौतिकता का प्रभाव पति –पत्नी के सम्बन्धों की पवित्रता पर गहरे रूप में पड़ा है । मध्य वर्ग के स्त्री – पुरूष नैतिक – अनैतिक के चक्रव्यूह में फॅसकर अनिर्णय के स्थिति के शिकार हो गये । सेक्स की छाया प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में भूत की तरह मड़राती रहती है । " कैद " उपेन्द्र नाथ अश्क जी के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अर्न्तगत प्रयुक्त होने वाला पहला हिन्दी का आधुनिक नाटक था, यह रेडियों के सभी केन्द्रों से सभी भाषाओं में प्रसारित किया गया है ।

मृदुला गर्ग के " एक और अजनवी "(1977 ई0) में शानी का पति जगमोहन जैसे ही शानी और इन्द्र को अकेला छोड़कर जाता है तो शानी दिवास्वप्न में खोई सी इन्द्र से अपने प्रेम सम्बन्ध को याद कर प्यार के मधुर क्षण सहेज लेना चाहती है, किन्तु वहाँ से मिलता है वह इन्द्र जो शानों के शरीर में वासना खोजता है और अपनी शारीरिक भूख मिटाना

चाहता है । शानी आत्म समर्पण के अन्तिम क्षणों में इन्द्र से अलग हो जाती है और उसे चला जाने को कहती है । इन्द्र बड़बड़ाता हुआ बाहर चला जाता है । डॉ0 चन्द्रशेखर के " कटा नाखून " (1974 ई0) में मीनाक्षी का चार वर्ष तक अक्षय से जुड़े रहकर अकस्मात् प्रभात से जुड़ने के लिए उससे सम्बन्ध तोड़ लेना , अक्षम को आत्म हत्या के लिए विवश कर देता है । कृष्ण मानव के " चौथा कोना " क(1.9.79 ई0) में परिस्थितियों से विवश सरोज पर पुरूष के पास जाकर भी अपने पति चेतन के साथ सम्बन्धों की पवित्रता की दुहाई देती है । अमृत लाल मदान सागर के " अतीत का साया " (6.2.79 ई0) में सुधा पति की । अनुपस्थिति में अपना खोया प्यार पाने की लालसा में जब अमर के प्रति पूर्णरूप से समर्पित हो जाती है, तो बच्ची जाग जाती है । वह खोज में बच्ची को पीटती है । इसका स्वप्न अधूरा रह जाता है । विष्णु प्रभाकर के "बस इतना ही मेरा है " (10.7.72 ई0) की इला दूसरा विवाह करके भी अरूण के साथ, पिता के मांसल जीवन की अनुभूति नहीं भूला पाती । पूरा नाटक इला और उसकी अन्तरात्मा के बीच वार्तालाप और विगताख्यान द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।मदन शर्मा के " बारूद की सीढ़ियाँ" (14.10.80 ई0) में आलोक एक बेकार इंजीनियर है । उसे नौकरी इस शर्त पर दी जाती है कि वह गरूण वर्मा के फर्म में 'चौकीदार की लड़की 'रजनी' से विवाह' कर ले ।

'रजनी' के यह बताने पर भी कि उसके पेट में गरूण वर्मा का 'बच्चा' पल रहा हैं, आलोक उसे बच्चे को अपना लेता है और नौकरी से त्याग पत्र दे देता है । के0पी0सक्सेना के नाटक "वो जो मैं नहीं हूँ "(1974 ई0) में एक प्रसिद्ध और लोकप्रिय

'लेखक' की मृत्यु हो जाती है ।पोस्ट मार्ड्म के लिए उसका शरीर रातभर के लिए मुर्दाघर में रख जाता है । रात में'अमृतपाल' जीवित हो जाता है । वह अपना वेश बदल, अमृत पाल का मित्र बनकर , उस पर पुस्तक लिखने का बहाना बनाकर अपने मित्रों एवं सम्बन्धियों के पास जाता है । मात्र यह जानने के लिए कि लोग उसे कितना चाहते हैं । महीपसिंह के "फैसला " (13.1.76 ई0) में चोपड़ा अपनी लड़की मीना का विवाह किसी न किसी बहाने से नहीं होने देता है । अगर मीना का विवाह हो गया है तो चोपड़ा (रिटायर्ड) की देखभाल कौन करेगा । मीना छब्बीस वर्ष की हो गयी है । अन्त में मीना ही अपने भाग्य का फैसला करती हैं और उसी दिन शतरंज के खेल में चोपड़ा को जिन्दगी में पहली बार वह मिलती है जो दोहरी है । " एक फूल पतझड़ " (22.2.77 ई0) में कान्तिदेव ने दिखाया है कि किस प्रकार सतीश अपना भविष्य बनाने के चक्कर में अपनी पत्नी रश्मि को एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त करता है । डॉ0 चन्द्रशेखर के नाटक " डायल के नम्बर" (13.12.77 ई0) में मॉं की भावनाओं की कद्र न करने तथा उसकी सेवा न करने के कारण 'चेतन' अपनी पत्नी 'रोली' की हत्या कर देता है । ईश्वर चंदर के " न मरने का दु:ख "(14.11.78 ई0) का अशीश आर्थिक विवशताओं से जकड़ा यह सोचने में विवश हो जाता है कि उसकी बूढ़ी मॉं मर क्यों गयी । पत्नी ,पति , मॉं का इलाज इसीलिए करा रहे थे क्योंकि कैंसर के कारण अब उसके बचने की आशा नही थी, किन्तु हुआ इसके विपरीत और मॉं बच गयी । वीर सक्सेना का " अन्धे चरित्रों का कोरस " (6.7.79 ई0 (टूटते परिवार की कहानी है जिसका आधार स्वार्थपरता है ।दहेज न लेने के कारण नारी के प्रति नारी के अत्याचार की कहानी कान्ति देव ने " कल नहीं लौटेगा " (16.10.81 ई0) में मार्मिक ढंग से चित्रित की है । जब सास और ननंद मिलकर घर में आयी बहू (नीलम) की आग लगाकर हत्या कर देती हैं । आशीष

सिन्हा के "कई लहरों के बीच " (16.6.74 ई0) में प्रसारित हुआ । " परछाइयों का जंगल (26.7.77 ई0) में गिरीश बख्शी ने लड़की का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है ।

नारी के खण्डित व्यक्तित्व और "स्व" की पहचान को लेकर लिखे गये नाटकों में उल्लेख हैं । "चन्द टुकड़े औरत और चौथाई इन्सान " गिरीश बख्शी के " चन्द टुकड़े , औरत" (1978 ई0) में मधु के अर्न्तमन के किसी कोने में छिपी कुण्ठा एकान्त पाकर उभर आती है । वह नहीं चाहती कि सास – ससुर, पति, देवर या ननंद उसको खण्डों में विभाजित करके देखें । कथा विहीन इस नाटक में नारी की विवशता भी झलकती है, जब वह कहती है कि नारी कर ही क्या सकती है। द्वारका प्रसाद के "चौपाई इंसान " (12.5.80 ई0) में शचि अपने पति कमल नयन शराफ से तलाक लेकर विवाह पूर्व प्रेमी प्रतुल, जिसे पर्वतारोहण अभियान में मृत घोषित कर दिया था कि उसके साथ विवाह करना चाहती है । शचि और कमल नयन के – वैवाहिक सम्बन्ध इतने मधुर रहे कि वह इस घर को छोड़ना नहीं चाहती , किन्तु साथ ही अपने प्रेम को भी नहीं भुला पाती । वह कमल नयन तलाक की आज्ञा तो नहीं देता, अपितु शचि अगर चाहे तो वह प्रतुल से प्रेम सम्बन्ध बनाए रख सकती है, इसकी स्वीकृत वह दे देता है । शचि का व्यक्तित्व खण्डित होकर रह जाता है, शचि प्रतुल को कहीं और शादी कर लेने को कहती है ।

महानगरीय जीवन की यान्त्रिकता में जकडा आज का मानव अपने परिवेश, यहाँ तक कि परिवार में पैसा कमाने वाली एक मशीन बनकर रह गया है । जकिया अंजुम ने "अजनवी"

(15.2.77 ई0) में इस अभिशाप का चित्रण किया है । आज के मानव का भीतरी स्तर पर अवमूल्यन तथा उसके लघुत्व को मणि मधुकर ने " बौना संसार " (19.7.74 ई0) में चित्रित किया है । "अमलतास " कब खिलेगा " (1972 ई0) में आशीष सिन्हा ने सम्बन्धों में तनाव तथा अनिर्णय की स्थिति का चित्रण किया है । नौकरी की तलाश में मध्यवर्गीय परिवारों की लड़कियों के लिए आत्म सम्मान बचाए रखने की द्विधा राजेन्द्र कुमार शर्मा ने " "तीसरा डंक "(16.02.73 ई0) में प्रस्तुत की है । "प्लास्टिक की घास " (7.8.81 ई0) सुरेन्द्र गुलाटी का नाटक भी मध्यवर्ग के व्यक्ति की कथा है । आधुनिक व्यवस्था से जुड़े सभी उपाय करने पर भी स्थानान्तरण नहीं रूक पाता । एक घण्टे की अवधि की प्रस्तुती में रेडियों-नाटक की विशिष्टता है इसका कथानक सुसम्बद्ध तथा रोचकता पूर्ण है, जीवन से जुड़े , सभी पहलुओं का जो नौकरी - पेशा के साथ सम्भव है । दर्शाया गया हे कि इसमें लम्बे वाचन का भी सफलता पूर्वक प्रयोग किया गया है ।

अजित पुष्कल ने "बैंक बैलेंस "में मध्यवर्गीय की आर्थिक स्थिति को उभारते हैं । "कॉच के बुल में पुष्कल जी शहर के मध्यवर्गीय जीवन का वर्णन किया है । शहर में बच्चे किस प्रकार अपने घर में बड़ों को जवाब देते हैं इसका वर्णन है।'जनविजय' एवं 'अनुभवहीन' भी पुष्कल के रेडियों नाटक काफी चर्चित हुए ।

सामाजिक कुप्रथाओं का उद्‌घाटन भी इसी समय के हिन्दी रेडियों नाटकों में हुआ है, जैसे - दहेज़ का देवेन्द्र गोस्वामी के "माधवी " [5] (9.11.76 ई0) में अन्ध विश्वासों

---

5. "माधवी " पृ0 9
   देवेन्द्र गोस्वामी

का कान्तिदेव के उदास पायल का स्वर " ({16.10.77 ई0 }) में और शराब के दुष्परिणामों का राजेन्द्र तिवारी के "मैं चोर नहीं हूँ ।" ({14.9.79 ई0 }) में यथार्थ चित्रण किया गया है । "एक सही काम "({ 1990 ई0 }) में "पुष्कल " द्वारा लिखा गया जिसमें एक ईमानदार अफसर के द्वन्द्व को उठाया गया है ।

अतः हिन्दी रेडियों नाटकों में समसामयिक सामाजिक बोध को यथार्थ के धरातल पर सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत किया गया है । डॉ0 अनिरूद्ध प्रसाद श्रीवास्तव " के " साक्षरता अभियान [6] ({ 1994 ई0 }) नाटक में कृषक द्वारा शिक्षा के प्रति ललक की उत्कंठा विशेष रूप से उल्लेखनीय है । सुरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव " राष्ट्रीय एकता " ({17.4.91 ई0 })नाटक में समाज के प्रत्येक पहलू का उद्देश्य राष्ट्र के उत्थान में आधारित किया है । इस प्रकार सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने एवं राष्ट्रीय एकता अखण्डता का वरण करने पर साथ ही राष्ट्र की प्रगति पर सभी रेडियों नाटक केन्द्रित हैं । अजित पुष्कल का " मुक्ति एक चिडियां की "[7] ({ 1993 ई0 }) स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर रचा गया नाटक है ।

---

6. "साक्षरता अभियान " पृ0 5-7
डॉ0 अनिरूद्ध प्रसाद श्रीवास्तव

7. मुक्ति एक चिड़िया की " पृ0 3-6
अजित पुष्कल

"मनोवैज्ञानिक रेडियो–नाटक "

"

योगेश गुप्त के कथा विहीन रेडियो – नाटक " कटा हुआ कोना " में अपने परिवेश में अपनी सामाजिक पहचान खो देने और नितान्त अकेले पड़ जाने पर आत्म हत्या की कामना करने वाले एक व्यक्ति की मनोदशा का चित्रण है । भीड़ में अकेले पन और अब का कारण द्वारका प्रसाद ने " अर्थ " (1979 ई0) नाटक में खोजा है । ओम प्रकाश गुप्त ने " "नर कैक्टस का अर्न्तद्वन्द्व " में एक पुलिस अधिकारी राजू के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण है । जिसकी मधु (पत्नी) के साथ भैरों के नाम के डाकू ने उसके सामने ही बलात्कार किया था । राजू उद्विग्न और बेचैन रहने लगता है । मधु गर्भवती होती है, राजू को आशंका है कि 'गर्भ' भैरों का है । मधु गर्भपात से इन्कार कर देती है । उसका कहना है कि एक तो उसमें कसेंट नहीं था और दूसरा इस गर्भ में अपना अंश भी है ।राजू बच्चे के साथ नहीं रह सकता मधु एवं राजू के रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं । मधु तो स्थितियों से समझौता कर लेती है ; किन्तु राजू मानसिक द्वन्द्व मनोवैज्ञानिक स्तर पर चित्रित किया गया है ।

पितृ– रति– ग्रन्थि से ग्रसित अजन्ता का मनोवैज्ञानिक आशीष सिन्हा के " कई लहरों के बीच " में दिखाया गया है । " परछाइयों का जंगल " में गिरीश बख्शी ने ऐसी लड़की की मानसिकता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है , जो अपने अस्तित्व की पहचान के लिए उच्च कोटि के कलाकार बनते – बनते कम्पलैक्स से ग्रस्त होकर टैन्शन का अनुभव करने लगती है और अन्त में विक्षिप्तावस्था में पहुँच जाती है । हीन भावना से ग्रस्त रूपा का मनोविश्लेषण प्रभावशाली ढंग से किया गया है । संघर्षों को न झेल पाने के कारण जीवन से पलायन की प्रवृत्ति और सामाजिकता से कटकर व्यक्ति केन्द्रित होने की प्रवृत्ति को वीर सक्सेना ने " सुलझे हुए पलाश " में चित्रकार के चित्रकार के मनोविश्लेषण

द्वारा प्रस्तुत किया गया है । अजित पुष्कल द्वारा लिखित "फिर वही पीर " नवें दशक की रचना है जिसमें वैवाहिक असफलता है । बच्चे के मोह का स्थानान्तरण (ट्रान्सफर) है ।

सम्प्रति हिन्दी रेडियो नाटकों में उत्कृष्ट योगदान जिन प्रमुख नाटककारों का है उनमें श्री रेवती शरण शर्मा , श्री मुद्राराक्षस , श्री चिरंजीत , श्री के0पी0सक्सेना, श्री सोमनाथ नारंग , श्री गिरीश बख्शी, श्री सुरेन्द्र तिवारी, डॉ0 हेमराज, कैलाश भारद्धाज , मृदुला गर्ग , डॉ0 चन्द्रशेखर , श्री कृष्ण मानव, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री मदन शर्मा, श्री महीप सिंह, श्री ईश्वर चन्द्र, श्री वीर सक्सेना, श्री द्वारका प्रसाद, श्री जकिया अंजुम, श्री राजेन्द्र कुमार शर्मा, श्री सुरेन्द्र गुलाटी, श्री देवेन्द्र गोस्वामी, श्री राजेन्द्र तिवारी , श्री स्नेह मधुर, श्री जयदेव शर्मा, श्रीमती चन्द्र प्रभा भटनागर[1] , श्री अजित पुष्कल , श्री प्रेम स्वरूप श्रीवास्तव , श्री विनोद रस्तोगी[2] प्रभृति नाम है ।

अतः स्पष्ट हो जाता है कि रेडियो– नाटक में मानव मन के उन छद्‌म भावों को उघाड़ा है जो कदाचित कहीं भीतर ही भीतर सक्रिय रहकर जीवन को– अप्रत्याशित दिशा में मोड़ते रहते हैं[3]। आज की भौतिकतावादी संस्कृति में मनोरंजन, विज्ञापन एवं देश विदेश की सूचनाओं से साक्षात्कार कराने का रेडियो सबसे सस्ता ,सरल एवं सुलभ माध्यम है ।

---

1. रेडियो स्टेशन - लखनऊ ,साभार 2.रेडियो स्टेशन - इलाहाबाद , साभार
3. हिन्दी नाटक के सौ वर्ष , पृ0 – 173

सम्पादक – डॉ0 बालेन्दु शेखर तिवारी

डॉ0 बादाम सिंह रावत

अध्याय – चार

दूरदर्शन की नाट्य प्रस्तुतियाँ

हिन्दी रंगमंच और दूर दर्शन के धारावाहिक

रंगमंच और दूरदर्शन अलग-अलग माध्यम हैं, परन्तु दोनों के बीच कुछ ऐसे सामान्य सूत्र भी हैं, जिनके चलते न केवल वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, बल्कि जिनको दृष्टिगत रखते हुए अपने देश के सामाजिक ,सांस्कतिक स्तरों पर उनके भले-बुरे प्रभावों की चर्चा करना मेरी दृष्टि में आवश्यक है। निःसन्देह पिछले कुछ वर्षों से दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले कुछ धारावाहिक कार्यक्रमों की अपार लोकप्रियता ने रंगमंच (विशेषकर हिन्दी रंगमंच) को प्रभावित किया है।

इन धारावाहिकों ने कई स्तरों पर समकालीन रंगकर्म पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है जैसे----

1. नाटक के दर्शकों में कमी।
2. प्रसिद्धि, लोकप्रियता, आर्थिक समृद्धि इत्यादि के आकर्षणों से खिंचकर रंगमंच के मान्य अभिनेताओं तथा दूसरे रंगकर्मियों का धारावाहिकों की ओर पलायन।
3. फिल्मों की तरह ही धारावाहिकों के अनुकरण पर बहुत से नये-पुराने रंगकर्मियों द्वारा अपने रंगकर्म के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन।

रंगकर्म की मौलिकता और सृजनात्मकता के महत्त्व की समझदारी का

परित्याग कर उसके प्रति गहरी निष्ठा और उसके विकास हेतु गम्भीर प्रयासों में आयी तीव्र गिरावट और बदले में सरलीकृत रास्तों से अधिक नाम और पैसा कमाने की स्थिति।

यह भी सत्य है कि इन धारावाहिकों की लोकप्रियता ने अपेक्षाकृत सीमित और ठहरे हुए रंगमंच को और अधिक व्यापक, गतिशील, सक्रिय तथा जीवन्त कर दिया है। दर्शकों की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि दोनों माध्यमों में कलाकारों, कलात्मक ढाँचें, प्रस्तुतीकरण इत्यादि की दृष्टि से भी, दोनों एक दूसरे को लाभान्वित कर सकने की स्थिति में हैं। पहले फिल्मों में और अब इन धारावाहिकों में, फिर इन धारावाहिकों के माध्यम से फिल्मों में, प्रतिभाशाली कलाकारों के प्रवेश को अपेक्षाकृत और अधिक आसान बना दिया है। ये प्रतिभाशाली कलाकार केवल रंगमंच पर आधारित रहने के बजाय अब अपनी रोटी-रोजी के साथ-साथ अपनी प्रतिभा को अपेक्षाकृत व्यापक दायरे में रखकर पहचानने की सुविधा पाते हैं। एक अच्छा प्रभाव यह भी हुआ है कि अब नाटकों के प्रति दर्शकों का आकर्षण कुछ अधिक व्यापक हुआ है। यह भी कि अब पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में युवजन नाट्य गतिविधियों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। उनकी सक्रिय रूचि और संलग्नता भविष्य में रंगमंच के विकास के लिए सम्भावनाएँ उत्पन्न करेंगी।

वयोवृद्ध रंगकर्मी तथा नाट्य समीक्षक "सिद्धेश्वर अवस्थी" दर्शकों की कमी का मूल कारण नाटक की दुर्बल रचना-धर्मिता को मानते हैं। अच्छे धारावाहिक

भी कभी-कभी प्रेक्षागार में कम उपस्थिति का कारण बनते हैं, लेकिन इन्हें स्थायी कारण नहीं माना जा सकता। जो भी नये रूप में सामने आताा है, वह पुराने को प्रभावित करता है। नयी विधा के आयामों ने पुरानी धारा की प्रस्तुती को नये सांचे में ढालने का जो शुभ प्रयत्न किया है, वह स्तुत्य है, पारसी थियेटर के युग में आंधी, पानी या चिड़ियों की चहचहाहट का बोध कराने का जब कोई यान्त्रिक साधन उपलब्ध नहीं था, तब अभिनेता स्वगत-संवादों के माध्यम से स्वयं बोलकर दर्शकों को अपेक्षित वातावरण या परिस्थिति का बोध कराता था। टेप रिकार्डर . सामने आया तो नाटकों में ऐसे 'संवाद' महत्त्वहीन हो गयें, माइक की सहायता मिली तो संवाद को बोलने में स्वभाविक लहजें का आनन्द दर्शकगण लेने लगे तथा कथा की मूल संवेदन शीलता, लय बद्धता के संस्कार से संस्कारित हो गये। दूरदर्शन नाटकों अथवा धारावाहिकों के प्रसंग को सींमति समय में पूरा करने की शर्त लगते ही, छोटे संवाद के प्रभाव ने आज की नाट्य रचना को कम से कम शब्दों में अपनी बात कह सकने की दिशा में प्रेरित किया। ऐसी स्थिति में रंगकर्म की मौलिकता और सृजनात्मकता के महत्त्व और उसकी समझदारी में गिरावट को स्वीकार करने का कोई स्पष्ट कारण सामने नहीं आता।

नाटक प्रत्येक युग की परिवेशात्मक प्रक्रिया का मुखर स्पन्दन होता है और इसी के प्रभाव से ही सारा इतिहास और उपलब्धियाँ जुड़ी हैं। समाज के बदलते रूप और कथ्य से उनका चिन्तन और अभिव्यक्ति प्रभावित होती है। इस तरह नाटक की अबाध धारा को कभी भी नयीं उपलब्धियों से न तो खतरा रहा है और न भविष्य

में उसकी कोई सम्भावना है। खतरा तो नाटकी की दुर्बल रचनाधर्मिता, प्रभावहीन प्रस्तुती और नये नाटकों का अभाव ही प्रेक्षागार में कम उपस्थिति का कारण बनते हैं।

रंगकर्मी 'अशोक गोस्वामी' दूरदर्शन धारावाहिकों की बाढ़ से रंगमंच के प्रति दर्शकों की उदारसीनता का कारण "आर्थिक" माना है। आर्थिक दृष्टिकोण या व्यापक लोकप्रियता के दृष्टिकोण से भी दूरदर्शन या फिल्मों की ओर रंगकर्मियों का आकर्षण स्वाभाविक ही है। किसी भी कार्य के लिए उसका आर्थिक आधार मजबूत होना आवश्यक है। 'अशोक गोस्वामी' के अनुसार रंगकर्म, रंगकर्म ही है, भले ही वह रंगमंच पर हो. या दूरदर्शन के परदे पर। यह तो सौभाग्य की बात है कि रंगकर्मियों के लिए एक और अधिक सुदृढ़ सशक्त, व्यापक, लोकप्रिय माध्यम उपलब्ध हुआ है। इससे निश्चय ही नाट्य आन्दोलन को बल मिला है।

रंगमंच भी दूरदर्शन से पल्लवित होगा। अनुभवी रंगकर्मी यदि दूरदर्शन पर स्थापित होंगे तो नये रंगकर्मी अनुभव प्राप्त करने के लिए रंगमंच से जुड़ते रहेंगे और यह चक्र चलता रहेगा।

कथाकार और नाटककार 'गिरिराज किशोर' तो यह मानते हैं कि ज्यादातर दूरदर्शन के धारावाहिक 'बंडल' होते हैं। एक दो धारावाहिक ही अच्छे होते हैं उनमें अधिकतम'रात नौ बजे'के बाद आते हैं। अतः मंच अपनी पहचान सदैव बनाये रखेगा।

'रंगकर्मी समीक्षक चारुदत्त '

रंगमंच और दूरदर्शन के धारावाहिको दोनों माध्यमों की भूमिका एक जैसी मानते हैं। उनके अनुसार रंगमंच स्थायी संस्कार निर्माण का व्यापक संदेश दिया करता है, किन्तु दूरदर्शन मनोरंजन दिया करता है, किन्तु दूरदर्शन मनोरंजन के क्षेत्र में वर्तमान समय में व्यापक है। धारावाहिकों की लोकप्रियता का स्पष्ट कारण तो यही है कि इसे एक साथ कई करोड़ लोगों को दिखाया जा सकता है, जबकि रंगमंच के माध्यम से अत्यन्त ही सीमित संख्या में लोग लाभान्वित हो पाते हैं। यह पूरी तरह निर्भर है कि दूरदर्शन के धारावाहिक दर्शकों की रूचि में साकारात्मक विकास करते हैं या उसे विकृत करते हैं।

रंगमंच से जुड़ें कलाकारों पर दूरदर्शन के प्रभाव के सम्बन्ध में एक बात कही जा सकती है कि दूरदर्शन के प्रायोजित कार्यक्रमों के कलाकार रंगमंच से अवश्य प्रभावित रहे होंगे, अगर कोई कलाकार दूर दर्शन में कार्य करते हुए रंगमंच से बेहतर कलात्मक रूप दर्शाता है तो रंगमंच के कलाकार को भी उससे सीखना चाहिए। यह न होने पर रंगमंच कहीं-कहीं दिशाहीन और हास्यास्पद होने लगा है। कला वहीं जीवित रह सकती है जहाँ कलाकार जी सके। अगर दूरदर्शन और फिल्म कलाकार को जीवित रख सकते है तो कलाकार वहीं काम करेगा, रंगमंच के नाम पर भूखों मरने नहीं जायेगा।

रंगमंच की अपनी सीमाएं हैं और वह उन्हीं के अन्दर रहकर अपना काम कर सकता है। मसलन फूल-पत्तियों, वन्य जानवरों अथवा आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरणों सम्बन्धी कथानकों को रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, जबकि दूर-दर्शन अपनी व्यापकता के कारण सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुओं को हमें दिखा सकने में सक्षम हैं । इस दृष्टि से दूरदर्शन निश्चित रूप से रंगमंच के आगे हो जाता है। रंगमंच ने भी आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करके अपने को अधिक परिमार्जित किया है। रंगमंच का अपना स्थान है और रहेगा। नाटकों के 'दर्शकों' में जो कमी आयी है वह सामयिक है, वे रंगमंच की ओर फिर लौटेंगे। यही बात रंगकर्मियों परे भी लागू होती है। वे जितना अधिक दूरदर्शन के करीब पहुँचने की कोशिश करेंगे, उतने ही अधिक अन्य नये रंगकर्मी रंगमंच की तरफ बढ़ेंगे, क्योंकि रंगमंच दूरदर्शन और फिल्मों तक पहुँचने का अनायास माध्यम बन जाता है।

दूरदर्शन ने रंगमंच को अधिक व्यापक गतिशील, सक्रिय, और जीवन्त बनाया है, तो मानवीय मूल्यों की सुरक्षा, सृजन और संवेदना के परिपेक्ष्य में नहीं, अपनी वस्तुवादी दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में 'रामायण धारावाहिक' की लोकप्रियता इसलिए नहीं है कि वह एक उत्कृष्ट साहित्यिक कृति है बल्कि इसलिए कि उसका एक पक्ष धर्म से जुड़ा है जो अनपढ़, अधपढ़ और पढ़े-लिखे को भी अच्छा लगता है।

रंगमंच मानव मूल्यों की गहराई में जाकर संवेदनात्मक सृजनात्मकता को प्रक्षेपित करता है। दूरदर्शन के अधिकांश धारावाहिक अपनी रचनात्मकता में यदि विज्ञापन

जैसे लगते हैं तो इसलिए, कि उनमें अपेक्षित गहराई नहीं है। रंगमंच अपनी सीमित मर्यादा में हमेशा जीवित रहेगा, क्योंकि वह आदिकाल से हमारे साथ है, हमारी मौलिक संस्कृति से जुड़ा है। सभ्यता के विकास से वह परिवर्द्धित, संशोधित और परिमार्जित हो सकता है, लेकिन अपना मूल स्वरूप नहीं खोयेगा। दूरदर्शन मंच से कुछ ले नहीं पायेगा, कुछ दे भले ही दे।

लखनऊ दूर-दर्शन से प्रसारित धारावाहिक

धारावाहिक "अपने अपने कटघरे" लेखक श्रीमती अय्यर, प्रस्तुतकर्ता श्रीमती यशोधरा त्रिपाठी दि0- 13.01.90 ई0 धारावाहिक "शान्ती" का प्रथम भाग, प्रस्तुतकर्ता श्रीमती यशोधरा त्रिपाठी, दि0-23.01.90 / दूसरा भाग 30.01.90 ई0. 'मैकवेथ' धारावाहिक का पुनः प्रसारण 06.02.90 ई0 को प्रस्तुतकर्ता श्री अनिल श्रीवास्तव रहे।

धारावाहिक "दोनों बातें" प्रस्तुतकर्ता श्रीमती यशोधरा त्रिपाठी, दि0--20.03.90 ई0 और 03.04.90 ई0 पुनः प्रसारण हुआ।

"विश्व रंगमंच" दिवस पर जन नाट्य आन्दोलन के सन्दर्भ में नुक्कड़ नाटक, प्रस्तुतकर्ता डॉ0 उदय भान मिश्र और सुशील कुमार सिंह दि0 27.03.90 ई0।

धारावाहिक "मुखड़ा क्या देखे दर्पण में ". प्रस्तुतकर्ता अशरफ हुसैन, प्रथम भाग- 10.04.90 ई0 और दूसरा भाग 17.04.90ई0 क्रमश तीसरा, चौथा, पाँचवा, छठाँ, साँतवा 24.10.90 ई0, 08.05.90 ई0, 15.05.90ई0, 22.05.90ई0 को प्रसारित किया गया।

"गोदान" नाट्य रूपान्तर करके श्री अनिल श्रीवास्तव ने प्रस्तुत किया है यह 4 भाग में दर्शाया गया है क्रमशः 05.06.90 ई0, 12.06.90 ई0, 19.06.90 ई0, 26.6.90 ई0 लेखक मुंशी प्रेमचन्द्र जी ने इसमें होरी और धनिया को केन्द्र-बिन्दु मानकर मध्यम वर्गीय ग्रामीण किसान का स्पष्ट 'चित्रण' किया है। धनिया के चंडीरूप का भी दर्शन होता है, क्योंकि सच्चाई संबल उसके पास था। अपने कृतघ्न

देवर 'हीरा' को ललकारती है उसके घर के सामने पहुँच कर गालियों की बौछार कर देती है। 'गाय' की हत्या के बाद दरोगा जी आते हैं, तब सारे गांव की बोलती बन्द थी धनिया मुहफट और दिलेरी से दरोगा को सबके सामने 'नंगा' कर देती है जब उसे रिश्वत देने के लिए होरी गांव के सभ्रांत लोगों द्वारा दिये गये पैसों का थैला लाता है । एक ओर देश काल से सम्बद्ध है दूसरी ओर मानवीय संवेदना से जोड़ा गया है। जमीदार, पटवारी पुरोहित, सूदखोर महाजन का सामाजिक यथार्थ चित्रण किया गया है।'बेलारी गांव'से यात्र प्रारम्भ होकर वह'महायात्रा'में परिणति होती है।

धारावाहिक "सातवी भाँवर" के लेखक कालिमा प्रसाद पाण्डे हैं प्रस्तुतकर्ता सुरेन्द्र ग्वाडी और नि0 राम कुमार दीक्षित यह लखनऊ दूर-दर्शन से 03.07.90 ई0 को प्रसारित किया गया। धारावाहिक "जहाँ चाहा वाँ राह" के लेखक हैं मुक्ति भद्र दीक्षित, प्रस्तुतकर्ता हरीश है । यह सीरियल सात भागों में प्रसारित हुआ । क्रमशः- 17.07.90ई0, 24.07.90ई0, 27.07.90ई0, 07.08.90ई0, 14.08.90ई, 21.08.90ई0 और 28.08.90ई0 को प्रसारित हुआ। 'सारस्वत' धारावाहिक मामा वारेरकर के मूल मराठी नाटक का हिन्दी रूपान्तरण है । प्रस्तुतकर्ता अनिल श्रीवास्तव हैं यह 04.09.90ई0 को प्रसारित किया गया।

धारावाहिक "साजिस" लेख मुद्राराक्षस एवं आर0डी0 सिंह प्रस्तुतकर्ता हैं. यह चार भागों में क्रमशः16.10.90ई0, 23.10.90ई0, 30.10.90ई0, 06.11.90ई0

को प्रसारित किया गया। धारावाहिक "रक्त के बीज" के लेखक डॉ0 शंकर और प्रस्तुतकर्ता अनिल श्रीवास्तव ने क्रमशः चार कड़ियों 13.11.90 ई0, 20.11.90 ई0, 27.11.90ई0 और 04.12.90 ई0 को प्रसारित किया। बलराज पण्डित लिखित "बीबियों का मदरसा" दो भाग में क्रमशः दि0-11.12.90ई0 और 18.12.90ई0 को प्रसारित किया गया इसे प्रस्तुत अनिल श्रीवास्तव ने किया । धारावाहिक ' एक पाखी अकेला" के लेखक सुरेन्द्र शर्मा और प्रस्तुतकर्ता आर0डी0 सिंह इसे 2 भागों में प्रसारित किया। (दि0-25.12.90ई0 और दि0-01.01.91 ई0)

"बिन बाती के दीप" धारावाहिक के लेखक शंकर शेष और प्रस्तुतकर्ता आर0एन0 खान ने इसे 6 भागों में प्रस्तुत किया है । (दि0 01.09.91 ई0, 15.01.91ई0, 22.01.91ई0, 29.01.91ई0, 05.02.91ई0 और 12.02.91ई0) को प्रसारित किया गया। धारावाहिक 'शर्मी 'का पुनः प्रसारण हुआ इसके लेख उर्मिल थपलियाल और प्रस्तुतकर्ता निम्मी त्रिपाठी जी है। (दि0 19.02.91ई0)

धारावाहिक "नीम का पेड" लेखक राही मासूम रजा प्रस्तुत कर्ता नोनाम मलिक हैं. यह क्रमश 9 भागों में प्रसारित किया गया (26.02.91ई0, 05.03.91ई, 12.03.91ई0, 19.03.91ई0, 26.03.91ई0, 02.04.91 ई0, 09.04.91 ई0, 16.04.91 ई0, और 23.04.91 ई0) को लखनऊ दूर दर्शन से प्रसारित हुआ। इसमें राजनीति के बदलते परिवेश को बहुत ही उत्कृष्ट रूप से दर्शाया गया है। दो

परिवार से जुड़ी कहानी है। मुसलमान जो एक नौकर हिन्दू को अपने घर में नौकरी के हैसियत से रखता है वही एक समय परिवर्तन होने पर मालिक से बड़ा हो जाता है और जिस प्रकार उसके साथ घटा उसी प्रकार वह भी सब कुछ घटाना चाहता है।

धारावाहिक "खूटी पर टंगा कोट"को शीतल मुखर्जी ने लिखा और एस0के0 सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया। यह तीनं भाग में प्रसारित है। (13.08.91ई0 20.08.91ई0, 27.08.91ई0)।

"मैदान ए जंग" एस0के0 सिंह द्वारा प्रसारित (05.02.92 ई0) है इसमें वीरता से सैनिकों का क्रिया-कलाप बड़ें ही अच्छे ढंग से दिखाया गया है।

धारावाहिक "उनकी मौत" अशरफ हुसैन द्वारा प्रस्तुत किया गया है। मौत के माध्यम से व्यक्ति के व्यक्तित्व को परखने की कोशश की गई हैं। (12.05.92 ई0)।

धारावाहिक "नियान्बे का चक्कर" कृष्ण कुमार द्वारा प्रस्तुत किया गया है यह चार कड़ियों में क्रमशः 26.05.92 ई0, 02.06.92 ई0, 09.06.92 ई0 और 16.06.92 ई0 को लखनऊ दूरदर्शन से प्रस्तुत किया गया है। इसमें "भौतिकता" को केन्द्र बिन्दु में रखकर एक प्रकार से 'माया' के चक्कर में व्यक्ति अपने मूल्यों को भूल जाता है और उसी चारों ओर भँवरे की तरह मड़राने लगता है।

धारावाहिक "नई रोशनी" दिल्ली दूर-दर्शन से प्रस्तुत किया गया (दि0-19.06.92 ई0) इस धारावाहिक में भ्रमित जन समुदाय को एक प्रकार से सही मार्ग पकड़ने हेतु उपक्रम किया गया है।

धारावाहिक "रेत की दीवार" के लेखक हैं अफाक अहमद इसे प्रस्तुत किया है कि रफीक खान ने प्रस्तुत धारावाहिक में यथोचित कार्य न करने और हवाई बातें करने का सामयिक चित्रण किया गया है । ((दि0-23.06.92 ई0)।

धारावाहिक "लव मैरिज" में 'हास्य व्यंग्य' को माध्यम बनाकर दिनेश भारती ने रचना की है। समाज में इस तरह विवाह कितने सफल होते हैं और किस प्रकार 'धन' को अपनाने का हथकंडा अपनाया जाता है। सम्प्रति बड़ा ही ज्ञानवर्धक धारावाहिक सिद्ध हुआ। यदि नायक और नायिका दोनों की योग्यता लगभग समकक्ष हो अर्थात् (आई.-क्यू) बुद्धि समान हो तो कुछ हद तक सफल हो सकते हैं। यह धारावाहिक रफीक खान द्वारा प्रस्तुत तीनों भागों में क्रमशः-30.06.92 ई0, 07.07.92ई0 को दर्शाया गया है।

धारावाहिक "अजनबी रास्ते" दिल्ली दूर-दर्शन की प्रस्तुती है यह 17.07.92ई0 प्रस्तुत किया गया । व्यक्ति के जीवन में आने वाली मुशीबतों से दिखाया गया है। मनुष्य अपने आप को उससे तादात्म स्थापित करता हैं। मुख्य रूप से राष्ट्र प्रेम पर

आधारित है। राष्ट्र का जो बंटवारा करना चाहते है या राष्ट्र के प्रगति को जो रोकना चाहते हैं उनका उजागर होता है। मुख्यतः कश्मीर प्रान्त का दृश्य दिखाया गया है। निर्देशक - महेन्द्र वत्रा हैं।

धारावाहिक "सबसे बड़ा रूपइया" राजेन्द्र कुमार शर्मा द्वारा लिखित और डॉ0 रफीक खान द्वारा निर्देशित है यह धारवाहिक 5 कड़ियों में विभक्त है। 'रूपया को 'मानवीय मूल्यों' से भी श्रेष्ठ सिद्ध करने का उपक्रम किया गया है रूपये द्वारा मान, प्रतिष्ठा, सामाजिक सम्बन्ध सब कुछ स्थापित करने का प्रयास है। यह क्रमश 21.07.92ई0, 28.07.92ई0, 11.08.92ई0, 18.08.92ई0 और 25.08.92 ई0 को प्रसारित किया गया है।

धारावाहिक "शनिवार, रविवार" का लेखक हैं सतीश आलेकर और निर्देशक डॉ0 रफीक खान इसे तीन भाग में दिखाया गया है, जो दि0-01.09.9ई0, 08.09.92ई0 और 15.09.092ई0 को लखनऊ को प्रसारित किया गया । यह 'हास्य व्यंग्य' पर आधारित है।

"अन्धेर नगरी चौपट राजा" भारतेन्द्रु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित और डॉ0 रफीक खान द्वारा निर्देशित धारावाहिक में परतन्त्र भारत में किस प्रकार अंग्रेज मनमानी अत्याचार करते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से इसका उजाकर नाटक के माध्यम से होता है।

नुकसान दूसरा करता हैं फल दूसरा भोगता हुआ दर्शाया जाता है। अन्तोगत्वा स्वयं राजा स्वर्ग के लालच में आकर मृत्यु को सहर्ष अपना लेता है। यह दो भाग में दर्शाया गया है। जो दि022.09.92 ई0 और 29.09.92ई0 को लखनऊ दूरदर्शन से प्रसारित किया गया है।

"प्रकाश की ओर" धारावाहिक के लेखक है राजेश्वर नाथ मधुकर और प्रस्तुतकर्ता डॉ0 रफीक खान हैं दि0-06.10.92 ई0 को लखनऊ को प्रसारित किया गया है। इसमें जीवन यापनहेतु नये-नये आयामों की ओर विशेष रूप से दिखाया गया है।

धारावाहिक "बिके हुए आदमी " को कला संगम वाराणसी के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसके निर्देशक रफीक खान थे जो क्रमशः 3 भाग में दिखाया गया 25.03.93 ई0 , 01.04.93 ई0 और 08.04.93 ई0 को लखनऊ से प्रसारित हुआ।

धारावाहिक "बिन बाती के दीप" डॉ0 शंकर शेष की रचना है, इसे रफीक खान ने निर्देशित किया है यह 6 कड़ियों में बाँटा गया है जो क्रमशः 15.04.93ई, 22.04.93ई0, 29.04.93ई0, 06.05.93ई0, 13.05.93ई0 और 20.05.93

ई0 को प्रसारित हुआ। इसमें बिन गुरू के मनुष्य जिस प्रकार इस 'भौतिक संसार' से उभर नहीं पाता उसे नाटक के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

धारावाहिक "गज फुट इन्च" व्यंग्यकार के0पी0 सक्सेना द्वारा लिखा गया है और अगर जीत सिंह द्वारा निर्देशित है यह 4 भागों में प्रदर्शित है जो दि0 27.5.93ई0 03.06.93, 10.06.93 और 17.06.93 ई0 को लखनऊ द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

धारावाहिक "मुर्गे की बॉग" के लेखक बी0के0 गंजूर और प्रस्तुत कर्ता अनिल श्रीवास्तव हैं । (दि0- 08.07.93 ई0)

"मकान नम्बर 144" धारावाहिक को डॉ0 रफीक खान ने निर्देशित किया है यह दो भाग में क्रमशः- 15.07.93 ई0 और 22.07.93 ई0 को लखनऊ से प्रसारित किया गया है।

"माधवी" धारावाहिक के लेखक देवेन्द्र गोस्वामी हैं और निर्देशन भी देवेन्द्र ने किया है यह 3 भाग में दिखाया गया है, जो क्रमशः दि0-05.08.93, 12.08.93ई0 और 19.08.93 ई0 को प्रसारित किया गया है।

धारावाहिक "अफवाहें" के लेखक मुद्राराक्षस है और निर्देशक डॉ0 रफीक

हैं, यह 26.08.93 ई0 को लखनऊ से प्रसारित किया गया है इसमें अफवाह से कितना दुस्प्रचार होता है आर्थिक, सामाजिक हानियाँ व्यक्ति में एक गाज बनकर आ पड़ती हैं । इस सब बातों को मार्मिक चित्रण किया गया है।

"लाटरी" धारावाहिक कुमुद नागर के निर्देशन में दि0 04.11.93 ई0 को दिखाया गया । मनुष्य किस प्रकार लाटरी के चक्कर में फँसकर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता हैं और स्वयं परिवार से कटा सा जीवन व्यतीत करता है और एक प्रकार नशा इस लाटरी का उसे रात-दिन छाया रहता है। सम्प्रति बड़ा ही उपदेश भरा धारावाहिक सिद्ध हुआ हैं।

"पिजंरा" धारावाहिक आर0डी0 सिंह0 द्वारा निर्देशित हैं, लखनऊ दूर-दर्शन से दि0-11.11.93 ई0 को प्रसारित किया गया। इसमें व्यक्ति को शोषण के माध्यम से पूंजीपती अपने इशारे पर हर तरह के कार्य कराता दिखाया गया है। व्यक्ति अपने को उससे स्वतन्त्र होने को तड़पता है।

"भँवर" धारावाहिक मिथलेश द्विवेदी द्वारा लिखित और कृष्ण कुमार द्वारा निर्देशित है, यह 6 भाग में क्रमशः 18.11.93 ई0 02.12.93 ई0, 09.12.93ई0, 16.12.93 ई0, 23.12.93 ई0 और 30.12.93 ई0 प्रसारित किया गया है। मनुष्य के जीवन में आने वाली समस्याओं से साक्षात्कार कराते हुए उससे उबारने का प्रयास किया गया है।

धारावाहिक "देर आये दुरस्त आये" के लेखक भादौरिया और निर्देशन अनिल श्रीवास्तव ने किया है दि0-06.01.94ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रसारित किया गया है। इस धारावाहिक में दिखाया गया है कि किसी कारण से व्यक्ति जब अपने कर्तव्य से बाहर रहता है बाद में ऐसे कार्य करता है जिससे उसे जीवन जीने में सहायता मिलती है।

"कुए में भाँग" धारावाहिक के लेखक आलोक शंकर निर्देशक कुमुद नागर है, यह दि0-20.11.94 ई0 को प्रसारित किया गया है। समाज में व्यक्ति किस प्रकार आडम्बर और धोखे-धडी में लिप्त है इसे बाखूबी दर्शाया गया है।

"शामी" धारावाहिक 2 कड़ियों में 03.02.94 ई0 ओर 10.02.94ई0 को लखनऊसे पुनःप्रसारित किया गया। इसका सफल निर्देशन अनिल श्रीवास्तव ने किया है।

"यह दफ्तर है" धारावाहिक निर्देशक कृष्ण कुमार और लेखक श्यामल राय चौधरी है, यह दो भागों में प्रस्तुत किया गया है (दि0-17.02.94 और 03.03.94ई0) प्रतिदिन दफ्तर में कर्मचारियों द्वारा हो रहें 'क्रिया-कलापों' को उजागर किया गया है। दफ्तर में किस प्रकार चपरासी से लेकर सभी लोग सुविधा शुल्क (घूस) लेते हैं जब काम करते हैं सारे लोग बैठे बैठे गप्प हांकते हैं या किसी कंटीन में बैठकर चाय चुस्की लेते दिखाये गये हैं।

धारावाहिक "अम्मी जान" का निर्देशन डॉ0 रफीक ने किया और इसके लेखक कलीम इर्फी है, यह लखनऊ दूर-दर्शन से प्रसारित किा गया, जो क्रमशः दो कड़ियों में दि0-17.03.94 ई0 और 24.03.94 ई0 को प्रस्तुत किया गया है।

धारावाहिक "रोजी रोटी" रफीक खान के निर्देशन मे दो भागों में प्रस्तुत किया गया है। (दि0-14.04.94ई0 और 21.04.94ई0) इसमें जीवन निर्वाह हेतु व्यक्ति को कार्य की तलाश हेतु किये गये प्रयासों का विवरण दृष्टिगत होता है।

"प्रभात" धारावाहिक अनिल श्रीवास्तव के निर्देशन में दि0 28.04.94ई0 को प्रदर्शित किया गया है इसकी रचना राजेश्वर नाथ ने की है। इस धारावाहिक में मनुष्यों को जिन्दगी निर्वाह हेतु मार्ग का निर्देशन किया गया है।

धारावाहिक "हम तो डूबे है सनम" बलराज पण्डित की रचना है इसे आर0डी0 सिंह ने निर्देशित किया गया । (दि0-09.06.94ई0) इस धारावाहिक में "प्रेम" को केन्द्र बिन्दु बनाया गया है।

धारावाहिक "आधी रात के बाद" दो भागों में दिखाया गया इसके लेखक स्व0 डी0शंकर घोष एवं निर्देशिका श्रीमती यशोधरा त्रिपाठी हैं। यह दि0-16.06.94ई0 और 23.06.94ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रस्तुत किया गया ।

"रास्ते बदलते हैं" धारावाहिक में जीवनयापन में होने वाले परिवर्तन को मुख्य रूप से दर्शाया गया है। इसकी रचना अफाक अहमद ने की और निर्देशन आर0ए0खान ने किया, यह दो भागों में क्रमशः दि0-14.07.94ई0 और 21.07.94ई0 को प्रसारित किया गया है।

"अपने-अपने कटघरे" धारावाहिक के प्रणेता डॉ0 सुमित अय्यर हैं और प्रस्तुतकर्ता यशोधरा त्रिपाठी हैं। दो कड़ियों का नाटक है जो क्रमशः दि0-28.07.94ई0 और 04.08.94ई0 को लखनऊ दूर-दूर्शन से प्रस्तुत किया गया है।

"खूटी पर टंगा कोट" धारावाहिक की रचना शीतल मुखर्जी और निर्देशन यशोधरा त्रिपाठी महोदया ने दि0 - 11.08.94ई0 को किया है।

"तीन बन्दर" के लेखक दबोध जोशी और निर्देशक अनिल श्रीवास्तव हैं। इस धारावाहिक में गांधी जी के तीन बन्दर की तरह बुराई होते हुए भी लोग नहीं देखते, नहीं करते, या नहीं कहते है । यह दि0-01.09.94 ई0 को दिखाया गया है।

धारावाहिक "छोटी सी बात" के लेखक चेग्ग्रीव और हिन्दी रूपान्तर रिशाद रिज़वी और निर्देशन निम्मी त्रिपाठी ने किया है । यह दि0-15.09.94

ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रस्तुत किया गया है।

धारावाहिक "दो हर्फ अधूरे से" के प्रणेता देवेन्द्र गोस्वामी और प्रस्तुतकर्ता भी देवेन्द्र गोस्वामी ही है। यह दो भागों में प्रस्तुत हुआ धारावाहिक है जो क्रमशः दि0-22.09.94 ई0 और29.09.94 ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रसारित किया गया है।

धारावाहिक "संध्या छाया" तीन कड़ियों में कुमुद नागर के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया है, इसकी रचना 'दलवी' ने किया, किन्तु अनुवाद कुसुम ने किया है। यह क्रमशः 20.10.94 ई0, 27.10.94 ई0, और 03.11.94 ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रसारित हुआ है।

धारावाहिक 'दो जग' के लेखक इस्मत चुगताई और प्रस्तुतकर्ता सबा जैदी (डी0डी0के0) हैं, इसे दो भागों में क्रमशः दि0- 08.12.94ई0 और दि0-15.12.94 ई0 को प्रसारित किया गया है।

धारावाहिक "शराफ मंजिल" के रचनाकार रज़ी उद्दीन सिद्दीकी और निर्देशक अमर जीत सिह ने दि0 12.01.95 ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रस्तुत किया है। इस शीर्षक में 'शराफ' को केन्द्र बिन्दु माना गया है।

धारावाहिक "तुरुप चाल" मूल मराठी नाटक है जिसके मूल लेखक श्री निवास मुग्गे और हिन्दी रूपान्तर के0के0 अग्रवाल एवं मनोहर मोती वाले और प्रस्तुत कर्ता एस0के0 सिंह इसे दो कड़ियों 19.01.95 और 09.02.95 ई0 को दर्शाया गया है इसमें राजनीति का हथकंडा दिखाया गचा है।

धारावाहिक "प्यादा" जितेन्द्र मिन्तल की रचना है इसके निर्देशन का कार्य अनिल श्रीवास्तव और अशरफ हुसैने किया है। यह तीन कड़ियों में क्रमशः दि016.02.95ई0, 23.02.95ई0 और 02.03.95 ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रस्तुत किया गया है।

धारावाहिक "मंगल कामना" की लेखिका मालती जोशी हैं और निर्देशन भूपाल ने किया गया है । दि0-30.03.95 ई0 को प्रस्तुत किया गया है।

"अपना अपना दायरा" धारावाहिक के रचनाकार जसदीप कौर हैं और निर्देशन राजेश कौल ने किया। यह दो भाग में क्रमशः 25.04.95 ई0 एवं 07.05.95ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रदर्शित किया गया। इस धारावाहिक में स्पष्ट किया गया है कि यदि अपने सीमा से कोई हटकर कार्य करता हैं तो उसे सफलता तो मिलती नहीं, वरन् उसे अधिकाधिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

धारावाहिक "अब और नहीं " के निर्देशक हैं अशरफ हुसैन एवं यह

आलेख इकबाल मजीद का है।यह धारावाहिक 5 कड़ियों में क्रमशः दि0-18.05.95ई0, 25.05.95, 01.06.95, 15.06.95 और 22.06.95 ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रसारित किया गया। इसमें प्रताड़ना का खुलकर सामना किया गया है। बहुत तरह के जुर्म सहन करने के बाद उस जुर्म से लड़नें के लिए उद्यत होते देखा गया है।

धारावाहिक "राजूला मालू साई" यह "गीत नाटिका"है। विभिन्न प्रकार के गीतों के माध्यम से इसकी रचना है। यह अत्यन्त लोकप्रिय धारावाहिक रहा। लेखक युगुल किशोर एक नृत्य निर्देशन दीपक तिवाडी और प्रस्तुतकर्ता हरीश ब्रेहन हैं। यह चार कड़ियों में क्रमशः दि0 23.05.95, 30.05.95, 06.06.95 और 20.06.95ई0 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रसारित किया गया।

धारावाहिक "खदान" के लेखक के0के0 अग्रवाल और प्रस्तुत कर्ता अनिल श्रीवास्तव हैं, क्रमशः दो भागों में दि0-29.06.95 ई0 और 06.07.95 ई0 को लखनऊ दूर दर्शन से प्रदर्शित किया गया है।

धारावाहिक "राहें" श्रीनगर दूर-दर्शन की भेंट है इसका निर्देशन कृष्ण कुमार और अशरफ हुसैने ने किया है। इसमें काश्मीर में विचलित नागरिकों के क्रिया-कलापों को दिखाया गया है। यह दो भाग में क्रमाः 13.07.95 एवं 20.07.95 ई0 को प्रसारित हुआ है।

"कैजुअल लीव" धारावाहिक के लेखक के0के0 अग्रवाल और प्रस्तुत कर्ता अनिल श्रीवास्तव जी है। यह दो भाग में क्रमशः 27.07.95 और 17.08.95 को लखनऊ दूरदर्शन से प्रसारित हुआ है इसमें दिखाया गया है कि अधिकतं नौकरी करनो वाले किस प्रकार कैजुअल लीव का सहारा लेकर पूरे वर्ष अनुपस्थित रहते हैं और बीच-बीच में अपने कार्यालय जाकर कैजुअल लीव (सी0एल0) को उपस्थिति (प्रेजेन्ट) में परिवर्तित कर देते हैं और वर्ष के अन्त में उसकी कैजुअल लीव शेष पड़ी रहती है।

धारावाहिक "स्वयंवर" को के0के0 अग्रवाल ने लिखा और निर्देशन कृष्ण कुमार ने किया है। यह दो कड़ियों में क्रमशः दि0-01.08.95 और 08.08.95ई0 को प्रसारित किया गया है।

धारावाहिक "जग्गी चाचा का तोहफा" का पुनः प्रसारण दि0-22.08.95ई0 को हुआ इसका निर्देशन निम्मी त्रिपाठी ने किया है।

धारावाहिक "मैदान ए जंग" का निर्देशन अनिल श्रीवास्तव ने किया और रचना के0के0 अग्रवाल ने किया है। यह 24.08.95ई0 को प्रसारित किया गया है। यह वीरता की कहानी है। वीर सैनिकों की युद्ध-भूमि में वीरता का प्रदर्शन हुआ है।

धारावाहिक "पतियां" को के0वी0 चन्द्रा ने प्रस्तुत किया है, यह दि0-07.09.95, 21.09.95 और 28.09.95 को लखनऊ दूर-दर्शन से प्रसारित हुआ है।

धारावाहिक "हनीमून"- को कृष्ण कुमार और अशरफ ने प्रस्तुत किया। यह यूनीसेफ की भेंट है। तीन भागों में क्रमशः 05.010.95 ई0, 12.10.95ई0 और दि0-19.10.95ई0 को प्रसारित किया गया है।

धारावाहिक "अ' से अकार" का निर्देशन कृष्ण कुमार ने किया । यह धारावाहिक 2 कड़ियों में क्रमशः दि0-10.10.95 और 17.10.95 ई0 को प्रसारित किया गया है।

धारावाहिक "आज का हातिम ताई " अमरजीत सिंह के निर्देशन में चार भागों में क्रमशः दि0-26.10.95, 02.11.95, 09.11.95 और 16.11.95 ई0 को प्रसारित किया गया है।

"दिल्ली दूर-दर्शन से प्रसारित धारावाहिक"

धारावाहिक "कर्णधार" की निर्मात्री कथाकार मधुवर्मा हैं। निर्देशन अजत अस्थाना ने किया है। इसका उद्देश्य - नारी चेतना हैं। नारी को आत्म निर्भर बनाने और उसमें समझदारी, चेतना लाने का प्रयास किया गया है।

कथानक- एक लड़की कम उम्र में ही गांव से शहर भाग जाती है, वहाँ उसे कई मुसीबतों का सामना करना पड़ता है, उसका मानसिक और शारीरिक शोषण होता है उसे कदम-कदम पर ठोकरे खानी पड़ती है। जब लड़की को समझ आती है तो वह समाज से मुकाबला करने के लिए खड़ी हो जाती है अन्त में लड़की विजयी होती है। बचपन में नारी के 'कर्णधार' उसके माता-पिता होते हैं। जवानी में पति। नारी चाहे जो कुछ भी कर सकती है वह अपनी 'कर्णधार' स्वयं बन सकती है।

इस धारावाहिक के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया गया है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता को भी दर्शाया गया है। यह धारावाहिक 52 कड़ियों में है। इसका संपादन नितिन खरे ने किया है। इसकी पटकथा - डॉ0 महेन्द्र पुरोहित ने लिखा हैं। पात्र,- अरुण गोविल, विजय अरोरा, सुधीर पाण्डेय, सुधीर दलवी, प्रीत खरे, अपराजिता आदि हैं।[1]

---

1. अमृत प्रभात - 20.09.95 पृष्ठ-7 मीडिया पत्र)

धारावाहिक "मजनूं फरार", यह हास्य धारावाहिक है। इसका निर्माण- कमल रस्तोगी, अरुण रस्तोगी एवं मधु ने किया । निर्देशन प्रमोद अवस्थी ने किया संगीत- सुशील कुमार की एवं गीत देष कोहली के हैं। कहानी लेखक- सहगल, पटकथा लेखक- सुब्रतोबनर्जी पात्र- जीत उपेन्द्र, सबा, राजू जेष्ठ, गोगा कपूर, आंचल मल्होत्रा, हरीश मगन और शिव कुमार हैं।[1]

कथानक- अलग-अलग कड़ियाँ हैं और प्रत्येक कड़ी में नायक नयी-नयी लड़कियों को नये-नये तरीके से पटाने का सपना देखता है। सपने में कहानी के अनुसार नायक तरह तरह से लड़कियाँ पटाता है ।कड़ी के अन्त में किसी के लात-घूसा मारने से सपना टूटता है। पूरी कहानी स्वप्न के माध्यम से दिखाई गई है।

---

1. -20 सितम्बर 1995 ई0 अमृत प्रभात

धारावाहिक "कुरुक्षेत्र" के निर्माता दिनेश बंशल एवं लेखक सुषित सेन एवं कमलेश पाण्डेय हैं।

भगवती चरण वर्मा के चित्रलेखा पर आधारित है इसमें दो उद्योग पतियों की आपसी खींचतान तथा एक उद्योगपति, एक साधु और एक वैश्या के त्रिकोणीय प्रेम का ताना-बाना बुना है । अभिनेत्री सीमा कपूर का'चुम्बन'प्रमुख है।

धारावाहिक "धूमकेतु" के निर्माता निर्देशक राजेश त्रिपाठी हैं। अर्चना तिवारी की कहानी पर आधारित है।

कथानक-धूमकेतु धारावाहिक के कथानक में दिखाया गया है कि मनोरंजन के साथ-साथ समाज में व्याप्त अन्ध विश्वास, पाखण्ड, जैसे बुराइयों को व्यग्यपूर्ण चोट की गयी है। आज कुकुरमुत्तों की तरह उग आये भविष्य में वक्ताओं की भविष्यवाणियाँ और करोणपति से गरीबदास की कंजूसी को रोचक कहानी में पिरोया गया है। धूमकेतु के शीर्ष गीत अनीश अहमद खान ने लिख है, जिसके बोल हैं---

कोई माला माल यहाँ कोई कंगाल है।
किस्मत के खेल में ये, ग्रहों की यह चाल है।
कहीं रवि, शनि, मंगल, राहु और केतु।
सबकी चाले बदल डाले पूंछधारी धेमकूतु।।

पटकथा संवाद- राजेश त्रिपाठी व शफीक जावेद ने तैयार किया है। आवाज़ कुमार वप्पा की। इसकी प्रमुख भूमिका में रघुबीर यादव, विजय कश्यप, सुलफा, आर्या, हेमन्त मिश्रा हैं।

"मिस्ट्र गधा" हास्य धारावाहिक हैं, इसका निर्माण श्रीमती छाया सिंह ने किया । निर्देशन लकी राज ने किया। कहानीकार योगेश मेहता हैं।

कथानक- सामाजिक बुराइयों जाति, भेद भ्रष्टाचार आदि को खत्म करने की कोशिश है। कहानी में - रामू नाम के धोबी के पास 'राधा' नाम का गधा है और इसी गांव में रहीम कुम्हार नाम के मुसलमान के पास 'लैला' नाम की गधी है दोनों में इश्क होता है, रामू धोबी रहीम कुम्हार के पास अपने राधा गधे हेतु लैला गधी का हाथ माँगता है इसमें रहीम कुम्हार मुसलमान और हिन्दू होने के नाते इनकार करता है। पूरा कमेड़ी सीरियल हैं।

धारावाहिक "उपासना" का निर्देशन एम0 कृष्ण स्वामी ने किया है। इस धारावाहिक में भारतीय नारी जो 'भौतिक माया जाल' में आसक्त होती है। वह दैवी प्रेरणा से ईश्वर की आराधना की ओर मुड़ जाती हैं।

'अलिफ लैला" धारावाहिक में निर्देशन का कार्य आनन्द सागर एवं मोती सागर ने किया है। वह एक काल्पनिक कथा हैं जिसमें ईश्वर की अराधना करती है और दूसरी ओर (आमारी) जादूगरनी अपने कार्य प्रणाली से खुदा की पूजा (अराधना) करने की प्लान करती दिखाई जाती है।

"त्याग" धारावाहिक के प्रस्तुत कर्ता शिबू मित्रा हैं और निर्माता धर्मनाथ पंत हैं। यह धारावाहिक 'पौराणिक कथाओं' पर आधारित है, इसमें मनुष्य को इस सांसरिक माया जाल (भौतिकता) को त्यागने की प्रेरणा मिलती हैं।

धारावाहिक "जुनून" का निर्देशन किरण बेदी ने किया, पटकथा- प्रेम किशोर, सुनील कुमार ने लिखा है । इस धारावाहिक में समय-समय में विशेष-स्थान पर कई प्रकार का जुनून दिखाया गया है यथा- कभी पैसे का जूनून, कभी प्यार (प्रेम) का जुनून छाया रहता है और कभी खोज करने का जुनून दिखाई पड़ता है।

धारावाहिक "पी०ए०साहब" के लेखक राजेश दुबे और निर्देशक मंजुल सिन्हा हैं। इसमें अलग-अलग राजनीति के हथकंड़े दिखाये गये हैं जिसमें प्रत्येक विधायक अपने-अपने फायदे हेतु कार्य करता है। पी०ए० साहब कुर्सी (सत्ता) के परिवर्तन होते ही दूसरे मुख्यमंत्री के पी०ए०साहब हो जाते हैं, यह जानते हुए कि यह आदमी इस पद के योग्य नहीं है वरन् पी०ए० होने के कारण उस व्यक्ति (मुख्यमंत्री) के कहने के अनुसार चलना पड़ता हैं। "यह वर्तमान् राजनीति में खुला व्यंग्य है।"

धारावाहिक "बाप से बड़ा रूपया" का निर्देशन संजय सिंह ने किया है। इस धारावाहिक में न पुत्र और न पुत्रियाँ अपने पिता का ध्यान रखती हैं साथ पैसे की लालच में दिखावा करते हैं। पुत्रियाँ अपने-अपने पसन्द का प्रेमी चुनकर विवाह हेतु अपने होने वाले पति को पिता के घर ले आयी हैं, पिता बीमार हैं पिता की सेवा कोई नहीं करता पिता यह सब कुछ देखकर अपने को घर से अलग कर लेता है।

धारावाहिक "पोस्ट मार्डम" के निर्देशक चित्रार्थ हैं। इसमें दिखाया गया है कि व्यक्ति किस प्रकार स्वार्थ में आकर अपने ही दोस्त की कत्ल करके उसका

दोषारोपण दूसरे के ऊपर करता है। कभी पैसा कमाने का एक उपाय 'विवाह' को बना लेता है और अपने ही पत्नी को मीठा जहर (स्वीट प्वाइजन) देकर मार डालता है और अपने पत्नी के नाम पर बीमा कराये रहता है उसकी पूरी रकम ले लेता और फिर दूसरी तीसरी और चौथी शादी करके इसी तरह मार मार, बीमा के पैसे से करोड़ पति बनता है किन्तु डाक्टर सही परीक्षण करके असली दोषी को पहचान कराके पुलिस के सुपुर्द करा देते हैं।

धारावाहिक "नवरंग" के निर्मात्री मेहरून आदिल हैं और गीतकार तथा निर्देशक मुनीर खान हैं संगीत अमित गुप्ता का हैं तथा इस धारावाहिक की लेखिका मंजू नरेन्द्र हैं।

धारावाहिक "मृगतृष्णा", के लेखक सलीम नबाब, निर्माता जीतेन कच्छी हैं और निर्देशन के0सी0 बोकाड़िया का हैं। "नारी मन" की अतृप्त इच्छाओं का धावाहिक है। इसमें एक मध्यम वर्गीय परिवार जब छोटे शहर से मन में अनन्त इच्छाएँ लिए महानगर में जाता हैं और उसका सामना उच्च वर्गीय समाज के दोहरे मानवीय मूल्य भौतिक साधनों की चकाचौंध और पश्चिमी समाज के मंहगे ग्लेमर से होता है और वह मन ही मन इन सब बातों को अपने जीवन में आत्मसात् करने हेतु कमर कस लेता है । यहीं से प्रारम्भ होता है मानवीय मूल्यों, और नैतिक मान्यताओं का पतन होने लगता है और भावात्मक रिस्तों में दरार पड़ने लगती है। इसके मुख्य भूमिका में शशि शर्मा, विजयेन्द्र घाटकें, मंगल ढिल्लों, आशा सचदेव, मुनमुन सेन हैं।

धारावाहिक "छूमंतर" के निर्देशक स्टुनिल रत्नडे हैं। इसके गीत मंगेश कुलकर्णी ने लिखा है। कथा, पट कथा एवं संवाद बम्बई के कौए फेम शौकत खान और विक्रम गाटके ने लिखे हैं। यह अत्यन्त "हास्य" धारावाहिक है।

धारावाहिक "द ओमेन ऑफ इन्डिया " रवी चोपड़ा का है इसमें झाँसी-रानी की कहानी हैं। हेमामालनी ने निर्देशन किया है।

धारावाहिक "जीवन चक्रव्यूह" के निर्माता रमेश कुलावत एवं पिलीभित दोनों हैं। कलाकार आलोकनार्थ, हिमानी, अनंत महादेवन, सुधीर दलवी और रमेश कुलावत हैं। संगीत निर्देशन कल्याणवर्धन का हैं। यह धारावाहिक 'जीवन संघर्ष' पर आधारित हैं।[1]

धारावाहिक "इंसाफ का तराजू" की लेखिका बानी रानी और निर्मात्री सुमन जेटली तथा निर्देशक प्रमोद सभेल हैं। संगीत महेश ने दी हैं। मुख्य भूमिका में- विक्रम गोखले, बन्टी अनुधबन, दीपक सिन्हा, रजंना शर्मा, हीमायत अली हैं। यह धारावाहिक रहस्य अपराध से भरपूर कानूनी 'दाव पेंच' पर आधारित हैं।

धारावाहिक "सोप ओपेरा" जी0टी0 की पर प्रसारित फिल्म आधारित कार्यक्रम हैं। यह बहुत ही लोकप्रिय हैं।

---

1. अमृत प्रभात 09.11.95, मेट्रों चैनल से प्रसारित।

धारावाहिक "रंग बिरंगे" के निर्देशक विकास भट्टाचार्य और मुख्य एनीमेटर हैं। यह पहला 'कम्प्यूटर' पर बना कार्टून धारावाहिक हैं।

"कानून" धारावाहिक रबी चोपड़ा का है। इस नाटक में कानून के विषय में बताया गया है देश के ऊपर आधारित हैं। कानून कौन बनाता हैं कौन विगाड़ता है।

"धारावाहिक "आप की कहानी" का निर्देशन रविटंडा ने किया है। राज बधमारे ने 'चेलेन्ज' धारावाहिक का निर्देशन किया है।

श्यामबेनेगल ने "तूतीनाम" धारावाहिक का निर्देशन किया है। इसमें शानदार महलों का सेट्स, दरबारियों की चलांकी, लड़ी जाने वाली लड़ाइयों के समय राजमहलों में रह रही बालाओं की खूबसूरती का वर्णन है।

"महाराजा' धारावाहिक का निर्देशन सुनील अग्निहोत्री ने किया, इसका निर्माण इन्द्रजीत सिंह खानिजा, बरजिन्दर सिंह छाबड़ा और कालनिध यादव ने किया।

"जमीर" धारावाहिक के निर्माता संजीव शर्मा हें और निर्देशक राजीव अग्रवाल हैं।

धारावाहिक "अड़ोस-पड़ोस, "छोटे बडे" और 'हम पंक्षी एक चाल के"

धारावाहिक 'दर्द' का निर्देशन नीना गुप्ता ने किया है। नीना गुप्ता-खान-दान, बुनियाद, यात्रा, मिर्जागालिब और गुलगुलसन गुलफाम में प्रमुख भूमिका अदा की है । 'दर्द' में पुरुष से सम्बन्ध रखने वाली संवेदनशील विवाहिता के रूप में उन्होंने एक अलग छाप छोड़ी है।

'युग' धारावाहिक की निर्मात्री सन्ती शौरी है। यह 6 परिवारों की कहानी हैं। आनन्द मोहन का हास्य धारावाहिक "देख भाई देख" लोगों द्वारा काफी पसन्द किया गया है।

धारावाहिक "ब्लैक कैंट कुनिका" के निर्माता जगदीश भारद्वाज और मनोज जायसवाल जी हैं। निर्देशन- जयंत गिलटकर ने किया है। मुख्य भूमिका में फिर-दौस, दादी, उषा, नादकर्णी, विजय आनन्द, राजा जंगबहादुर, हरपाल, बेबी हैं।

'कमांडर' और 'मार्शल' धारावाहिक अधिकारी ब्रदर्स के हैं। "चुन्नी" धारावाहिक बी0आर0 चोपड़ा निर्मित हैं। 'रजनी' धारावाहिक का निर्देशन वासु चटर्जी ने किया है। मिस्टर एण्ड मिसेज' धारावाहिक का निर्माण प्रिया और जलाल आगा ने किया है। "तहकीकात"धारावाहिक का निर्माण प्रिया और राजदान ने किया है। इस धारावाहिक में बात की तह तक जाकर उस बात का पर्दा फास करना दिखाया गया है । यह खोजी पद्धति पर आधारित हैं।

धारावाहिक "नुक्कड़" में दिलीप धवन ने अपनी पहचान बनायी हैं अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

"दिल्ली" धारावाहिक का निर्माण नीना गुप्ता एवं दिलीप धवन ने किया है। आकर्षण केन्द्र "चुम्बन" का दृश्य हैं। इसी प्रकार का चुम्वन परमजीत सेटी और सीमा कपूर का 'कुरूक्षेत्र' धारावाहिक में देखने को मिलता है। यह दोनों सीरियल दिल्लगी, कुरूक्षेत्र बम्बई दूरदर्शन उद्योग में चर्चा का विषय बन गये हैं।

जी0टी0वी0 पर प्रसारित धारावाहिक "कैम्पस" और धारावाहिक "बनेगी अपनी बात" में जिस तरह का खुलापन दिखाया गया है उसमें भी उत्तेजक 'चुम्बन' करार दिये गये हैं।

हास्य धारावाहिक "झूठ बोले कौवा काटे" 'सपनों का शहर" दिलीप धवन का लोकप्रिय धारावाहिक हैं। इसी प्रकार रमेश सिप्पी का धारावाहिक इसी प्रकार रमेश सिप्पी का धारावाहिक 'किस्मत' हैं। यह मनुष्य को भाग्य के सहारे जीने के साथ कर्त्तव्य को प्रेरित करता हैं।

"लाल बुझक्कर काका" धारावाहिक हास्य होते हुए भी 'विज्ञान परख' था।

राकेश चौधरी का धारावाहिक "बिरासत" में स्वीमिंग कास्ट्यूम पहनने के कारण सीमा कपूर इस धारावाहिक में भी चर्चित रहीं।

धारावाहिक "देवी" के निर्माता और निर्देशक एस0 कपूर हैं। यह ढोंग और अंध विश्वास से मनुष्यों को दूर हटने की प्रेरणा प्रदान करता है।

"मजहब नहीं सिखाता" धारावाहिक की निमात्री हैं नीलोफर शमा और निर्देशन अरविन्द स्वामी का हैं। अलग-अलग कहानियाँ हैं सभी कहानियाँ एकता, प्रेम और भाई चारे का सन्देश देती हैं। कलाकार सुधा चन्द्रन, गिरजा शंकर, गजेन्द्र चौहान, कप्पू, सुनील सिन्हा, हैं।

धारावाहिक 'फ्लापशो' का निर्देशन और लेखन कार्य 'जसपाल भट्टी' ने किया है। हास्य से परिपूर्ण है। जसपाल भट्टी स्वयं नायक का किरदार अदा किया है। बहुत लोकप्रिय धारावाहिक था।

धारावाहिक "मैडम एक्स" का निर्माण रूपाली विजन, मंजू सिंहल और दर्शना जैन ने किया है। निर्देशन आर0 सी0 सिंहल ने किया है।

धारावाहिक 'जलवा' और 'फिल्मोनिया के कलाकार है- प्रेम दिल्ली वाला, माधवी, जीतू सिंह, सीमा रत्नाकर, कंचन, शिल्पी हैं। जलवा व्यक्तित्व पर केन्द्रित हैं।

पल्लवी जोशी ने 'जंगली बूटी' धारावाहिक का निर्माण किया है। पल्लवी

जी मृगनयनी, कब तक पुकारू, कथासार, यात्रा आदि धारावाहिकों में मुख्य भूमिका अदा की है।

"लार्ड बुद्ध" के निर्देशक चन्द्रशेखर एवं रामचन्द्र हैं। अरूण गोविल अभिनेता, बुद्ध का किरदार किया है।

"लव इन डेजर्ट" धारावाहिक के लेखक और निर्देशक भानू भारती हैं। लव इन डेजर्ट कहानी राजस्थानी 'ढ़ोला मारू' की कहानी पर आधारित हैं । कहानी कुछ इस तरह है-----

राजा नल (युद्धिष्ठर) रानी दयावती (मनीषा राम सिंहानी) इन्द्र के प्रकोप से ग्रस्त अकाल प्रदेश को छोड़कर राजा पिंगला (अशोक लाट) के यहाँ नौकरी करते हैं। एक दिन जब राज खुलता हैं तो पिंगला राजा को दुःख होता है। प्राश्चित करनेके उद्देश्य से वह अपने होने वाले बच्चे की शादी का प्रस्ताव रख राजा नल को सम्बन्धी बना लेता है। पिंगला राजा के लड़की व नल के लड़का होता है, पिंगला अपने लड़की नाम 'मारू' का नल अपने लड़के का नाम 'ढोला' रखता है। ढोला जब जवान होता है तब उसकी शादी मालवानी (सुभागी) से हो जाती है, जब मालवानी को ढोला के बचपन के विवाह की बात का पता चलता है तो वह कहती है उसका हक किसी और को मिले। पिंगला राजा सन्देश पर सन्देह करता है, किन्तु मालवानी व उसका भाई (लक्ष्मीकान्त) नवरगढ़ आने वाले सन्देश वाहक को मरवा देते हैं। पिंगला

राजा का मित्र रामसिंह सुभरा से मारू के विवाह की सलाह देता है, परन्तु ढाढ़ी किसी तरह ढोला का सन्देश भेजते हैं । अनेक मुश्किलों के बाद यहाँ तक सुभरा सोढ़ा द्वारा 'शराब में जहर' मिलाकर मारू को मारने की साजिस से भी मारू बच जाती है अन्त में ढोला मारू मिल जाते हैं। इस तरह ढोला मारू को केन्द्र में रखकर "लव इन डेजर्ट' धारावाहिक का निर्माण हुआ है।

हेलामाहिनी का धारावाहिक 'उर्वसी' हैं। इस धारावाहिक में कार्य करने वाले निदेशक , नायक नायिका आदि इस प्रकार हैं- चोपड़ा, सुभाष घई, जैकी श्राफ, शेखर सुमन, सतीश शाह, रामानन्द, शम्मी कपूर, राजेन्द्र कुमार, हेमामालिनी, रीना राय, शर्मीला टैगोर, जूही चावला, पूनम ढ़िल्लो, कुल भूषण खरबडा, सिन्हा, डैनी, परीक्षित साहनी, प्रेम चोपड़ा, वर्षा उसगावंकर, सोनूवालिया, सुरेश ओबेराय, मीनाक्षी शेषाद्रि, नीलम, भाग्यश्री, यश चोपड़ा, जितेन्द्र एवं अनुपम खेर हैं।

के0पी0 सक्सेना के "आदाब अर्ज" और "यह हुई न बात" धारावाहिक बहुत चर्चित हुए। 'यह हुई न बात' धारावाहिक में अंधी और अर्ध नग्न सांस्कृतिक दौड़ का गहरा असर पड़ा है। स्वदेशी और विदेशी टी0वी0 चैनलों पर, हिन्सा, सेक्स जायदाद के झगड़ों से अलग हटकर एक भारतीय पारिवारिक धारावाहिक का प्रभाव छोड़ा हैं।

"जुबान अपनी अपनी" हास्य धारावाहिक हैं। इसका निर्माण रणजीत

कोहली व प्रतिपाल सिंह ने किया है। निर्देशन मोहन भाखड़ी ने किया है। 'लारा लप्पा' धारावाहिक भी इन्हीं लोगों का हैं। यह धारावाहिक पंजाबी गीतों पर आधारित हैं। निर्देशन का कार्य भी मोहन भाखड़ी ने ही किया है[1]।

'विश्वामित्र' धारावाहिक के निर्माता, निर्देशक दक्षिण के प्रसिद्ध दायरी नारायण हैं, और लेखक डॉ0 राही मासूम रजा हैं। पात्र - गोविल, शान्ति प्रिया, अरविन्द्र त्रिवेदी, सुरेन्द्र पाल, मुकेश खन्ना, मेनका, धनुक प्रिया है। इस धारावाहिक में महाराज 'इन्द्र', मेनका को धरती पर भेजते है विश्वामित्र की परीक्षा लेने, इसमें दुष्यन्त और शाकुन्तला के प्रेम प्रसंगों का जिक्र किया गया है।

जी0टी0वी0 पर प्रसारित "1996 ए लव स्टोरी" धारावाहिक में निशान्त और निम्मी पति और पत्नी हैं पर दोनों के पास एक दूसरे के लिए समय नहीं है ऐसे में दोनों 'कम्प्यूटर' लेकर अपनी जरूरते पूरी करते हैं, इनके कम्प्यूटर भी 'जवान' हैं और आपस में इश्क करने लागते हैं जिससे कई मजेदार स्थितियाँ पैदा होती रहती हैं। इसकी मुख्य भूमिका में सचिव खेडेकर प्रजाविन्त, देशमुख, निनाद, कपूर आदि हैं।

"इटस माई शो" धारावाहिक की निर्देशिका हैं कैरेल और संचालन किया है तेजन दीवान ने[1] (जी0टी0वी0 पर प्रसारित)

---

1. राष्ट्रीय सहारा दि0 11.01.1996 ई0, साभार.

धारावाहिक "कमाल है कमाल" मैट्रो चैनल पर 13.01.96 ई0 से प्रसारित हो रहा है। कथा वस्तु इस प्रकार है- एक लड़का अपनी होने वाली पत्नी को बेसब्री से एक रेस्टोरेन्ट में इन्तजार करता है, उसकी प्रेयसी वायदे के मुताबिक आती है मगर लड़का उसे पहचानने में भूल कर जाता है, इस कारण प्रियतमा रूठ जाती है। वह उसे मनाने के लिए उसके साथ आयी उसकी छोटी बहन को आइसक्रीम देकर मनाता है तो कभी पैसा देकर । जब वह उसे मना लेता है तब प्रियतमा अपने अतीत के पन्ने पलटती है जिसे सुनकर वह नाराज़ हो जाता है मगर प्रेयसी के बार बार दुलार करने पर मान जाता है। हास्य से परिपूर्ण है। इसमें निम्न गीतों का समावेश हैं ---

"किसी दिन बनूगी मैं राजा की रानी जरा फिर से कहना"

"अम्मा देख तेरा मुंडा बिगडा जाय'

जाती हूँ, जल्दी हैं क्या-----

मिर्ची रे कमाल कर गयी ------

धारावाहिक "माइन्ड वाच" में ड्रग्ज के कारण होने वाले शारीरिक, मानसिक और आर्थिक समस्याओं को दिखाया गया है साथ ही नशे से मुक्ति पाने के विभिन्न कारगार उपाय बताये गये हैं। यह धारावाहिक जन साधारण हेतु एक सन्देश है।

"पत्थर की लकीर" धारावाहिक का निर्माण और निर्देशन भारती भट्ट ने किया है।

मनजीत सिखवाल के धारावाहिक "मान गये चाचा" इसमें जुवैद खान कमेड़ी से भरपूर भूमिका की है।

"वाह रे जिन्दगी" धारावाहिक अमर देवगड़े द्वारा ए0ए0 प्रोड़क्शन के बैनर तले बना हैं। इसके निर्देशक और लेखक- मल्हार सिंह एवं पप्पू भरूच हैं। (ए0टी0एन0 पर प्रसारित)।

धारावाहिक "तू -तू मैं - मैं " हास्य है। इसकी निर्देशिका हैं- रीमा सचिन। रीमा का किरदार एक सास का है । सास-बहू मे नोंक-झोंक चलती रहती है।

"श्रीमान-श्रीमती" धारावाहिक में रीमा की भूमिका एक परम्परावादी भारतीय पत्नी की है। वह अपने पति के हर क्रिया कलापों पर नज़र रखती हैं।

"अपने अपने सूर्यमुखी" धारावाहिक का प्रसारण मैट्रो चैनल पर 17.01.96ई0 से रहा है। इसके निर्देशक डाॅ0 विश्वनाथ दीक्षित हैं। लेखिका-सरोजनी अग्रवाल हैं। संगीत चन्द्र कमल की है।

"जयवीर हनुमान" धारावाहिक का निर्माण पद्मालय ने किया है। पद्मालय फिल्म कम्पनी तेलगू की संस्था हैं। इसका निर्देशन - टी0एस0 राव ने किया है। हनुमान का किरदार दारासिंह के पुत्र 'बिन्दू' निभाया है स्वयं दारासिंह हनुमान के पिता रूप में हैं। राम की भूमिका अरूण गोविल ने की हैं। बाल हनुमान में कई कलाकार हैं। धारावाहिक की पट कथा परवेज ने लिखी हैं।

"मंथन" धारावाहिक का शीघ्र प्रसारण होने वाला हैं। डाॅ0 चन्द्र प्रकाश-

का यह मंथन धारावाहिक 104 कड़ियों में है। इसके निर्माता वीरेन्द्र प्रसाद अग्रवाल और वेद शास्त्री पण्डित जी हैं। श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा लिखित ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। इसकी संगीत 'असित देशाई' ने दी है। प्रमुख पात्रों में - मनोहर सिंह, रघुवीर यादव, नीना गुप्ता, रागनी शाह, राजेशपुरी क्रिट्टी गिड़वानी आदि हैं।[1]

"आसमा की ओर" आने वाला नया धारावाहिक हैं। यह 13 भाग में बना है। इसके निर्माता और निर्देशक एन0के0 माथुर हैं। यह धारावाहिक आकाश में उड़ने वाले जहाज़ और उनको हैरत में डाल देने वाले कर्तव्यों पर आधारित हैं। बच्चों के मन में यह जिज्ञासा शुरू से बनती है;, कि यह जहाज कैसे उड़ता है और कैसे नीचे उतरता है। वह कभी अपनी माँ से और कभी अपने बुजुर्गो से पूछता है। बच्चा जब 'पैलेट' बनता है तभी उसकी जिज्ञासा शान्त होती है।[2]

---

1. अमृत प्रभात दि0-26.12.1995 साभार।
2. अमृत प्रभात दि0 26.12.95 ई0

"स्वाभिमान"

यह धारावाहिक यद्यपि उत्सुकता बनाये रखने में सक्षम है, किन्तु इसमें भारतीय संस्कृति की अत्यधिक अवहेलना की गयी है। धारावाहिक पूर्ण रूपेण पाश्चात्य संस्कृति के रोग से ग्रस्त है। पाश्चात्य परिधानों का भी खुलकर प्रयोग दिखाया गया है। हमारे भारतीय समाज में पति - पत्नी के सम्बन्ध तथा स्त्री-पुरूष के सम्बन्ध भी अविश्वास की स्थिति में बड़े ही नाजुक दौर से गुजरते हैं, फिर धारावाहिकों, जो कि परिवार के सदस्यों के साथ बैठकर देखे जाते हैं। 'दोस्ती' का सम्बन्ध सर्वमान्य हो गया है। 'पत्नी' चाहे कितनी ही पीड़ित क्यों न हो, किन्तु 'पर पुरूष' सम्बन्ध सर्वथा अनुचित है।

यद्यपि निशि को एक पत्नी के रूप में दिखाया गया है जो कलहवश पति महेन्द्र द्वारा उपेक्षित हैं। यही नहीं उसके पति महेन्द्र का एक अन्य स्त्री शीला से सम्बन्ध भी दर्शाया गया है, किन्तु भारतीय नारी इस बात को सहज स्वीकार नहीं करती है ऐसी स्थिति में मात्र पर पुरुष सम्बन्ध ही एक उपाय है। पति से बदला लेने का फिर निशि तो स्वयं दो बच्चियों की माँ है। उसके द्वारा गलत रास्ता अपनाया जाना इस देश की महिलाओं की नजर में निशि को 'पतिता' ही साबित करता हैं। न जाने कितनी ही भारतीय महिलाएँ इस 'हद' से पीड़ित होते हुए भी सदाचरण करते हुए जीवन बिता देती हैं। पति द्वारा की गयी उपेक्षा का बदला लेने का यह कुत्सित रूप "स्वाभिमान" के स्तर को गिराने के लिए काफी है।

बताना चाहती हैं ? अधिकांश नारी पात्रों के चरित्र को धन को प्राथमिक्ता देने वाला तथा भ्रष्ट दिखाया गया है, चाहे वह स्वेतं लाना बनी किट्टू गिडवाणी हों, रंजना-देवी बनी अन्जू महेन्दू हो, निशि के रूप में 'कोणिका' हों अथवा देविका या 'रश्मि'। कोई भी स्त्री पात्र अभी तक मात्र 'पूजा' को छोड़कर किसी एक पर समर्पित दिखाई ही नहीं देती। केवल धन और नाम कमाने में 'स्वाभिमान' सीरियल की स्त्रियों ने भारतीय नारी को धन और यश रूपी चरित्र के सामने ताक पर उठाकर रख दिया है। 'स्वेतलाना' कथानक की नायिका हैं जो गुणवती स्त्री हैं तथा निशि भी जीविकोपार्जन में समर्थ महिला हैं, तब फिर ऐसा मानसिक पतन क्यों ? जिस पति के धन के बल पर वह 'ऐश' कर रही है उससे तो हर दर्जे की चिढ़। यदि धन त्याज्य नहीं हैं तो वह चिढ़ क्यों ? यह बात भारतीय जन मानस को नहीं पचती ; यदि स्त्रियाँ ऐसे पति तथा उससे सम्बन्धित सभी ऐशो आराम को त्यागकर स्वअवलम्बी जीवन बिता कर दिखाता तो निश्चय ही "स्वाभिमान" शब्द भारतीय परिवेश में ही सार्थक करती।

अन्य धारावाहिक जैसे जी0टी0वी0 के "परम्परा" इत्यादि में तो उच्च घरानों की तथा कथित 'कुलबधुओं" ने भारतीयता का कुछ तो ध्यान रखा ही है। 'स्वाभिमान' धारावाहिक में तो धूमपान, सुरापान इत्यादि कुल बधुओं द्वारा प्रदर्शित कराके इसे पूर्ण रूपेण पाश्चात्य सांस्कृति की ओर ढकेला गया है; बिना वजह पाश्चात्य नृत्य करते सभी पात्र कभी-कभी हास्यास्पद लगने लगते हैं।

पुरुष पात्रों में महेन्द्र जो अभी तक पत्नी सहित मात्र तीन स्त्रियाँ के ईर्द-गिर्द घूम रहे थे, समझदार होकर भी इसी मूढ़ में नज़र आते दिखाई देते हैं। इसकी कोई आवश्यकता स्पष्ट नहीं नज़र आती।

स्वाभिमान के मुख्य नायक "रिषभ मल्होत्रा" भी पूजा और मेघा दोनों में माथा पच्ची कर रहे हैं और दर्शक भी स्वाभिमान की सार्थकता ढूढ़ता रहता है। कुल मिलकार यह धारावाहिक देखने से पता लगता है कि धारावाहिकों का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है।

सई परांजये द्वारा लिखित एवं निर्देशित "पार्टियाना" धारावाहिक मैट्रो चैनल पर 12 सितम्बर 96 से प्रसारित किया गया यह धारावाहिक कोई सन्देश नहीं नहीं देता। इसकी कड़ी में एक पार्टी होती है और इसका मेजबान कोई प्रसिद्ध व्यक्ति होता है, उसमें खेल भी और प्रत्येक पार्टी का लोकेशन अलग रहता है। निजी गार्डन, जहाज के डेक, फाइव स्टार होटल, शिकार गृह, समुद्र तट का पिकनिक स्थलों पर पार्टियाँ आयोजित होती हैं। हर पार्टी का विषय भी दूसरा रहता है।

पहली कड़ी के मेजबान रोशन सेठ थे एवं अन्य कड़ी मेजवानी किट्टू गिड़वानी ने किया हैं। एक कड़ी में 2 नकाबपोश डाकू आकर सभी को आतंकित करते हैं, बेद और कमल चिन्तित हैं उनकी किशोर उम्र की बेटियाँ राली और पाली बाहर नहीं निकलती हैं । पार्टी के रंग पर आती हैं और मेहमान साइमन सेज खेलते हैं। वे नकाबपोश के रूप में कोई नहीं, बल्कि दोनों बहने हैं। पार्टी में रंगलाने के लिए ऐसा किया था। असली नकाब पोश बाद में दिखाई पड़ते हैं तो उन्हें पकड़ लिया जाता है।

इसी प्रकार "मेरी सिक्स अप" में पार्टियों की तारीख और जगह गड्डमड्ड

पर आधारित था । "विक्रम और बेताल" धारावाहिक ऐतिहासिक एवं काल्पनिक घटनाओं पर आधारित है। "हम लोग" दादी माँ जागी" जैसे प्रारम्भिक धारावाहिक बहुत लोकप्रिय हुए। सन् 1985 ई0 से तो हर सप्ताह एक धारावाहिक प्रसारित होने लगा।

धारावाहिकों की इस धमा चौकड़ी में सन् 1987 ई0 में रविवार की सुबह 9 बजे से "रामायण" धारावाहिक ने सचमुच ही क्रान्ति फैला दी। यह धारावाहिक पौराणिक कथाओं पर आधारित था। दूरदर्शन पर 1988-89 ई0 में टी0वी0 में प्रसारित हुआ। 'रामानन्द सागर' का निर्देशन उच्च कोटि का दिखा, नायक 'राम' की भूमिका में अरुण गोविल और सीता की भूमिका दीपिका ने निभाई। यह धारावाहिक सभी लोगों को प्रभावित किया, ऐसे धारावाहिक 'आदर्श समाज' के निर्माण में अत्याधिक सहायक होते हैं।

धार्मिक मान्यताओं और खुलेपन के उदाहरण के लिए ही कह देना काफी होगा कि "चाणक्य" जैसे ऐतिहासिक धारावाहिक में भगवा झण्डों के फहराने की बात को लेकर साम्प्रदायिकता के नाम पर काफी हो हल्ला मचाया गया । निर्देशन बी0आर0 चोपड़ा ने किया है।

"कैपिटल ए" धारावाहिक के निर्माता संजीव भट्टाचार्य हैं। इस धारावाहिक में 'विवाहेत्तर सम्बन्धों के कारण हत्या और फिर उस हत्या की सजा किसे कैसे भोगनी पड़ती हैं इसी का उद्धरण हैं।' विदेशी तर्ज पर निर्मित हैं। सभी पात्रों को विशेष

तरह का मेकअप दिया गया है। काल्पनिक कहानियों के बीच रोजमर्रा के जीवन के कुछ पहलुओं और मुद्दों का भी समावेश है। संगीत गायन जगमोहन का है। अभिनय करने वाले पात्र- राजीव वर्मा, पपिया सेन गुप्ता, संजीव सेन, संदीप अग्रवाल, मल्हार, सपना भट्टाचार्य, रितु दीपक आदि हैं।

"जहर" धारावाहिक प्रसिद्ध फिल्म निर्माता 'सुधाकर बोकाडे' का है इसका निर्देशन नमस्कार फेम कुलदीप वक्षी ने किया है। कुछ सत्य घटनाओं को लेकर इसकी रचना हुई है।

"मिस मेरी" धारावाहिकों के निर्माता उसमान खान हैं। इस धारावाहिक में "नौकरी के लिए एक पुरुष द्वारा नारी रूप धारणा करने को हास्य एवं व्यंग्य के साथ प्रसारित किया गया है।" एक तरह से मनुष्य का स्वभाव बन चुका है कि हर जगह कार्य करने में लड़कियों को ही 'प्राथमिकता' दी जाती है परिणामतः योग्य पुरुषों को काम नहीं मिल रहा। इसी बात को हास्य व्यंग्य के सहारे पेश किया गया है।

"अहसन" धारावाहिक कॉस्ट्यूम डिजायनर से निर्देशक बने सलीम आरिफ ने प्रस्तुत किया। यहा एक पारिवारिक धारावाहिक हैं। इसकी 'काव्यात्मक' प्रस्तुती हैं।

'धर्मात्मा" धारावाहिकों का निर्देशन संजयशाह ने किया हैं। इसमें एक

ईमानदान व्यक्ति के 'डान' बनने और फिर अपने ही बेटे के कारण धर्मात्मा बनने की दास्तान हैं।।

इस धारावाहिक में दो दोस्तों (पत्रकार, डान) के विचारों का टकराव बाप बेटे के बीच को सैद्धान्तिक मत-भेद, अपराध- रोमांस के साथ-साथ अनचाहे व्याह की कड़वाहट की दास्तान हैं। इसमें एक मुकाम आता है कि जब डॉन एक इंसान बनने का संकल्प लेकर अपनी सारी दौलत बांटकर समाज व देश से अपराध को खत्म करने के लिए काम करने लगता है। कलाकार है-: शशि कपूर, टीनू आनंद, पंकज धीर, वीना, हर्षा मेहरा, सुविराज, उत्कर्ष नायक अली खान अन्य।

"अगले हफ्ते" धारावाहिक के निर्माता केहुल्व कपूर तथा लेखक व निर्देशक सनी कपूर हैं। इस धारावाहिक में फिल्मी दुनिया की चकाचौंध के पीछे तड़प व व्यथा की कथा है। भागकर बम्बई अपने वाले नौजवानों के लिए संदेश भी है। इस धारावाहिक में झूठे आश्वासनों, लड़कियों के दैहिक शोषण को भी प्रस्तुत किया गया है। संगीत 'उषा खन्ना' का है। कलाकार हैं- बीजू खोटे, मनमौजी, यूनुस परवेज, बीरबल, जानी जीवर, सनी कपूर, सीमा व अन्य।

"दूर-दर्शन और विदेशी चैनलों के धारावहिक, फिल्में, और गीत-संगीत एक जैसे कुसंस्कारित कर रहें है।"

कुछ माह पूर्व की बात है सैटलाइट व केबल चैनल को देश में प्रवेश को रोकने हेतु दूर-दर्शन ने संस्कृति को मुद्दा बनाया था। दूर-दर्शन का तर्क था कि विदेशी चैनलों के प्रवेश से भारत की संस्कृति पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और नैतिकता दूषित हो जायेगी, वरन् विरोध का कारण विशुद्ध 'आर्थिक' था, क्योंकि संस्कृति का रोना मात्र इसलिए रोया था, वरना " साता बारबारा" का विरोध करके उल्लास व एम0टी0वी0 के प्रसारण का औचित्य क्या ? जबकि दूरदर्शन और विदेशी चैनल तकरीवन एक से धारावाहिक कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं। इस बात की समीक्षा जरूरी हो जाती है। कि डब्लू डब्लू एफ स्ट्रीट लीगल, जैक दरिप्पर आदि कार्यक्रमों ने जनता की मानसिकता विशेषकर बच्चों पर कैसा प्रभाव पड़ता हैं। भारत पर कोई व्यापक अध्ययन नहीं है, परन्तु विदेशों पर उसका अध्ययन हुआ है उनके आधार पर ज्ञात होता है कि अपना पंसदीदा कार्यक्रम देखते हुए बच्चे "हिप नोटिक ट्रांस" जैसी अवस्था मे जाते हैं। इस किस्म के बच्चों का बौद्धिक विकास कम हो पाता है । इसी सिलसिले में गाडेन एकल बेरी और जैकसैन्स अपनी पुस्तक "चिल्ड्रेन एंड टेलीविजन" में लिखते हैं कि जो बच्चे टेलीविजन अधिक देखते हैं वे उन बच्चों की तुलना में कम क्रिएटिव होते हैं जो टेलीविजन नहीं देखते हैं।

इंडियन अकादमी पेंडट्रिक्स (दिल्ली शाखा) के सचिव डॉ0 हरीश छेलानी के शोध पत्र को लिया जा सकता है। डॉ0 हरीश जी ने 343 बच्चों के बारे में 210

परिवारों का अध्ययन किया । उससे पता चलता है कि 78% बच्चे विज्ञापन के सन्देशों से प्रभावित होते हैं।

5 से 10 वर्ष की आयु वर्ग के 58% बच्चों में हिंसात्मक प्रवृत्ति विकसित होती है। 10 से 15 वर्ष के आयु के बच्चों में हिंसात्मक प्रवृत्ति 70% थी।

प्रतिदिन दो घण्टे या उससे अधिक टेलीविजन देखने वाले बच्चों में स्कूली प्रदर्शन में काफी गिरावट आ जाती है।

बावन (52%) प्रतिशत मांता-पिता अपने बच्चों के साथ टेलीविजन देखते हैं, लेकिन इनमें से कुछ प्रतिशत ही कार्यक्रमों पर अपने बच्चों से विचार विमर्श करते हैं। बच्चों में हिंसक प्रवृत्ति के अतिरिक्त 'उपोभक्तावाद' भी बढ़ रहा है। आज बच्चे डब्लू0 डब्लू0 एफ0 देखने के बाद मारपीट तो करते ही हैं इस कार्यक्रम में बने ताश व अन्य खेल भी खरीदने हेतु लालायित रहते हैं। अपराध करने और उसमें प्रयुक्त तरीका टी0वी0 कार्यक्रमों की देन है। विशेषज्ञों का मानना है कि यह अभी और आगे बढ़ेगा।

आज बाजार में बीडियों काम्पपैक्ट डिस्क भी उपलब्ध है। "प्लेब्वाय", "लवटेकनिक" आदि नामों से उपलब्ध सीमा अमूनन ब्लू फिल्मों की तर्ज पर ही होती है। कई चैनल साफ्ट, सैक्सी कार्यक्रम तो दिखा ही रहे हैं। जैसेकि जैन टी0वी0 की शानिवार रात में प्रसारित फिल्में इसी श्रेणी में आती हैं।

"धारावाहिकों एवं फिल्मों का दुष्प्रभाव"

किसी भी राष्ट्र की सबसे बड़ी पूँजी है उसकी 'युवा शक्ति'। नैतिक एवं चरित्र-वान युवक राष्ट्र के बहुमुखी विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। आज़ादी से लेकर आज तक कभी भी देश के ऊपर संकट के बादल मडराये हैं, तब 'युवा वर्ग' संघर्ष के मार्ग में सबसे आगे रहा है; लेकिन अब इस बात में इनकार भी नहीं किया जा सकता है कि हमारे देश में नवयुवकों के नैतिक चारित्रिक पतन की समस्या अति गम्भीर हो चुकी है। युवा वर्ग शिक्षित हो या अशिक्षित, दोनों में यह संकट प्रभावी हैं। भारतीय युवकों में उत्पन्न हुए इस मौलिक संकट के लिए पूर्ण रूप से फिल्में जिम्मेदार हैं, क्योंकि यह फिल्में युवा पीढ़ी में अपराधिक भावनाओं को बढ़ावा दे रही है।

आज के इन धारावाहिकों, फिल्मों एवं उसके परिणामों को देखते हुए यह सहज ही कहा जा सकता है कि भारतीय फिल्मों का युवा वर्ग मन-मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। आज फिल्में निश्चय ही हिन्सा, अपराध एवं पलायन-वाद को बढ़ावा दे रही हैं। फिल्मों में अश्लीलता भी दिनोदिन बढ़ती जा रही है। सड़कों और गलियों एवं घरों में हर बच्चों की जुबान पर रोमाण्टिक फिल्मी गानों के बोल छाये रहते हैं। फिल्मों के प्रचार में बढ़ा चढ़ा कर छापे जाने वाले अखबारों के उत्तेजक विज्ञापन युवा मन मस्तिष्क को विकृत करने में तनिक भी कोर-कतर नहीं उठा रहे हैं। हमारी संस्कृति सभ्यता कहीं खो गयी हैं। माता-पिता के शब्दों का

स्थान फिल्मों के अन्धानुकरण में "माम" एवं "डैड" ने ग्रहण कर लिए। परिवार समाज एवं देश के प्रति प्रेम, त्याग की भावनाओं के विघटन का कारण आज फिल्में ही हैं। समाज में बढ़ रहे अपराध, हत्या, बलात्कारी, तस्करी, विदेशी फैशन की दौड़ तथा घर से पलायन के नये नये तरीके फिल्मों के माध्यम से दर्शक प्राप्त करता है।

आज अधिकांश फिल्में मात्र मनोरंजन एवं व्यावसिकता की भावनाओं को लेकर बनती हैं, उन्हें कुप्रभाव से कोई मतलब नहीं । सेंसर भी उसे पास कर देता है। युवा वर्ग उसे देखता है तो उसका सीधा असर उसके मानस पटल पर पड़ता है। आज के अधिकतम् फिल्मों को कहा जाए कि आज फिल्में गुण्डों एवं अपराधियों के लिए ऐसा स्कूल बन चुकी हैं, जहाँ अपराध, अपहरण, बलात्कार, तस्करीं तथा डकैती सिखाई जाती हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कारण कि समाज में आये दिन जो भी अपराध हो रहे हैं तो उसके तौर- तरीके फिल्मों से ही प्रेरित रहते हैं। फूहड़ तथा द्विअर्थी संवादों एवं गानों के लिए हमारे कुछ निर्माता तथा निर्देशकों को तो महारत. हासिल है। आज का भारतीय सिनेमा संस्कृति एवं सभ्यता को तहस-नहस कर रहा है। युवा वर्ग को दिशाहीन बनाने में वह पीछे नहीं रहा।

आज की फिल्मों, धारावाहिकों का युवा पीढ़ी पर जो बुरा प्रभाव पड़ रहा है। उसके लिए फिल्म-धारावाहिको के निर्माता ही नहीं; बल्कि पाश्चात्य सभ्यता के समर्थक दर्शकगण और 'पांच सितारा' संस्कृति वाले दर्शक जिम्मेदार हैं, जो सेक्स,

अपराध, मारधाड़ की फिल्मों के अतिरिक्त साफ सुथरी कला फिल्में अधिकांशतः सफलता की कसौटी पर असफल हो जाती हैं, ऐसी ही दशा में निर्माता विवस होकर नये दर्शकों की मांग को देखते हुए मसाला फिल्में और धारावाहिक बनाने लगते हैं जिसका दुष्प्रभाव समाज में देखने को मिलता है।

"सनसनी भरे गीत-संगीत का दुष्प्रभाव"

हर युग में फिल्मी गीत, संगीत, अधिकांश लोगों को प्रभावित किया है। सहगल से लेकर कुमार शानू के गाये गीतों पर पीढ़ी थिरकती मचलती रही है। भले ही पुराने गीतों में दर्दीला स्वर हो या प्रेम का स्फुरण, लेकिन उसे गाकर-सुनकर लोग झूमते रहें और गुनगनाते रहें हैं, आज का संगीत युग के मिजाज़ के अनुसार तेज रफ्तार वाला है, लोगों में तेजाबी असर डालने वाला है।

दूर-दर्शन में गीत रचनाओं का विशेष महत्त्व रहा है और इस लिहाज से कुछ फिल्मी गीतों का अवलोकन करें तो हममें से शायद बहुत को सही नाम पता न मालूम होगा जिनके गीत 'अबोध बच्चों' की जुबान को तो कैद किया ही बच्चों युवाओं को कुसंसकारित करने को उकसाया है और बड़े-बूढ़ों को मन मसोस कर रह जाने को मजबूर कर दिया है। यदि इन गीतों को टी0वी0 पर देखे तो निस्संदेह दांतों तले उंगली दबानी पड़ेगी, नायक-नायिकाओं का नृत्य अभिनय साधना की पराकष्ठा का अनुभव करके।

जी हाँ, अब सुन सुन अरे बाबा सुन, इस चंपी में बड़े-बड़े गुन जैसे मनोरंजन करने वाले गानों का जमाना कोसों पीछे छूट कर रूक-रूक रूक, अरे बाबा रूक, ओ माई डार्लिंग गिव मी लुक, तक पहुँच गया है। अभी तक चोली के पीछे क्या है-- का बवंडर थमा नहीं कि खटिया बोले चूं चूं चूं -- का जलजला आ गया। तू चीज

बड़ी है मस्त-मस्त का नशा उतरा: नहीं कि सरकाय लो खटिया जाड़ा लगे कि ह.र.राहट आ गयी। चुम्मा चुम्मा दे दे, अंटरिया पर लोटन कबूतर, मेरे हाथों में नौ नौ चूड़ियाँ..। एक, दो, तीन, चार------बारह तेरह , सुबह सुबह जब खिड़की खोलूँ ---- हरे दुपटे वाली जानम रूक जाना। साढ़े तीन बजे मुन्नी जरूर मिलना------। आ जाना आ जाना ......। निगोडी कैसी जवानी है.....। लडाय लेओ अखियॅा वो लौडे राजा। रेशमी जुल्फें, ये शरबती आँखे। रात को लेती हूँ.....। खडा हैं खड़ा है......। नथनिया पे गोली मारे.......। हाय सेक्सी, हलो सेक्सी क्यों बोलूँ...। हुस्न है दिवाना.......। देखो लड़की दीवानी......। सैंया ने ऐसी बौलिंग करी.....। इत्यादि गाने दर्शकों श्रोताओं के बीच सनसनी फैला रखी है।

फूहड़ गानों की इस होड़ ने साबित कर दिया है कि आज गीतकारों को अपनी पूर्वावर्त्ती परम्परा की कोई परवाह नहीं है। शोहरत और दौलत के लिए वे कुछ लिख या गा देने पर तुले हुए हैं। आज की नायिकाएँ चाहे वह, तब्बू हों, करिश्मा, रवीना, शिल्पा, या जूही चावला, माधुरी दीक्षित हों वे भी सब कुछ दिखाने में अमादा हैं उनमें होड़ सी लगी हुई है कि कितना ज्यादा एक्सपोज हो जाऊँ। नायिकाएँ अब जिस्म थिरकाने से आगे बढ़कर कुछ गुदगुदाने भड़काने वाली इशारे हरकते भी करने लगी हैं। बोल राधा बोल, के तू तू तारा, तोडो न दिल हमारा। इन गीतों के इशारे में क्या अर्थ निकलता है। इससे दर्शकों को क्या संदेश पहुँचाना चाहते हैं। जबकि इस गाने में शाब्दिक फूहड़ता स्पष्ट नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि ये तमाशा सिर्फ़ नायिकाएँ ही करती हैं, गोविन्दा, सैफ, शाहरूख खान, या चिरंजीवी कोई किसी से

कम नहीं है। चाहे गोविन्दा पैंट उतारे या चिरंजीवी तलवार की नोंक जूही चावला की नाभि से सटाकर "चांद पुराना लगता है, रूप सुहाना लगता है, गाये मतलब सिर्फ दर्शकों को उत्तेजित कर सीटी बजवाना ही है।

कुल मिलाकर हिन्दी धारावाहिकों, फ़िल्मों में ऐसे फूहड़ सनसनी भरे गीतों के स्थान मिलने से भविष्य की रचनात्मकता का शुभ संकेत कतई नहीं माना जा सकता ।

आज के सिने-दर्शक यदि साफ-सुथरी, स्वस्थ सुरुचि पूर्ण एवं कला फ़िल्मों एवं धारावाहिकों को प्रोत्साहन देना शुरू करके अपराध हिंसा, सेक्स प्रधान फ़िल्मों को देखना बन्द कर दे या उनका खुलकर बहिष्कार कर दें तो अपराध बढ़ाने वाली फ़िल्मों का निर्माण स्वतः बन्द हो जायेगा। दर्शकों में प्रायः यह देखने में आता हैं कि वह फ़िल्मों की अच्छाई को छोड़कर केवल बुराई को ग्रहण करते हैं। यह फिल्मों का दोष नहीं और न ही अश्लील धारावाहिकों का, बल्कि दोष दर्शकों की ग्रहण क्षमता का है। सनसनी भरे गीत संगीत के स्थान पर चरित्र प्रधान गीतों की आवश्यकता है जो गिरते हुए समाज के स्तर को उठाने में सहायक सिद्ध होगी।

जब तक युवा-वर्ग अपने संस्कारों एवं भावनाओं को कला परक, ढंग से नहीं बदलेगा, तब तक उसकी ग्रहण क्षमता का दोष दूर नहीं हो सकता

और आज जहाँ दर्शकों से स्वस्थ मानवीय मूल्य ग्रहण करने की अपेक्षा है , वहीं नाटककारों रचनाधर्मिता से जुड़े लोगों से भी आग्रह है कि वे चाहे लेखक, निर्देशक, कलाकार, संगीताकर जो भी हों स्वस्थ , संस्कारिक मानवीय मूल्यों के सृजन में सहयोग कर, नई पीढ़ी को भविष्य के लिए तैयार करें ; ऐसा करते समय उन्हें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जो भोजन हम दर्शकों या पाठकों को परोस रहे हैं वह कामुकता रोमांस, गुदगुदी और हिंसा फैलाने वाला भोजन तो नहीं है क्या उससे समाज का मनमस्तिष्क पोषित हो रहा है ? क्या उसका स्वयं का परिवार उससे स्वस्थ सृजनात्मक मनोरंजन कर सकता है ।

अध्याय – पाँच

मंचित नाटक

वेदाध्यात्मोपन्नं तु शब्दच्छन्दस्समन्वितम् ।
लोकसिद्धं भवेत्सिद्धं नाटयं लोकात्मकं तथा ।।

नाटक चाहे वेद या अध्यात्म से उत्पन्न हो, वह कितने ही सुन्दर शब्दों और छन्दों में रचा गया हो, वह तभी सफल माना जाता है जब लोक उसे स्वीकार कर लें: क्योंकि नाटक लोकपरक होता है ।

"मंचित (अभिनीत) नाटकों हेतु निम्नलिखित लक्षण अपेक्षित होते हैं ।

अपनी मनः भावनाओं की सहजाभिव्यक्ति की प्रभविष्णुता में अभिवृद्धि करने के लिए नाटककार का ध्यान दर्शक, अभिनेता और प्रयोक्ता पर विशेष रूप से केन्द्रित रहता है, अभिनय (मंचित) नाटकों में निम्नलिखित लक्षण अपेक्षित होते हैं –

पात्र :

नाट्य प्रयोक्ता के लिए नाटक के प्रस्तुतीकरण हेतु " पात्रों " को एकत्र करना श्रम साध्य कार्य है । नाटक में पात्रों की संख्या कम होने तथा सहज उपलब्ध न होने वाले पात्रों यथा – बौने, कुबड़े , विशिष्ट प्रकार की मुखाकृति वाले पात्रों की संयोजना से यथा सम्भव बचने का प्रयास अपेक्षित रहता है । पात्रों की सीमित संख्या से मुखराग, वेशभूषा ,साज-सज्जा आदि सहज सुलभ रहता है तथा पात्रों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा चरित्र को समझने में भी प्रेक्षकों को सुविधा रहती है ।

संवाद :

नाटक में "संवाद" अत्यधिक प्रदीर्घ, अनावश्यक गूढार्थक, जटिल, लाक्षणिक तथा दूर तक दर्शन की गहनता के प्रतिवादक नहीं होने चाहिए । इस प्रकार के बोझिल संवाद नाटकोचित चांचल्य में बाधक होते हैं । अतः नाटक में जोड़ – तोड़ के छोटे –छोटे प्रभावोत्पादक , आंगिक, सात्विक और वाचिक अभिनय व्यापार से पुष्ट संवादों की संयोजना अपेक्षित रहती है जिससे अभिनेता अपने आंगिक ,सात्विक और वाचिक अभिनय के लिए अधिक संभावनाएं और अवसर पा सके । संवादों के बीच और एकरसता तथा दर्शकों के तनाव को कम करने वाले हास्य व्यंग्य पूर्ण संवादों की सहज संयोजना से नाटकीय प्रभविष्णुता में अभिवृद्धि होती है । जोड़-तोड़ के सुगठित संवादों में स्वाभाविक

मनोवैज्ञानिक भावों के संवहन की क्षमता होनी चाहिए जो कथा की गति और पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करते हों और भाषा तथा संवाद के कौशल का भी आनन्द लेते चलें जिससे भावों का संस्कार होने के साथ – साथ भाषा का भी संस्कार हो और उनकी वाणी को अभिव्यक्ति की नई विधियाँ नये स्रोत और नवीन पन्थ प्राप्त हों । कुछ नाटकों में तो संवाद अपनी स्वाभाविक प्रकृति का परित्याग करके भाषण का भीषण रूप धारण कर लेते हैं।[1]

कतिपय रचनाओं में टूटे, जटिल और क्रिया रहित वाक्य हकलाकर रूक – रूक कर बोलने का विधान हुआ है । यथा – " जी नहीं .....यों ही .....हाँ ......आप लौटेंगे कब, किस काम से ......। आगे फिर उमाशंकर से पूंछने पर – आप भी कहीं जाना चाहती हैं ।[2] स्वाभाविकता के उद्देश्य से किया गया उक्त प्रयोग अस्वाभाविक हो गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि पात्र हकलाने वाले अथवा विक्षिप्त हैं । सहज संवादों में अन्यान्य भाषा – बोलियों के विधान को औचित्य के आधार पर ही स्वीकार करना चाहिए अन्यथा इस प्रकार के संवाद नाटकीय प्रभविष्णुता में बाधक होगें ।

<u>दृश्य :</u>

नाट्य प्रयोग की सुविधा के लिए दृश्यों का क्रम इस प्रकार हो कि प्रयोक्ता उनकी सहज व्यवस्था कर सकें अर्थात् एक दृश्य यदि गहरा हो जिसमें बहुत सजावट हो पात्र आकर बैठते-लेटते या सोते हैं अथवा उसमें दृश्यात्मक वस्तुएं ऐसी लगी हों जिनके हटाये बिना अगला दृश्य पूरा न बन सकता हो, तो ऐसे दृश्यों के पश्चात नियमता ऐसा दृश्य रखना चाहिए जिसमें खड़े – खड़े नाटकीय व्यापार हो जाए या पात्र भूमि पर बैठकर अभिनय करें अथवा पात्र बैठने आदि के आसन

1. नाट्य शास्त्र , पृ0– 23
2. नाट्य शास्त्र , पृ0 26

साथ ले आवें और स्वयं साथ ले जायें । यद्यपि आधुनिक साधन सम्पन्न "चक्रिल रंगमंच" (रिवोल्विंग स्टेज) और सन्सर्पी रंगपीठ (शिफ्टिंग या ग्लाइडिंग स्टेज) पर लगातार गहरे दृश्य दिखाये जा सकते हैं । अंक में दृश्यों की संयोजना इस प्रकार होनी चाहिए कि एक गहरे दृश्य के बाद एक संकीर्ण – दृश्य का विधान अवश्य रहे और यह संकीर्ण दृश्य इतने समय तक चलना चाहिए कि रंग व्यवस्थापक अगले गहरे दृश्य की पूरी सजावट और व्यवस्था कर सके । दृश्य विधान के अभाव में प्रयोक्ता को बलात् किसी गीत अथवा प्रहसन की अलग से व्यवस्था करनी पड़ती है जिससे कथा प्रवाह में गत्यवरोध उत्पनन होता है ।

मंचीय व्यवस्था :

बार – बार पर्दा गिराने और उठाने से रंगमंच व्यवस्था की स्वाभाविकता बाधित हो जाती है । नाटक के प्रस्तुतीकरण पर प्रेक्षकों को इस बात की प्रतीत नहीं होनी चाहिए कि वह किसी जादूगर जैसे किसी स्थान पर बैठे हैं । अतः कथा की सहज स्वाभाविक गति के साथ ही दृश्य परिवर्तन का क्रम भी उसी के अनुरूप होना चाहिए । कला का कार्य जीवन को जगा देना, दर्शकों के मन को बाँध रखना है कि उसके प्रवाह से अर्थहीन आघात न हो । यही कारण है कि रंगमंच की स्वाभाविकता के प्रति नाटककारों का ध्यान विशेष रूप से रहा है, चाहे वहाँ तथ्यवादी (रिप्रेजेंटेटिव शैली में नाटक खेला जाये अथवा प्रस्तुति कौशल वाल्य प्रेजेंटेटिव (हो । आधुनिक नाटककारों की धारणा नाटक के उद्देश्य के प्रति यद्यपि " मनोरंजन की बेहूदी धारणा से आगे बढ़ गया है तथापि मनोरंजन पक्ष को उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता।

वस्त्र परिधान (वेश– भूषा)

नाटक में लावण्य हेतु नाटककार को अपनी रचनाओं में पात्रों के वस्त्र– परिधान का विशेष ध्यान रखना पड़ता है । वेष – भूषा में पात्रों की पोशाक और अलंकरणों के संकेतदिये

जाते हैं ।

नाटक में समय, स्थान और स्थिति को ध्यान रखकर वस्त्र परिधान का संयोजन होना चाहिए; क्योंकि वेश – विन्यास में वस्त्र– परिधान एक आवश्यक अंग होता है तथा अलंकरण सहायक अंग कहलाते हैं । अवस्था भेद के अनुसार पुरूषों तथा स्त्रियों वस्त्रादि का उल्लेख रंग संकेतों ,पाद– टिप्पणियों अथवा पारस्परिक संवादों के माध्यम से हुआ है यथा –

पुरूषों के वस्त्र :	धोती,अंगरखा, उत्तरीय चादर, पगड़ी, दुपट्टा , कमर पट्टा, लम्ब कन्चुक आदि ।
स्त्रियों के वस्त्र :	कंचुकी, साड़ी , दुपट्टा, धोती, उत्तरीय, चीनाशुक आदि ।

ध्वनि – संयोजना :

आधुनिक नाटकों के मंचीय उपस्थापन में आधुनिक सुविधा – साधना के प्रयोग के साथ ही कतिपय प्रकाश, ध्वनि विषयक रंग संकेतों का विधान अपरिहार्य रूप से किया जाने लगा है । रंगशालाओं में बिजली के प्रयोग के साथ ही प्रकाश विधान भी रंग – व्यवस्था और नाट्य प्रभाव का विशिष्ट एवं आवश्यक अंग माना जाने लगा है । रंग दीपन (स्टेज लाइटिंग) एक स्वतन्त्र कला के रूप में विकसित हो गयी है । आधुनिक नाटककारों ने रस तथा भाव के अनुकूल प्रकाश योजना के माध्यम से अपेक्षित प्रभाव निर्माण की व्यवस्था अपनी रंचनाओं में की है – हल्के अभिवादन के रूप में सिर हिलाता है जिसके साथ ही उसकी आकृति धीरे – धीरे धुंधलाकर अंधेरे मे गुम हो जाती है । उसके बाद कमरे के अलग अलग कोने एक एक करके

आलोकित होते हैं और एक आलोक व्यवस्था में मिल जाती है । कमरा खाली है ......।[1] नन्द प्रगल्भ भाव से उसके बालों को सहलाकर बाहर गवाक्ष के पास चला जाता है और दोनों बाहें गवाक्ष पर फैलाकर प्रत्यूष के हल्के उजाले को देखने लगता है । सुन्दरी पुनःदर्पण के पास जाकर अलग – अलग कोणं से चेहरा उसमें देखती है ।[2]

दर्शकों की अभिरूचि :

दर्शकों की बहुवृत्ति रूचि, बहुस्तरीय योग्यता, बहुव्यवसाय शीलता तथा उसके मनोंरजन और कौशल पूर्ण ढंग से उनके भाव परिष्करण के प्रति सचेष्ट रहना परमावश्यक है । इसमें समुचित पात्र योजना, संवाद– योजना, दृश्य – योजना, व्यापार एवं संगीतादि योजना का ध्यान रखने के साथ ही आद्यान्त कौतुहल की संयोजना अपेक्षित रहती है । नाटक में गुणशील नायक या नायिका से विपत्तियों का सामना भले ही कराया जाये, किन्तु अन्त में उन्हें सुख ,पुरस्कार आवश्य प्राप्त होना चाहिए अन्यथा दर्शकों की नैतिक आस्था शिथिल हो जाती है । पापी को सुख और सज्जन को कष्ट मिलता देखने में मार्मिक आघात होता है कि मानसिक संस्कार बनाकर दर्शकों के जीवन में विषम ग्रन्थियाँ उत्पन्न कर सकता है ।[3] अतः अभिनेता की दृष्टि से यह गुणनितान्त अनिवार्य है । नाटक में सद्गुण की प्रतिष्ठा और सम्मान तथा असद्गुणों का विरोध और अनादर उस मात्रा में अवश्य प्रदर्शित किया जाय कि दर्शकों को उदात्त भावनाओं को उचित प्रोत्साहन प्राप्त हो और उन्हें पल्लवित होने की आदर्श प्रेरणा मिले ।

---

1. मोहन और राकेश और उनके नाटक – गिरीश रस्तोगी पृ0 13
2. मोहन राकेश, " लहरों के राजहंस "पृ0 91

नाट्य रचना करते समय नाटककार को इस बात के प्रति विशेष सचेष्ट रहना चाहिए कि किसी व्यक्ति, समाज वर्ग या देश पर आक्षेप न हो, उसकी निन्दा न हो । ऐसे संवाद न हो जो लोक शील , शिष्टता और लोकमर्यादा के विरूद्ध हों ।

रंग निर्देश :

नाटक का निर्देश सहज सरल स्पष्ट होने से अभिनेता तथा नाट्य प्रयोक्ता को साधन एकत्र करने तथा अभिनय की परिसीमा को जानने में सुविधा रहती है । सीताराम चतुर्वेदी ने अभिनेता रंगव्यवस्थापक , प्रकाश व्यवस्थापक, संगीत व्यवस्थापक, नेपथ्य व्यवस्थापक तथा नाट्य प्रयोक्ता के लिए विशद नाट्य निर्देशों का उल्लेख किया है ।[1] हिन्दी में जटिल रंग निर्देश का उदाहरण द्रव्टव्य है ।

(------असगरी उसके पास आकर खड़ी होती है , मुनीश्वर उसका हाथ पकड़कर खींचता है, असगरी उसकी ओर झुकती है । कुर्सी के बाजू के सहारे बैठकर मुनीश्वर की छाती पर अपना सर रख देती है । मुनीश्वर एक हाथ से उसके गले के चारों ओर –दूसरा उसकी पीठ पर फेरने लगता है । असगरी को गुदगुदी मालूम होती है – उसका शरीर कांपने लगता है । वह कभी हँसती है कभी बड़बड़ाती है कभी उलहाना देती है । गोद में लड़का लिए और एक हाथ में गिलास का जल लिए मुनीश्वर के स्त्री का प्रवेश । वह आगे बढ़ती हे एक क्षण के लिए हिचकती है लेकिन दूसरे ही क्षण लड़के को मुनीश्वर के आगे जमीन पर उतार उसका पैर उठाकर – उसका पैर का अंगूठा गिलास के पानी में डुबोती है और पीछे हटती है । उसके पैर का धक्का बच्चे को लग जाता है – वह रो उठता है ।मुनीश्वर की स्त्री उसकी ओर कातर दृष्टि से देखती है – असगरी बच्चे को रोता हुआ छोड़कर एक ओर खड़ी होती है ।

---

1. सीताराम चतुर्वेदी,नाट्य शास्त्र, पृ0– 468–95

मुनीश्वर की स्त्री मुँह फेरकर मुनीश्वर का चरणोदक पीने लगती है । लड़का रोता रहता है । मुनीश्वर लड़के की ओर देखता है । लड़का रोते हुए धीरे – धीरे आगे बढ़कर मुनीश्वर का पैर पकडकर खड़ा होता है । मुनीश्वर गनगना उठता है, उसके चेहरे पर विषाद का कालापन आ जाता है जेसे बड़ी पीड़ा में हो । वह अपने को सम्हालता है – लड़के को उठाकर कंधे पर बिठा लेता हे । उसकी स्त्री उसके घुटने पर सर रख देती है और अपना हाथ घुमाकर उसकी स्त्री उसके घुटने पर सर रख देती है और अपना हाथ घुमाकर उसकी जाँघ सयपर – इस तरह उसका मुँह कुछ तो मुनीश्वर के घुटने के भीतर और कुछ उसकी बाहों में छिप जाता है। असगरी बड़े उद्वेग और आश्चर्य से यह सब देखती है । मुनीश्वर अगसरी की ओर देखती हुई अपने ओंठ पर उंगली रखती है । मुनीश्वर उसे वहाँ से हट जाने का संकेत करता है । असगरी गर्दन टेढ़ी कर उस पर कटाक्ष करती है – हाथ इस तरह हिलाती है जिससे पता चलता है कि वहाँ से चले जाने का संकेत करता हैं । मुनीश्वर की स्त्री उसी तरह निश्चेष्ट मुनीश्वर के घुटनों के बीच सिर रखे चुपचाप बैठी रहती है । सांस भी लेती है या नहीं – पता नहीं चलता है । लड़का मुनीश्वर के कन्धें पर कूदने लगता है, हाथ से ताली बजाता है कभी मुनीश्वर की बाँह मुँह में पकड़ता है तो कभी कान ।(लड़के की पीठ पर हाथ रखकर) जरा इसे बाहर बगीचे में ।) असगरी मुस्कराती हुई उसके नजदीक आती है!

उक्त रंग संकेत की अव्यावहारिता निर्थकता और अनावश्यक विस्तार नाटकीय चांचल्य के लिए बोझिल हो उठे हैं । वर्ग विशेष अथवा मंच विशेष के लिए लिखे नाटकों के प्रारम्भ में ही निर्देश की व्यवस्था करना अधिक उपयुक्त रहता है और यथा सम्भव दृश्य विधान, रंग विधान, संगीत – विधान तथा प्रकाश विधान का समुचित परिचय भी प्रारमभ में दे देना चाहिए जिससे नाट्य प्रयोक्ता को रंगमंच की प्रकृति और मर्यादा को सुविधा दे रहे है । नाटककार को पात्रों की वेशभूषा या आहार्य अभिनय के लिए ऐसे निर्देश नहीं देने चाहिए जिन्हें प्राप्त करना असम्भव अथवा दु:साध्य हो अथवा जिनके रूप , बनावट और आकार का सामान्यत: लोगों का ज्ञान न हो ।

रंग निर्देश स्पष्ट, सरल और संक्षिप्त हो जिनको पूरा करने में नाट्य प्रयोक्ता, तथा प्रकाश व्यवस्थापक सभी के लिए सुलभ सुबोध सुगम हो ।

नाट्य कलेवर :

नाट्य कलेवर के विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने विशद विवेचन किया है । अभिनेय नाटकों की अवधि तीन – साढ़े तीन घण्टे तक ही सीमित रखने से नाट्य प्रयोक्ता, अभिनेताओं के साथ ही प्रेक्षकों को भी सुविधाजनक रहती है । बड़ा नाटक पात्र एवं घटनाओं के बाहुल्य के कारण प्रदर्शन अवधि भी उसी अनुपात में बढ़ जाती है, अतः नाटककार को अपने नाट्य के कलेवर को इस प्रकार से सुंसगठित रूप में प्रस्तुत करना चाहिए जिससे घटनाओं के घात– प्रतिघात अन्तर्द्वन्द्व ओर बाह्य द्वन्द्व से चरित्रों का समुचित विश्लेषण चित्रण हों सके तथा कथा वस्तु का भी पूर्ण निर्वाह हो सके ।[1]

अभिनेय नाटकों को दो भागों में विभक्त किया गया है यथा – औपचारिक तथा अनौपचारिक । औपचारिक नाटक लिए विशेष प्रकार की रंगशाला, अभिनेयता, संगीत , नेपथ्य, रंगमंच आदि के नाट्य प्रयोक्ता, दर्शकों के बैठने की समुचित व्यवस्था विशेष ढंग से पर्दो का संचालन , विशिष्ट प्रकाश व्यवस्था , पृष्ठ वाद्य आदि के द्वारा विशेष रंग प्रभाव आदि उत्पन्न करने की सुविधा अपेक्षित रहती है । इस प्रकार नाटक के विज्ञापन प्रेक्षागृह व्यवस्थां से नाटक के प्रस्तुतीकरण तक के क्रियाकलापों का समावेश होता है ।

"अनौपचारिक नाटक " के लिए केवल अभिनेता , संगीत और दर्शक ही प्रधान होते हैं । उसके लिए रंगशाला , नाट्य प्रयोक्ता , नाटककार अथवा नाटक किसी की आवश्यकता नहीं होती । कुछ नट परस्पर मिलकर किसी कक्ष के आधार पर गायक– वादों के सहयोग से नाट्यात्मक प्रदर्शन का ढाँचा बना लेते हैं और उसके अनुसार नाट्य प्रदर्शन कर लेते हैं । इस प्रदर्शन के लिए न तो कोई विशेष अभिनय पद्वति होती है न प्रदर्शन पद्धति । कभी-कभी

---

1. रंगमंच, लोकधर्मी– नाट्यधर्मी, पृ0 1,2,7–10 तक
डॉ0 लक्ष्मीनारायण भरद्वाज

तो इनमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं और जितनी बार उन्हें देखा जाय उतनी बार उनके संवाद और गीतों में नवीनता ही मिलती है । रामलीला, रासलीला , स्वांग , विदेशिया , नौटंकी ,तमाशा आदि सभी अनौपचारिक अभिनय प्रदर्शन होते हैं ।

"सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के "बकरी" नाटक का नाट्य सौन्दर्य"

"बकरी" नाटक सन् 1974 ई0 में लिखा गया, बकरी के सन्दर्भ में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने लिखा है कि यह नाटक इब्राहिम अल्काजी [1] के साथ इस बात-चीत के बाद लिखा गया था कि हिन्दी में आम आदमी का सामयिक नाटक नहीं है । इसके लिखे जाने पर राष्ट्रीय (नाट्य मण्डलीय) नाट्य विद्यालय ने दो दिन कुछ आमन्त्रित लोगों के सामने खेला भी और इसे बेहिसाब सफलता भी मिली ।[1]

वस्तुतः साहित्य में जब सौन्दर्य की बात उठायी जाती है तो अर्थ भाव सौन्दर्य या सिर्फ कला सौन्दर्य नहीं होता , बल्कि साहित्य का सौन्दर्यात्मक पहलू यह भी है कि कोई रचना किस प्रकार अपनी विषयवस्तु और अपने शिल्प के माध्यम से एक व्यापक यथार्थ को भावक के समक्ष प्रभावशाली ढंग से प्रेषित कर पाती है । सौन्दर्य शास्त्र सम्बनधी एक नयी पुस्तक " प्राब्लम्स ऑफ कन्टेपोरेरी एस्थेटिक्स " में संकलित एक निबन्ध (कन्सर्निंग दि कैटेगरी ऑफा दि ब्यूटीफुल बाई ओब्सिनिकोव) में सौन्दर्य के तीन पक्ष बताये गये हैं , यह तत्व उसमें समाहित हैं ।[2] जहाँ तक नाटक का सवाल है, यह " प्रभावशाली ढंग से सम्प्रेषित" कर पाने का गुण उसमें कुछ अधिक ही होना चाहिए , क्योंकि नाटक एक दृश्य विधा है और उसका भाषक (दर्शक) वही प्राप्त करता है जो वह तुरन्त देखता है । उसके साथ ऐसा प्रायः नहीं होता कि आज वह जो देखे, उस पर किसी अन्य समय पर विचार करें

---

1. "बकरी" की भूमिका: इस नाटक के बारे में ,
2. अन्धेर नगरी, सं0 गिरीश रस्तोगी पृ0 105

और तब उसके प्रभाव को ग्रहण करके उसके साथ साधारणीकृत हो । नाट्य सौन्दर्य से आशय नाटक में विषय वस्तु और रंगकल्पना की यथार्थपरक, जन परक भूमिका अनिवार्य रूप से होनी चाहिए ।

"बकरी" नाटक अपनी सघन वैचारिकता ओर स्थित्यनुकूल रंगरचना के कारण ही इस युग के सर्वाधिक सशक्त नाटक के रूप में स्वीकृत हुआ है । नाटक में निहित मुखर बिन्दु व्यंग्य ने इसे और अधिक प्रभावशाली बनाया है ।

स्वाधीनता के पूर्व भी और बाद में भी भारतीय राजनीति के अगले दस्ते में प्रायः वही लोग छाये रहे जो अभिजात्य वर्ग के थे और जिन्हें पता था कि भारतीय जनता की कमजोरी क्या है । यही कारण है कि इस देश में जनता का सर्वाधिक शोषण धर्म के नाम पर हुआ ; क्योंकि धर्म यहाँ के हर औसत आदमी की सबसे बड़ी दुर्बलता है । अंग्रेजी शिक्षा ने धर्म के 'प्रति लोगों के प्रति रूचि कम तो कर दी, पर धार्मिक उन्माद को बढ़ा दिया । रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के विरोध में इतना ढोल पीटा, पर उन्हें नेस्तनाबूत नहीं किया जा सका । शहरी जीवन में भले ही थोड़ी बहुत चेतना आयी, पर गाँव का सम्यक – परिष्कार नहीं हुआ नतीजा यह रहा कि आजादी के बाद देशी हुक्मरानों ने भारत की अंध विश्वास– लिप्त ग्रामीण जनता का शोषण और दुरूपयोग खूब जमकर किया । " बकरी " नाटक की मूल अर्न्तकथा यही है । इसका केन्द्रीय विषय है 'राजनीति'; लेकिन केवल सत्ता की राजनीति नहीं । वस्तुतः राजनीति केसदा दो ही पक्ष होते हैं । सत्ता की राजनीति और जनता की राजनीति । जो लोग राजनीति को साहित्य के लिए अनावश्यक मानते हैं ; उनकी दृष्टि में केवल सत्ता की ही राजनीति होती है । दृष्टि की इस संकीर्णता से मुक्त होते ही राजनीति के व्यापक अर्थ खुलने लगते हैं और तब सहज ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सत्ता के पास केवल राजनीति है, जबकि जनता के पास राजनैतिक चेतना है, आवश्यकता तो उसे जगाने की है ।

"बकरी" की सोद्देश्यता आरम्भ में ही स्पष्ट हो जाती है जब लेखक

कहता है । " नट बिद्रोही है ।[1] नाटक में राजनीतिक छल–प्रपंच की खाल उधेड़ी जायेगी, यह भी वहीं साफ हो जाता है, क्योंकि नट मंगलाचरण गाता हैं, पर उसे राजनीतिक सन्दर्भ से जोड देता है ।[2] इसके पीछे नाटककार का जो मंतव्य है, वह , भी उजागर होता है : " मुक्ति की हो अभिलाषा ; जगे समता की भाषा " लेकिन यह मन्तव्य तो तभी पूरा होगा जब नाटक से जनता का समग्र साधारणकरण होगा और यह तभी संभव होगा जबकि नाटक का जो शास्त्रीय आधार है उससे और यूरोपीय रूपवाद के प्रभामण्डल से अलग हटकर जनता की भाषा में और जनता की शैली में नाटक प्रस्तुत किया जायेगा – केवल "रूप" पर ध्यान न देकर जीवन के "सत्य" को भी उजागर किया जाना जरूरी है ; क्योंकि " रूप" के रूप में बात उड़ जाये है, सत्य क्या है इसकी खबर ही नहीं ।[3] नाटक के क्षेत्र में जो "कलात्मक " और " सुरूचि –सम्पन्न " जैसे शब्द आयतित माल की तरह प्रचलित हो गये हैं, लेखक उसकी कलई भी खोलता है ।[4] इस प्रकार " भूमिक दृश्य " में ही नट – नटी के संवाद के जरिये नाटक की जनोन्मुखता साफ तौर पर उजागर हो जाती है ।

नाटक के प्रथम अंक में भिश्ती का प्रवेश होता है जिसके हाथ में बकरी के खाल की मशक है । नाटककार यह दिखाना चाहता है कि जो बकरी थी, अब वह मशक बन गयी है इसी दृश्य से नाटककार गाँधी जी की बकरी को लाने वाला है । गाँधी जी बकरी के दूध का सेवन करते थे, इसलिए बकरी और गाँधी का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध सिद्ध है,और यह सम्बन्ध जब मुहावरा बनकर प्रयुक्त हुआ, तो "बकरी" की तरह से गाँधी सिद्धान्त

---

1. "बकरी" का भूमिका दृश्य

(2) "बकरी" भूमिका दृश्य

(3) बकरी भूमिका दृश्य पृष्ठ – 18

(4) वही पृ0 – 19

का प्रतीक बन गयी । यानि "मशक" जो बनी है, वह बकरी की नहीं, बल्कि गाँधी जी के सिद्धान्तों की है । स्वयं को गाँधी जी के शिष्य मानने वाले और गाँधी जी के पदचिन्हों पर चलने का दम भरने वाले नये कर्णधारों ने स्वाधीनता के बाद गाँधी के साथ वही सलूक किया जो एक बिना मुँह की बकरी के साथ किया जाता है । पहले उसे मार दिया, फिर उसका गोश्त खाया और उसकी खाल से मशक बना ली । ध्यान देने की बात है कि गाँधी जी की हत्या के बाद जब कुछ इसी तरह का क्षोभ नागार्जुन ने अपनी कविता मे व्यक्त किया था , तो कांग्रेसी सरकार ने उन्हें जेल में डाल दिया था ।[1]

आज़ादी के बाद धीरे – धीरे भारतीय राजनीति में ऐसे तत्वों का प्रवेश और प्रभुत्व बढा जिनके लिए निजी हित मुख्य था और राष्ट्र हित गौण । अत्याधिक असामाजिक तत्व खद्दर पहन कर नेता हो गये । राजनीति एक गन्दी चीज मानी जाने लगी और "नेता" शब्द का बड़ी तेजी के साथ अर्थापकर्ष हुआ । यह जो नये अर्थ में नेता वर्ग आया, पुलिस से इसकी साझेदारी बढ़ी और जनतन्त्र की आड़ में सब मिलजुलकर जनता का रस चूसने लगे । सर्वेश्वर जी ने इस स्थिति को बड़ी बारीकी से व्यक्त किया है ।[2]

> दुर्जन सिंह : होश में बात करो दीवाना जी, अब हम डाकू नहीं, शरीफ आदमी हैं ।
>
> सिपाही : शरीफ आदमी । हाय अब मेरा क्या होगा ....।
>
> दुर्जन : वही जो हमारा होगा ।
>
> सिपाही : यानी ?
>
> दुर्जन : मजे(मूंछों पर ताव देता है (मजे, खूब मजे ।

---

1. गाँधी जी की मृत्यु पर नागार्जुन ने चार कविताए लिखी थी । तर्पण, शपथ, मत क्षमा करो और गोड्से ।
2. बकरी, पृ0 – 25

आगे यही लोग एक बकरी पकड़ लाते हैं जिसके बारे में प्रचार करते हैं कि यह गाँधी जी की बकरी है । उस बकरी की प्रशंसा में भाषण देते हैं और उपदेश झाडते हैं । उसके माध्यम से मालामाल होने की योजनाएं बनाते हैं । बकरी की मालकिन (विपती) को तरह –तरह से समझाने की कोशिश करते हैं और यह तुम्हारी नहीं, गाँधी जी की बकरी है और अब यह देवी हो गयी है । विपती नहीं मानती तो ग्रामीण जनों में अंधविश्वास और भय फैलाकर ये लोग उन्हें अपने पक्ष में कर लेते हैं और बिपती को जेल में डला देते हैं , फिर " बकरी स्मारक निधि " बनाते हैं । बकरी देवी पर भोले – भाले ग्रामीणों से चढावा चढ़वाते हैं । बकरी वाद का प्रचार करने विदेश जाने की योजना बनाते हैं । चुनाव लडते हैं । चुनाव चिन्ह बकरी का धन रखते हैं और अन्त में चुनाव जीत जाने के बाद बकरी को मार कर खा जाते हैं । उस दावत को शाकाहारी कहते हैं क्योंकि बकरी गाँधी जी की है । दावत में " शेरवानी में गुलाब लगाये एक बड़े नेता और उनके साथ एक नेत्री (भी) आती हैं ।[1]

इस तरह यह नाटक का सत्ता के झूठें जनतंत्रवाद को और उसके घिनौने चरित्र को बड़ी निमर्मता के साथ उद्घाटित करता है । अपनी नाट्य प्रक्रिया में नाटककार व्यंग्य और कटाक्ष को हथियार की तरह इस्तेमाल करता है । " अन्धेर नगरी " में भारतेन्दु ने इसी तरह के अस्त्रों का प्रयोग किया था, वहाँ लक्ष्य में अंग्रेजी सत्ता थी और यहाँ देशी सत्ता है । यानि अंग्रेजी सत्ता और देशी सत्ता के मूल स्वरूप में कोई बुनियादीय अन्तर नहीं दिखाई पड़ता " अन्धेर नगरी " और " बकरी" के तुलनात्मक विश्लेषण से यह बात सहजतया सिद्ध होती है

विपती अपनी बकरी के बारे में स्थान – स्थान पर इस प्रकार के उद्गार व्यक्त करती है ।

---

1. " बकरी" पृ0 76

" ई सच है सरकार । हमरे ही घर ई पैदा भई, हम ही एहका पाला पोसा, रात – दिन साथ रही .....। हम देश में नहीं रहित हुजूर गाँव में रहित है .....। हुजूर एहका छोड़ दें, हमरे पीछे – पीछे न लग जाये तो जौन सजा चोर की ऊ हमरी । आपके पीछे नाहीं जायेगी हुजूर, हमरे पीछे जायेगी ....। गाँव मे सबका चीन्हती है ...." (पृ0 35–37 के मध्य)

भारत जनता का है, खद्दरधारी लुटेरों का नहीं । जनता गाँव में रहती है जहाँ देश की मूल अंतश्चेतना निवारू करती है भारत की जनता के लिए गाँव ही उसका देश है , वह अलग से " देश" की कल्पना नहीं करती ; इसीलिए जब कोई ग्रामीण रोजी रोटी की तलाश में अपना गाँव छोड़कर बाहर जाता है तो कहता है परदेश जा रहे हैं । नाटककार में समूचे सन्दर्भ को पूरे कलात्मक सौन्दर्य और लोकरूचि को भाने वाली आकर्षक नाट्य विधि के साथ प्रस्तुत किया है । बकरी की नाट्य रचना में लोक शैलियों का अद्भुत उपयोग किया गया है । खासतौर से नौंटकी और पारसी थियेटर के परम्परागत रूपों को नये अंदाज में ढाला गया है । नाटककार ने दोहा, चौबोला दौड़. बहरे तबील, कहरवा, कजरी (चिरई दाना बिन मुरझाये) गजल (दौलत की है दरकार ए सरकार आपको । और थियेटर शैली के पद्यात्मक संवादों का जमकर प्रयोग किया है तो दूसरी ओर "डंडा ऊँचा रहे हमारा" और "तन मन धन उन्नायक जय हे , जय जय बकरी माता" जैसे गीतों के माध्यम से व्यंग्यात्मक उपयोग किया है । शिल्प के प्रति सर्वेश्वर का जो स्वदेशी रूझान हे वही उनके नाटक के प्रभाव को तीव्र गहन और प्रभावी बनाता है ।

नाटक का महत्वपूर्ण चरित्र "युवक " के क्रियाकलाप नाटककार द्वारा ऊपर से थोपे गये जान पडते हैं । "बकरी का यह आलोच्य पक्ष है । दरअसल वामंपथी लेखकों के एक वर्ग ने अपना यह सिद्धान्त बना लिया है कि रचना में अन्ततः क्रान्ति होकर ही रहेगी । इस कल्पित क्रान्तिवाद ने प्रगतिशील और यथार्थवादी रचनाधर्मिता को बहुत हानि पहुँचायी है । "बकरी" का कथ्य अपने आप में इतना प्रभावशाली है कि क्रान्ति अगर न भी होती तो भी उस

गुस्से की सृष्टि जनमानस में होकर रहती जो नाटककार का अभीष्ट है । भारत की जनता ने अपने शोषकों को अभी तक न परास्त किया है और न फिलहाल करने की स्थिति में है । हाँ, भविष्य में वह ऐसा करेगी अवश्य , इस बात पर सभी समझदार लोगों का विश्वास है । एक दिन ऐसा जरूर आयेगा जब शोषण की सत्ता समाप्त होगी ओर सर्वहारा वर्ग ,खुद मुख्तार होगा. लेकिन ऐसी स्थिति किसी एक " युवक " के तथा कथित क्रान्ति कर देने मात्र से नहीं आने वाली है । दरअसल "क्रान्ति" अकेले करने वाली चीज है ही नहीं । इसके लिए जरूरी है जनशक्ति का संगठित और सचेतन होना । दरअसल रचना में कमजोरी इस प्रकार की तब आती है जब रचनाकार पर विचारात्मक दबाव बहुत बढ़ जाता है । विचारधारा के बिना कोई भी रचना, रचना है ही नहीं. पर कला तो यह है कि विचारधारा रचना से फूटे, न कि रचना पर मडरायें । " बकरी " के अन्तिम दृश्यों में विचारधारा नाटक पर मंडराने लगी है ओर यही कारण है कि सर्वेश्वर वर्तमान से कूदकर भविष्य में चले गये हैं , जबकि एक नाटककार के लिए परम्परा से चिपके रहना अथवा भविष्य के कल्पित निष्कर्षों को जीना – दोनों ही समान रूप से घातक होते हैं ।

परिणामतः इस एक बिन्दु के कारण " बकरी " की महत्ता कम नहीं हो जाती ; चूँकि नाटक में प्रतिबद्धता भी है और सोद्देश्यता भी, इसीलिए निर्णयात्मकता का होना अस्वाभाविक नहीं है । पर सच तो यह है कि नाटक का सौन्दर्य चेतना सम्पन्न "युवक " के तेज– तर्रार व्यक्तित्व में उतना नहीं है जितना "विपती" के आत्मविश्वास और सहज विद्रोह में है ।

XXXXXXX

सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण " तक का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

आधुनिक नाटककारों में सुरेन्द्र वर्मा एक समर्थ हस्ताक्षर के रूप में भलीभाँति प्रतिष्ठापित हो चुके हैं, उनके प्रमुख नाटकों में नींद – क्यों रात भर आती नहीं, द्रोपदी ,आठवाँ सर्ग, छोटे सैयद बड़े सैयद, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक जैसे अनेक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं, अभिनीत हो चुके हैं और प्रसिद्ध प्राप्त कर चुके हैं ।

सुरेन्द्र वर्मा आधुनिक सामाजिक पृष्ठभूमि पर पैनी नजर रखने वाले नाटककार हैं । वे कथानक कहीं से क्यों न उठाये, सामयिक संस्कारहीन भौतिकवादी दृष्टि पर प्रहार वे अवश्य करते हैं और बड़े सशक्त मनोवैज्ञानिक अस्त्र शस्त्र के साथ करते हैं । समाज के नैतिक मूल्यों के नाम पर खोखलापन, व्यक्ति का परिस्थितियों के दबाव में खण्डित होना, विवशताओं के परिणाम स्वरूप प्राप्त टूटन और कुण्ठा, पारिवारिक विघटन, उदात्त जीवनदर्शो के अभाव में भटकता मनुष्य, अतृप्त, अशान्त, तनावग्रस्त मनुष्य मन की जटिल समस्याएं, ये सब सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में छोटे पैने चुटीले संवादों के तीर बनकर दर्शक/पाठक के मर्म पर सीधे घात करती हैं ।

सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक नाटक सन् 1975 ई0 में प्रकाशित हुआ । यह तीन अंकों में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की विडम्बना को सीधे सामने रखता है ,बिना किसी आवरण के ।[1]

---

1. सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक –सुरेन्द्र वर्मा, भूमिका , पृ0 – 3

आलोच्य नाटक वस्तु, कथ्य संवादों से चौंकाता है । नियोग जैसा बीहड़ विषय जो भारत की सामाजिक परम्परा के अनुसार मान्य था, उस अग्निवत् दाहक समस्या को सुरेन्द्र वर्मा ने छुआ ही नहीं पकड़ा और दर्शक को उस अनुभूति को जीने के लिए प्रेरित किया

शीलवती का उपपति का चुनाव उसका प्रतोष के साथ पूरा अनुभव ओर उस अनुभव के सम्बन्ध में उसकी निःसंकोच बेबाक अभिव्यक्तियों बहुत ही बीहड है । कलात्मक दृष्टि से नहीं, भारतीय समाज के, इन सब बातों के सम्बन्ध में दरिद्र चिन्तन की दृष्टि से । पुरूष के पौरूष पर प्रश्नचिन्ह जयशंकर प्रसाद ने " ध्रुवस्वामिनी " में अपने ढंग से लगाया था . लेकिन ढिंढोरा नहीं पीटा था, केवल शास्त्र की सम्मति लेकर उसके मोक्ष का विधान प्रस्तुत किया था, लेकिन यहाँ सुरेन्द्र वाकायदा उसकी डोंडा पिटवाते हैं ....। उद्घोषक पुकार – पुकार कर कहता है – मल्ल राज्य के हर नागरिक को सूचना दी जाती है कि आज से ठीक एक सप्ताह बाद , पूर्णमासी की संध्या को ....राजमहिषी शीलवती धर्मनटी बन .... राजप्रांगड़ में उतरेंगी । मल्ल राज्य के हर नागरिक को .... प्रत्यासी बनकर .....पधारने का आमंत्रण है । राजमहिषी शीलवती.... अपनी इच्छा के अनुसार .... किसी भी नागरिक को एक रात के लिए ......सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक ...उपपति के रूप में चुनेगी ।

ओक्काक के मनस्संहर्ष की अभिव्यक्ति इस नाटक की एक बडी उपलब्धि है । महामात्य महसारिका को आदेश देते हैं –

–आज सारी रात तुम महाराज के साथ रहना । उनका मन बहुत अस्थिर है । कहीं कुछ कर न बैठें ।"

महासरिका देखती है – आज महाराज क्लांत हैं । इन्हें विश्राम की आवश्यकता है, निद्रा की , तन्द्रा की , विस्मरण की आवश्यकता है और ओक्काक न सो पाता है न भूल पाता है । उसका चित्त सारी रात छटपटाता रहता है ।

ओक्काक अपने विक्षिप्त भाव/कारण महाबलाधिकृत राजपुरोहित और महामात्य के पूर्ण पुरूषत्व पर व्यंग्य करता है । ये तीनों अपनी विवशता , राजतंत्र की विवशता व्यक्त करते हैं । मल्ल राज्य की परम्परा को बनाये रखने के लिए वे राजा की पत्नी को उपपति चुनने के लिए साधारण प्रजा की भीड़ में धर्मनटी बनकर प्रस्तुत होने के लिए विवश करते हैं ।

सारी भूमिका –कथा प्रसंग की, अत्यधिक क्रूर हैं । ओक्काक का नपुंसक होते हुए भी विवाह करना । जब उसकी पत्नी – वह जैसा भी है उसी में रमी हुई है – इस भाव में ही डूब चुकी है, तब सहसा उसको मनुष्य न समझकर मात्र एक पशु , एक मात्र समझकर एक यन्त्र समझकर एक रात्रि के लिए एक अन्य पुरूष का संवरण करने के लिए निर्मम आदेश, शीलवती का दैत्य, सभी कुछ बडी ही बिडम्बना है । मनुष्य जीवन के सन्दर्भ में । शीलवती अन्तर्मुख होकर सोचती है – सोचती हूँ और कॉप – कॉप जाती हूँ , एक अनजाना भवन उस भवन का शयन का की शैया .....उस शैया पर ....बिलकुल पहली निकटता की चरम सीमा.... भग्नता का.....अन्तिम सोपान ...।

भारतीय संस्कृति जितनी ही छुई मुई रही है उतनी ही विद्रोही और समन्वयात्मक भी रही हे । स्त्री – सम्बन्धों मर्यादा के सम्बन्धों में वैदिक काल की मान्यताएं महाभारत – काल की घटनाएं गुप्त काल के प्रसंग , बौद्धों के विहारों की भिक्षु णियाँ, तन्त्र में स्त्री का प्रयोग, राजपूतों की स्त्रियों के प्रति दृष्टि . मुस्लिम काल में स्त्रियों की दशा . सन्तों की दृष्टि में नारी, भक्ति के क्षेत्र में सती– भाव, रीतिकाल की रमणी, अंग्रेजों के काल में शिक्षा के परिणाम स्वरूप स्त्रियों की बदलती स्थिति , स्वतन्त्रता संग्राम में कंधे से कंधा भिडाकर जूझती युवतियाँ , स्वतन्त्र भारत की समानाधिकार– प्राप्त, किन्तु दहेजाग्नि में जलती ललनाएं – यह पूरा चित्र भारतीय संस्कृति के बनिता– सम्बन्धी वैविध्य, विवशता, विद्रोह वशीकरण और अन्य प्रकृतियों का ऐसा इतिहास है जो पुरूष के बल, उसके पौरूष की विजय, फिर – फिर घोषित करता है ।

पुरूष के पास स्त्री को सन्तुष्ट करने का बल है , पौरूष है, उसे सन्तानवती बनाने के लिए उसी के पास वह बीज सुरक्षित है जो स्त्री स्वयं में उद्भूत नहीं कर सकती । स्त्री को पुरूष की उतनी ही आवश्यकता है जितनी पुरूष को । केवल माँ बनने के लिए ही नहीं, अपनी देह की, अपनें मन के राग की तुष्टि के लिए भी स्त्री को पुरूष की ही अपेक्षा है । समस्त मानव संस्कृति ने इसका एकमात्र सुरक्षित उपाय " विवाह " खोज निकाला है और स्त्री को ठीक-ठीक ढंग से समझा दिया गया है कि जो भी पुरूष इस विवाह -संस्कार के रूप में तुम्हें मिला है,बस वहीं तक तुम्हारे आनन्द की सीमा हे । वह बलवान है तो ठीक, नहीं है तो ठीक, पौरूष - सम्पन्न है तो वही है तुम्हारा पति, नपुंसक है तब भी वही है तुम्हारा पति ।

भारतीय संस्कृति में पतिव्रता की अतिरिक्त महिमा रही है । सारे शास्त्र यही घोषित करते आये है कि पति ही स्त्री की गति है । स्त्री का धर्म कर्म पति ही है । उससे उसे शारीरिक मानसिक आनन्द मिले या न मिले, वह कुछ कर ही नहीं सकती । अपने घुटन में छटपटाते रहना ही उसकी नियति है ।

सुरेन्द्र वर्मा ने इसी बिन्दु पर भारतीय संस्कृति को ललकारा है, वह उसी का अस्त्र छीनकर । भारतीय संस्कृति के व्याख्याता , निर्माता शास्त्रों की ही बन्दूक उठाई है और उसी पर गोलियाँ दागी हैं, एक ऐसे ही नारी । पात्र के माध्यम से । धर्मनटी जैसे शब्द के अर्थ को कामनटी से संपुष्ट करके शीलवती नाम स्वयं में भारतीय शीलवती नारी के ह्रदय के सत्य को शब्दायित कर देता है। ह्रदय में भीषण ज्वार समेटे, बिना बोले अपनी मर्यादा में जो रहे , वह सांस्कृतिक सुरक्षा की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं, लेकिन जो उस ज्वार को तट तक जाने दें, वह संस्कृतिक पर एक न मिटने वाला प्रश्नचिन्ह है । शीलवती के ह्रदय का वही ज्वार जो मर्यादा और अपने भाग्य को स्वीकार लेने की भावना की चहारदीवारियों में बन्दी था, सहस्य उमड पडता है - प्रतोष को पाकर, दुहरा प्रतोष , शास्त्रीय सम्मति के फलस्वरूप प्राप्त प्रतोष वह अपने यौवन के पाँच वर्ष वच्चिंत रही ।

"सूर्य की अन्तिम किरण से ' सूर्य की पहली किरण तक " में सुरेन्द्र जिस प्रकार ओक्काक की मन:स्थिति का फिर – फिर चित्रण करते हैं – वह समस्त भारतीय संस्कृति – सम्पन्न तथाकथित पुरूषों की मन:स्थिति है जो इस बात को स्वीकारना ही नहीं चाहते कि उनसे हटकर भी स्त्री का कोई अस्तित्व है । स्त्री की अपनी तृप्ति भी कोई अर्थ रखती है ।इस बात को पुरूष नजर– अन्दाज करता चला आ रहा है, अपने पौरूष के मिथ्या अहं में । उसे मातृत्व का मुखौटा पहनाकर. भारतीय नारी की भूमिका में जबरदस्ती पेश करता है, भारतीय संस्कृति के नगाड़ों से उनके कान बधिर करता है और कभी उसे अवगुण्ठनवती बनाकर स्वयं अपने ऊपर इतरा रहा है ।

सुरेन्द्र वर्मा ने इसी छल को बेरहमी से ढील दिया है । चोट दोनों को लगती है. बल्कि तीनों को, पुरूष के पति – रूपी अहं को, स्त्री के पत्नी रूपी व्यक्तित्व को और व्यवस्था को, लेकिन यह चोट लगना इस मिथ्या नियति को ओढ़े रहने से अच्छा है ।·[1]

प्रकृति– प्रदत्त अधूरापन और अपने संस्कारों के फलस्वरूप निर्मित अधूरापन – दोनों की अपनी – अपनी स्थिति है । महामात्य राजा – रानी की दशा के प्रति चिंचित दिखाये जाते हैं, लेकिन यह चिंता कितनी खोखली है ।महासारिका बताती है कि महादेवि की तो छह रातों से नहीं सो सकी है ओर ओक्काक भी पूरी रात नहीं सो सके, अन्न का दाना भी उनके मुँह में नहीं गया, लेकिन महामात्य क्रूरता से वही प्रश्न करते हैं – उन्हें ? जयमाला गूँथी जा चुकी है ? पूरी भारतीय समृद्धि के मंगलमय चिन्हों से मंडप सजाया जा रहा है , रत्नजटित स्तम्भ खड़े किये गये हैं, कदली के तोरण बनाये गये हैं , मल्लिका कलियों की मालाओं के जाल तोरणों पर सजाये गये हें , सिन्धुवार पुष्पों की मंजरियाँ जालों से लटकायी गयी है लवंग – पललवों की बन्दरवारे बाँधी गयी हैं और मंगल कलश स्थापित किये

---

1. सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक का सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य सयनारी समस्या के विशेष सन्दर्भ में , डा0 आशा गुप्ता ,समीक्षा पृ0 117

हैं । जिन पर स्वस्ति चिन्ह लगे हैं और यह सब किसलिए कि कविजन जिसे असूर्यस्पर्शा विशेषण देते रहे हैं , वही स्त्री अपने हाथों में जयमाला लेकर राजप्रांगण में उतरे, सहस्रों दृष्टियों का केन्द्र बने और एक रात के लिए किसी ऐसे पुरूष के साथ चली जिसे उसने कभी देखा तक नहीं और उसे अपना रूप यौवन –कौमार्य समर्पित कर दें ।

सुरेन्द्र वर्मा उस दृष्य को बहुत ही उत्कृष्ट कोटि से प्रस्तुत किया है जब शीलवती पतनी रूप में पूरे पतिव्रत्य भाव से अपने उसी पति ओक्काक से इस विपत्ति में सहरा चाहती है ।

पुरूष का यह नपुंसकत्व जो शरीर का नहीं, उसके बुद्धि का होता है, वह शारीरिक नपुंसकत्व से समझौता कर सकती है, लेकिन इस मानसिक नपुंसकत्व से मन में निश्चित ही कहीं गहराई से असन्तुष्ट हो जाती है और यह असन्तोष केवल अवसर की प्रतीक्षा करता है । वह विद्रोहणी, व्यभिचारणी, स्वार्थी, आत्मतोष की भूखी हो सकती है । यही आत्मतोष वह प्रतोष से संयोग से प्राप्त करती है, लेकिन किस मूल्य पर ?

भारतीय संस्कृति स्त्री को विवाह के माध्यम से सुरक्षा प्रदान करती है । वही रक्षक स्वयं यदि वन्य पशुओं को अपनी पत्नी को सौंपे, तो क्या वह पतिव्रता की मर्यादा की दुहाई देने का अधिकारी है ? यह बहुत बड़ा प्रश्न है जो "ध्रुवस्वामिनी" में प्रसाद ने अपने ढंग से उठाया था, सुरेन्द्र वर्मा ने सूर्य की अन्तिम किरण से लेकर सूर्य की पहली किरण तक में अपने ढंग से यों कहें कि इस युग की नारी की आन्तरिक वाणी को बेदर्दी के साथ प्रस्तुत कर दिया है ।

इतिहास के ऐसे सन्दर्भ जो आधुनिक युग में भी मानवता की अक्षुण्ण परम्परा के रूप में ज्यों के त्यों बने हुए हैं, उन्हें उठाना प्रशंसनीय है। मनुष्य का मर्म, मनुष्य का भावजगत्, समस्त ज्ञानोपलब्धि, समस्त वैज्ञानिक प्रगति के बाद भी वैसा का वैसा ही है । न उसका शरीर बदला है, न भाव बदला –

है, न मन । साहित्य जहाँ भी इसे नये बौद्धिक धरातल पर पेश कर पाता है, वहीं निश्चय ही स्तुत्य होता है, युगीन होते हुए भी स्थायी होने की सम्भावना रखता है । सुरेन्द्र वर्मा के इस नाटक की सृष्टि इसी दायरे में रखी जा सकती है । आज की जागृत नारी और मिथ्या अहंकार, मिथ्या पौरूष – भाव से सम्पन्न पुरूषों के लिए यह आँख में गड़ाकर एक स्थिति को सामने रखने वाला नाटक है ।

xxxxxx

5 "बहू"का नाट्य विश्लेषण

(लेखिका – त्रिपुरारी शर्मा – रचना समय : 1976)

नाटक – लेखन के क्षेत्र में महिला नाटककारों का आगमन एक विशेष सुखद तथ्य है । मन्नू भण्डारी, कुसुम कुमार, मृदुला गर्ग, मृणाल पाण्डे तथा त्रिपरारी शर्मा के नाम विशेष रूप से जाने जाते हैं । त्रिपुरारी शर्मा आठवें दशक की नयी प्रतिभा रहीं, आपके नाटकों में – रेशमी यमाल, अक्स पहेली, बहू, काठ की गाड़ी, बाँझ घाटी, सम्पदा , बहुत लोकप्रिय हैं । बहू, रेशमी रूमाल, अक्स पहेली, नाटकों में त्रिपुरारी विशेष रूप से औरत (स्त्री) को समझने की कोशिश की है । औरत की ताकत, उसके मनोभाव और उसके द्वन्द्व को समाज के सामने रखा है । एक बन्द कमरे में रहने वाली औरत कैसे रहती है और वह क्या अनुभव करती है इन्हीं पहलुओं को उभारने की कोशिश उनके इन तीन नाटकों में दिखाई पड़ती है ।

"बहू" (इनका) त्रिपुरारी शर्मा का पहला नाटक सन् 1976 में लिखा गया "बहू " नाटक पर शब्दों का बाहुल्य दृष्टिगत होता है, कहीं तो ऐसी स्थिति बनती हे कि बहू नाटक में बहू स्थिति को विश्लेषित नहीं कर पा रही है । वह इस प्रकार औरत नहीं थी । मेरी दृष्टि से बहू का सरल विश्लेषण नहीं था, बल्कि उसके मनोवेग थे जिन्हें वह दर्शकों के सामने रखना चाहती है । पात्रों के विचारों को द्वन्द्व को शब्द ही स्पष्ट करते हैं । जैसे – बहू घर छोड़कर चली जाती हे, किन्तु वह क्यों छोड़कर जाती है इसे स्पष्ट करने हेतु शब्द एवं संवाद के अतिरिक्त उसकी सोच साथ ही उसकी प्रतिक्रिया स्पष्ट होती है ।

'बहू'नाटक के मुख्य पात्र बहू में स्वाभिमान की स्थिति दिखती है पर यहीं पर नाटक में द्वन्द्व स्थिति का उजागर होता है, जब बहू अपने मृत पति का मुँह नहीं देखती ऐसी नफरत बहू के मस्तिष्क में है साथ ही घर में अपना हक माँगती है और देवर से सम्बन्ध बनाती है, पर जेवर नहीं लेती । बहू का घर में रहना उसकी जिद है । वह यह जताना चाहती है कि तुम लोग मुझसे इतनी नफरत करते हो, तो तुम्हारे सामने रहकर तुम्हें परेशान

करूँगी । देवर के साथ उसका रिश्ता बहू के अकेलेपन और शारीरिक जरूरतों के कारण है, और साथ ही उसमें एक खुन्दक भी है कि मैं इस हद तक जा सकती हूँ । वह मुंशी के साथ भाग सकती है; किन्तु वह इस्तेमाल नहीं होना चाहती । मुंशी की नजरें उसके जेवर पर हैं, चूँकि वह घर से मुक्त होना चाहती है, इसलिए वह जेवरनहीं लेती । जेवर का लेना उसे इस घर के माहौल , मूल्यों और घुटन से बाँधेगा , जिससे वह छुटकारा पाना चाहती है । वह जानती है कि आभूषण दूसरे लोगों के हैं जिन्हें अवैध नियम से एकत्र किया गया है । बहू इन्हें लेना दिमागी बोझ समझती हे । हमें जो पारिवारिक सम्पत्ति मिलती है तो हम इसके माध्यम से घर के मूल्यों से भी जुडतें हैं । इसलिए वह इस सबको छोडकर एक तरह से गले हुए निरर्थक मूल्यों को छोड़ती हैं । ऐसा अनुभव होता है कि बहू की यह जीत है । रामदत्त का जेवरों का पाना घर के मूल्यों से जुड़ना है । बहू घर में जब हक माँगती है तो यह द्वन्द्व और स्पष्ट हो जाता है ।

बहू के नफरत का उफान उस समय बाहर आ जाता है जब रामदत्त बच्चें को स्वीकार करने के लिए मना करता है । नफरत उसका प्रयोजन नहीं था वह उसके आगे चली आती है बहू के मन में बच्चे के लिए एक सपना जाग रहा था । इसलिए घर से भागना बहू को एकमात्र रास्ता नजर आता है ।[1] मुंशी में भी उसके लिए या बच्चे को लेकर कोई सपना नहीं है । जो कुछ है केवल अपने को लेकर है, इसलिए बहू कोई न कोई रास्ता खोज रही है । वह बस्ती के लोगों से जाकर मिलती हे तो उसे संभावना नज़र आती है ।

"बहू" शुरू से उस माहौल के खिलाफ लड़ रही थी, किन्तु स्वयं के बारे में निश्चित नहीं थी । घुटन भरे परिवेश में रहकर ही वह अपना रास्ता चुन सकती थी , इसलिए रामदत्त की रखैल बनना उसके लिए विवशता है, किन्तु जब वह अपने पति के रखैल से मिलती है, तब अपनी स्थिति का मूल्यांकन कर पाती है ।

---

1. बहू –त्रिपुरारी शर्मा, भूमिका

बहू जब घर छोड़कर जाती है तो वह गर्भवती भी है, अगर वह वहीं रहती तो वे लोग उसके बच्चे को खत्म कर देते । यह कहानी कुरूक्षेत्र के पास की सही घटना है, लेकिन अपनी कहानी में घटना से आगे बढ़ती हैं । कुरूक्षेत्र के पास की कहानी में औरत वहीं रहती है इसमें औरत आगे बढ़ती है । यही कारण है कि बच्चे के बाद उसकी भीतरी कोमलता भी जाग उठती है । यहीं बहू को अफसोस होता है कि उसने अपने पति का मुँह क्यों नहीं देखा । निश्चित रूप से त्रिपुरारी शर्मा एक सशक्त नाटककार के रूप में उभरी हैं। भारतीय समाज की नारी की छोटी–बड़ी खुशियों, इच्छाओं, उसकी व्यथा–कथा, उत्पीड़न आदि को बड़ी गहराई से पकड़ा है और उनका प्रभावपूर्ण ढंग से नाट्कीय संयोजन किया है । त्रिपुरारी नारी–मन की आशा आकांक्षा, उसके मनोभावों और उसके द्वन्द्व को बहू नाटक के माध्यम से उजागर किया है ।

"नुक्कड़ नाटक : परमपरा और प्रयोग "

"नुक्कड़ नाटक " उत्तर भारत में रामलीला, कृष्णलीला, आल्हा, दंगल, बिरहा, नाच, नौटंकी, गुजरात में भवाई, महाराष्ट्र में तमाशा आदि लोक नाट्य रूपों से प्रेरणा पायी है । नुक्कड़ नाटक को वर्तमान समाज का जागरूक वर्ग खेलता है । मज़दूर से लगाकर वकील, डाक्टर, छात्र, शिक्षक, किसान और क्लर्क, बच्चे- युवक एवं अन्य सभी प्रकार सदस्य आज खेलते देखे जा सकते हैं । बस एक बार कला – अभिव्यक्ति , जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति , अन्याय के विरूद्ध बेचैनी की तीव्रता ने संकोच का पर्दा उठाया कि सुशिक्षित मध्य-वर्ग और अल्पशिक्षित निम्नवर्ग नुक्कड़ पर हाजिर है ।

नुक्कड़ – नाटककारों का उद्‌देश्य निश्चित ही केवल दर्शकों का मनोरंजन नहीं होता है। नुक्कड़- नाटक में भाग लेते हुए कलाकार तथा दर्शक सीधे-सीधे जनसमस्याओं से साक्षात्कार करते हैं । स्त्री शोषण की समस्या, दहेज़ और बलात्कार की समस्या, खेत-मजदूरों , गरीब-किसानों, दलित समाज पर चल रहे अन्याय, अत्याचार , कारखानों से मजदूरों की छटनी , तालाबन्दी के बिरूद्ध लड़ाई, साम्प्रदायिकता और पृथकतावाद की समस्याएं , वर्तमान समाज में न्याय की समस्या, बेकारी, भुखमरी , अकाल की समस्या, अनाज , पानी , बिजली तथा बीमारी की समस्या, सत्ता – वर्ग के भ्रष्टाचार , पाखण्ड तथा दामन की समस्या, आदि अनेक समस्याओं को सहने –भोगने वाली जनता के बीच, जनता के बीच के ही कलाकार नुक्कड़- नाटकों के द्वारा , इन समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं और केवल यथार्थ – चित्रण भर ही नहीं होता है, नुक्कड़ नाटक में मर्मस्पर्शी तथा विचारोत्तेजक व्यंग्य उपस्थित हैं और साथ ही साथ माजिक संरचना के बदलाव का अनुरोध भी प्रकट अथवा अप्रकट रूप में रहता ही है । यह व्यंग्य और अनुरोध नाटक के अन्त में सामूहिक गीतों के रूपों में भी प्रस्तुत होता है और कभी नाटक के कलाकार के सम्बोधन से सीधे जनता से होता है ।

नुक्कड़ नाटक खेलने वाले कलाकार, दर्शक तथा नाटक के उद्देश्य (कथ्य) से ही यह ज्ञात हो जाता है कि नुक्कड़ – नाटक का स्वरूप "जनवादी" है । यह निश्चित ही एक जनवादी नाट्यक विधा है । स्वांग, नाच, नौटंकी आदि के समान ही, अपनी जनता से जुड़ा हुआ नुक्कड़ नाटक, अपने उद्देश्य के प्रति, परम्परागत नाट्य रूपों की अपेक्षा अधिक सजग है । परम्परागत नाट्य रूपों के अनेक तत्वों – विशेषताओं को आत्मसात करते हुए भी यह उनसे अधिक विकसित और मुखर है । अधिकांश नुक्कड़ नाटक की भूमिका तथा चरित्र, ,सामाजिक बदलाव का होता है । वास्तव में नुक्कड़ नाटक का मूल स्वर राजनैतिक और सामाजिक आर्थिक बदलाव का है । यह दमन के विरूद्ध दमित वर्ग की हुंकार है । यह पीड़ा और नारे की कलात्मक अभिव्यक्ति है । नुक्कड़ नाटक जनवादी विधा होने के साथ– साथ तात्कालिक परिणाम की अपेक्षा रखता है इसमें दीर्घकालीन बदलाव का धैर्य कम दिखता है ।

नुक्कड़ – नाटक की आवश्यकता क्यों हैं ? जनता अपने अभिव्यक्ति –रूप, अपने कला– रूप की सर्जना करती है, प्राप्त साधनों का प्रयोग करते हुए अभाव की दुनिया में अपने भावों का प्रकाशन करती है । वर्तमान परिस्थिति ही नुक्कड़ नाटक के जन्म तथा प्रसार का कारण है । नाट्य गृहों का अभाव तो है ही, गॉव को छोडिये, शहरों में भी नाट्य गृहों का अभाव तो है ही, गॉव को छोड़िये , शहरों में भी नाट्य गृहों का अभाव है । फिल्म और टी0वी0 में हास्य, यौन, मासंलता, आदर्श , सभी कुछ हैं, लेकिन असली जन– समस्याएं या तो वहाँ गैर हाजिर हैं या लायी भी जाती हैं तो बहुत उथले स्तर पर । यदि नाट्य गृह किसी शहर में है भी, तो वे नुक्कड़ नाटक के कलाकारों तथा सामान्य जनता के लिए खासे मंहगें हैं । अन्य नाटकों और " नुक्कड़ – नाटक "में एक स्पष्ट तथा महत्वपूर्ण अन्तर यही दिखलाई देता है कि अन्य नाटकों को देखने जनता के कुछ लोग जाते हैं – थियेटरों में, लेकिन नुक्कड़ = नाटक खुद चलकर जनता के हिस्सों –दर – हिस्सों तक जाते हैं । थियेटर के नाटको की बैसाखियाँ थियेटर हैं । नुक्कड़ नाटक के अपने पॉव होते हैं और उसका मंच नुक्कड़ होता है जो जनता के हर हिस्से के लिए खुला होता है । इसलिए नुक्कड़ – नाटक थियेटर के नाटकों की अपेक्षा अधिक गतिशील होते हैं, अधिक जनोन्मुख होते हैं ।

नुक्कड़ –नाटक के रूप और जबान का प्रश्न उठता है । नुक्कड़ – नाटक यथार्थवादी नाट्य – रूप लेकर आया है । सामाजिक वस्तु के कारण इसके पात्र वर्गीय चरित्र के होते हैं । प्रतीकात्मकता लोक जीवन से जुड़ी होती है , कवि की कल्पना से नहीं । मंच, तथा मंचीय सामग्री के अभाव नुक्कड़ – नाटकों में संरचना – कौशल को जन्म दिया है तथा सांकेतिकता का विकास किया है । संरचना तथा सांकेतिकता नुक्कड़ नाटकों की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं । मशीन ,वायुयान, घर, बाग, पाठशाला, आग, समुद्र सभी नुक्कड़ पर कलाकार अपनी संरचनाओं द्वारा प्रस्तुत कर सकते हैं । गीत – संगीत , नृत्य नुक्कड़ नाटकों में यथावश्यक प्रयुक्त किये जा सकते हैं । सामूहिक गान (कोरस)नुक्कड़ –नाटक का एक प्रसिद्ध उपकरण है जिसका उपयोग नाटक के अन्त में लोक संबोधन के लिए किया जाता है ।

जहाँ तक " जबान" की बुनावट का सवाल है , नुक्कड़ नाटक जनता

का जबान है । जनता में प्रचलित बोली अपने पूरे तेवर के साथ इन नाटकों में विद्यमान है । मंचीय नाटकों की आभिजात्य पूर्ण भाषा से भिन्न देशी कहावतों, मुहावरों, बोली – गाली से नुक्कड़ नाटकों की जबान बनी है । इसमें देशी जबान का मिठासपूर्ण अनापमन तथा आक्रामक तेजी, दोनों हैं।

हिन्दी (हिन्दुस्तानी) में उत्तर भारत में अनेक नगरों गाँवों में नुक्कड़ नाटक का विकास हो रहा है । बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि हिन्दी – भाषी प्रदेशों के साथ ही महाराष्ट्र में भी कुछ जगहों पर हिन्दुस्तानी नुक्कड़ नाटक खेले जा रहे हैं । चूँकि इसकी भाषा में अरबी – फारसी के प्रचलित शब्द हैं और यह संस्कृतनिष्ठता से बरी है, इसलिए इसे "हिनदुस्तानी" या " सरल हिन्दी " कहा जा सकता है । मध्य-प्रदेश,

उत्तर-प्रदेश और बिहार के गाँवों में नुक्कड़ नाटकों का खेला जाना स्वागत –योग्य घटना है । प्रेमचन्द्र की कहानियों, ब्रेख्त के नाटकों तथा हिन्दी के मौलिक नाटक की रंगभूमि बन गया है । यह भारत के हर गाँव शहर के नुक्कड़ जन– समस्या के दस्तावेज तथा जन –संघर्ष के मोर्चे बन रहे हैं । संघर्षशील कलात्मकता ने इन दस्तावेजों तथा मोर्चे में रंग भरा है ।

अभिजात्य वर्ग का एक मिथ्या सोच यह है कि नुक्कड़ के नाटकों में कला नहीं होती है, लेकिन थियेटर तथा गिमिक्स के चमत्कार के बगैर लोगों को बाँधे रखना, कला नहीं है ? नुक्कड़ पर मंचीय – नाटक भी सफलतापूर्वक खेले गये हैं । इससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि नुक्कड़ नाटक में कलागत प्रयोग की अनन्त संभावनायें हैं । यह नाट्य –विधा का विकासमान रूप है । यह एक जनवादी सांस्कृतिक आन्दोलन है जो कबीर के सामाजिक सुधार आन्दोलन की याद दिलाता है । नुक्कड़ – नाटकों के रूप में हर – गाँव – शहर का नुक्कड़ बोल रहा है – प्रेम और पीड़ा के बोल, मानवीय भाव और भंगिमा के साथ प्रयोगधर्मा ताजगी तथा तेवर के साथ नुक्कड़– नाटक दमनकारी व्यवस्था के विरूद्ध एक प्रतिरोधी कोरस के रूप में आया है – एक ऐसा कोरस जिसे दर्शक तथा कलाकार सब मिलकर गा रहे हैं । यह जनहिस्सेदारी नुक्कड़ नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है । इसलिए मंचीय नाटकों में चलने वाला कलात्मक छद्म यहाँ नहीं चल सकता है । मंचीय नाटकों में वैयक्तिकता, जन–समस्याओं से दूरी, रहस्यात्मक, प्रतीकात्मकता , यौन–कुंठा, आदि को पस्तुत किया जा सकता है , लेकिन नुक्कड़ नाटकों में लोकभय से इन्हें प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है । थियेटर में लोग घेरे में होते हैं , जबकि नुक्कड़ पर लोग आज़ाद होते हैं । थियेटर में लोग उन्मुक्त होकर सोच नहीं पाते, जबकि नुक्कड़ पर लोग खुले दिल– दिमाग से सोचते – विचारते हैं ।[1]

विहंगम दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि नुक्कड़– नाटक कथ्य तथा रूप में अर्थात् संदेश तथा जबान में विशिष्ट होना चाहिए । यह विशेषता है– जनता से जुड़ाव, लगाव की । जनता की बोली में, जनता की बात, जन–भाव –भंगिमा में पेश करना सचमुच एक मुश्किल काम है, कठिन शर्त है । इस शर्त को पूर्ण करने वाला नुक्कड़ नाटक ही

---

1. नुक्कड़ नाटक : परम्परा और प्रयोग ।(निबन्ध) श्री सनत कुमार
(नाट्य – समीक्षा विशेषांक) पृ0 154
प्रधान सम्पादक – डॉ0 रामकुमार वर्मा

सार्थक नुक्कड़ नाटक होता है जो जनवादी सांस्कृतिक आन्दोलन को एक ऊँचाई तक ले जा सकता है , जो जनता को झकझोर कर जगा सकता है , उन्हें सक्रिय कर सकता है । नुक्कड़ – नाटक , दलित – दमित जनता का सांस्कृतिक कलात्मक शस्त्र है जिसकी मार धातु तथा बारूद से तेज होती है ।

xxxxxxxxx

आधुनिक मंचित नाटक इस प्रकार हैं –

"अपना – अपना दर्द "	विनोद रस्तोगी, निर्देशन– विजय पण्डित ।
"कोर्ट मार्शल"	स्वेदश दीपक– निर्देशन –अनिल रंजन भौमिक ।
"नागामंडल "	गिरीश कारनाड , अनुवाद निर्देशन –रवि शर्मा, प्रस्तुती– दर्पण ।
"फरार फौज "	उत्पल दत्त, अनुवाद – महेश जायसवाल, निर्देशन मनमोहन भरद्वाज ।
"अच्छे आदमी"	फर्णाश्वर नाथ रेणु, रूपान्तर राजेश जोशी, निर्देशन– चन्द्रमोहन ।
"तक्षक "	मनोज मित्रा, अनुवाद, निर्देशन – शैवाल सिन्हा,
"दो कौड़ी का खेल "	रचना निर्देशन – परिमल दत्त

"पागल घोड़ा " – निर्देशन – राजेन्द्र सिंह ।

" ये सिंहासन है ।"	निर्देशन – राजेन्द्र सिंह
"रामलीला "	राकेश, निर्देशन – सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ
"लोक कथा "	रत्नाकर मतकरी, रूपानतर – ऊषा गांगुली ।
"आरक्त क्षण "	महेश एलकुंचवार, " एक और महाभारत "– रत्नाकर चयनी ।
" कहें ईसा सुने मुसा "	विभु कुमार, निर्देशन – राकोश वर्मा
"दिल की दुकान "	राजेन्द्र कुमार शर्मा, निर्देशन – मोहित बरूआ
"राज दर्शन "	मनोज मित्र, निर्देशन – संतोष गुप्ता
"शंहशाह इडिपस "	सोफोक्लीज, अनुवाद – जितेन्द्र ,निर्देशन –सूर्यमोहन
"श्री कृष्ण जन्म "	बालमुकुन्द बेसने वाले । निर्देशन – राम नारायण
"श्रीराम जन्म"	निर्देशन – लोकेन्द्र नाथ कौशिक
"अन्धा कुप्प "	दामुसांगणी , निर्देशन – नन्द आचार्य
"इस देश का क्या होगा"	"दश मिनट में कयामत " , "लापताक की तलाश " लेखन – निर्देशन – ललित मोहन थपल्याल । (1989ई0)
"एक और द्रोणाचार्य "	शंकर शेष, निर्देशन– विजय कपूर ।[1]

"रक्त बीज "	शंकर शेष, निर्देशन – विजय कपूर ।
"सूर्य की अन्तिम किरण से· पहली किरण तक"	'सुरेन्द्र वर्मा' – निर्देशन –अतुलवीर अरोड़ा ।प्रस्तुती–अभिनेत (चण्डीगढ़) 1989
"बकरी"	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, निर्देशन – मुश्ताक हक ।
"महक गुलाब की "	ओ0पी0 शर्मा, निर्देशन – कवि रतन ।
"अली बाबा "	क्षिरोद प्रसाद विद्या विनोद – निर्देशन –आशीष घोष ।
"माटी मटाल "	गोपीनाथ महान्ति, अनुवाद –किरण चन्द्र, निर्देशन– अजय रोहिल्ला
"गायना पिग "	मोहित चटर्जी, निर्देशन – राजिन्दर नाथ
"मुन्नू "	लक्ष्मी नारायण लाल, निर्देशन – गुलशन कुमार
"दि ओल्ड फैशन्ड कौमेडी	अलेक्सइ अर्बुजोव ।
"तिरिछ "	उदय प्रकाश, निर्देशन –प्रसन्ना
"सर्पतन्त्र "	अब्दुल – बिसिमल्लाह, निर्देशन – महेश वशिष्ठ
"आदाब अर्ज है "	मौलियर, निर्देशन – राकेश डग
"ताम पत्र "	देबाशीष मजूमदार , रूपान्तर –सान्त्वना निगम, निर्दे0 चित्रासिंह
"अमली "	ह्रषीकेश सुलभ, निर्देशन – जे0एन0 कौशल
"दर्द आएगा दबे पॉव "	रचना निर्देशन – शीला भाटिया
"आगरा बाजार "	हबीब तनवीर", निर्देशन – हबीब तनवीर ।
"काया पलट"	सिराज अनवर, निर्देशन – क्यामुद्दीन
"भाना गंगानाथ"	ब्रिजेन्द्र लाल शाह , निर्दे0 मोहन उप्रैती
"मोर पॉखी"	मोहम्मद हसन, निर्दे0 – के0 सी0 शर्मा
"खिसियानी बिल्ली"	–जार्ज फेड्यू ,रूपान्तर– जे0एन0कौशल, निर्दे0 बैरी जान
"सैलानी" "सैलानी "–	गोर्की,रूपान्तर श्री बल्लभ व्यास, निर्दे0अनुराधा कपूर ।
"अपने– अपने अजनवी"	अज्ञेय, निर्देशन – देवेन्द्र राज अंकुर
"कैद–ए–ह्यात !'	सुरेन्द्र वर्मा, निर्देशक – रामगोपाल बजाज
"जोसेफ का मुकद्दमा"	फैज काफ्का, निर्दे0 मोहन महर्षि
"शर्विलक"	रसिक लाल पारीख, निर्देशक –रूपान्तर – बंशी कौल

"ज्वाला"	ऋत्विक घटक, निर्देशन – अरूण कुकरेजा ।
"जहर कौन पिये "	बिलायत जाफरी– पंचानन पाठक निर्देशक थे।
"फन्दी "	शंकर शेष,"संध्या बेला"– का निर्देशन पंचानन पाठक ।
"गोरख धंधा"	अनुवाद और रूपान्तर – निर्देशन – अक्षरा के0वी0
"आखिरी सवाल "	बसन्त कानेटकर , रूपान्तर –कुसुम ताम्बे, निर्दे0 शेखर वैष्णवी
"सराय की मालकिन"	गोल्डानी, निर्देशन – शेखर वैष्णवी
"अन्धेरे का बेटा "	रेवती शरण शर्मा, निर्देशन – अजय मनुचंदा
"बॉसुरी बजती रही "	गोविन्द चातक, निर्दे0 अजय मनचन्दा
"आधे –अधूरे "	मोहन राकेश, निर्देशन – श्यामानन्द जालान (7.12.89 दिल्ली)
"और राजा मर गया "	यूजीन आइनेस्को, अनु0 यामासराफ, निर्दे0 अनमोल वेलानी
"कन्यादान	विजय तेन्दुलकर , निर्देशन – श्यामानन्द जालाना
"मुक्ति पर्व"	अविनाश चन्द्र मिश्र, निर्दे0 परवेज अख्तर
"चरण चोर "	हबीब तनवीर, निर्देशन – शशिकान्त
"छतरियॉ"	रचना निर्देशन – अजय मलकानी
"छोटे पर्दे का कमाल"	रचना निर्देशन – श्याम लाल
"लहरों के राजहंस"	मोहन राकेश – निर्देशन अजय मलकानी
"नारायणपुर"	विनय दुबे, निर्देशन – जयन्त देशमुख
"कुक्कू डार्लिंग"	रमाशंकर निवेश, निर्देशन – के0 आरिफ
"वीर अभिमन्यु "	राधेश्याम कथावाचक , निर्देशन – बी0एम0शाह
"सुनो जनमेजय"	आद्य रंगचार्य, निर्दे0 बी0एम0 शाह
"द ट्रेन इज वन आवर लेट"	सुरेन्द्र दुबे, निर्दे0 संतोष जैन
"दो टॉग का आदमी"	सुरेन्द्र दुबे, निर्दे0– संतोष जैन ।
"गधों की बारात"	निर्देशन – यश ओबेराय।
"जुलूस "	बादल सरकार, निर्देशन – सुप्रियोसेन ।
"सैंया भये कोतवाल"	बसनत सबनीस, निर्दे0 सुप्रियो सेन

"पैसा फेंक तमाशा देख" बर्तोल्त ब्रैश्ट, रूपान्तर – अतुल निर्देशन–फ्रिट्ज बेनेरिज

"केन्द्रा" ज्यॉं राशिन, रूपान्तर– कृष्ण बल्देव वैद, निर्देशन आलोक चटर्जी

"नाटक की आड़ में " निर्देशक –अख्तर अली

"हत्या काण्ड " निर्देशक – प्रदीप श्रीवास्तव

"ऊँ ऊँ कुँवर जू " रूपान्तर – निर्देशन– राजकमल नायक

"चन्द्रहास" लेखन – निद्रेर्शन – लईक हुसैन

"दुलारी बाई" मणि मधुकर " निर्देशन – राजीव आचार्य

"मोहम्मद भाई की दुश्मन" रचना–निर्देशनक– विलास जानवे

"अश्वत्थामा" राजानन्द, निर्देशन, इकबाल हुसैन

"अफसरू" हिमेश– निर्देशन – आलोक हंस ।[1]

"छिन्नमस्ता" प्रभा खेतान, रूपान्तर निर्देशन – गिरीश रस्तोगी (29.12.93)

"गरीब की दुनिया " श्रीकृष्ण पहलवान, निर्दे0 संतोष गुप्ता

"जनपथ किस " अखिलेश्वर झा, रूपान्तर – निर्दे0 रंजीत कपूर

"अबूहसन" बादल सरकार, निर्दे0 – उर्मिल कुमार थपल्याल

"किस्सा काशीराम का" सतीश अकेला, निर्दे0 – रवीन्द्र कुमार

"बूटस:एक प्रतिनायक" राजशेखर त्रिपाठी, निर्दे0 सुधीर श्रीवास्तव

"शरीफ लोग, मैंने नहीं देखा नवनीत मिश्र, रूपान्तर, निर्दे0 राय नन्द राय।

"तीन रंग तीन तीन आयाम अतुल शर्मा, शूरवीर त्यागी तथा जागृति उनियाल की कहानियों पर आधारित

"गुडबाय स्वामी" सुशील कुमार सिंह, निर्दे0 मुकेश शर्मा

"ठेके का ताजमहल" के0पी0सक्सेना, निर्दे0 शकील अहमद

"बापू की हत्या हजारवीं बार सुशील कुमार सिंह, निर्दे0 सन्दीपन

"मारीच संवाद " अरूण मुखर्जी – निर्दे0 – आतम जीत सिंह

---

1. भारतीय रंगमंच, त्रैमासिक –जनवरी मार्च 1993 (नाटक डायरी–1989) पृ0 88– 91. सम्पादक – नेमिचन्द्र जैन

"साक्षरता अभियान" डॉ० अनिरुद्ध प्रसाद श्रीवास्तव, निर्दे० डॉ० अनिरुद्ध प्रसाद श्रीवास्तव[1] (1993 ई०)
"बल्लभपुर की रूपकथा" बादल सरकार, निर्दे० – सतीश आनन्द

"कबिरा खड़ा बाजार में" भीष्म साहनी, निर्दे० एम०के०रैना

"महायज्ञ", लौट आओ " का निर्देशन मुश्ताक ने किया ।

"सफर"– विजय तेन्दुलकर, निर्देशन – राजिन्दरनाथ

"नाटक के बीच" लेखन निर्देशन – मोहन महर्षि ने किया है ।

"ऊपर से नीचे " लेखन – निर्देशन – आर० एस०विकल

"हानूश" भीष्म साहनी, निर्देशन – अरविन्द गौड़

"मेरा दोस्त भूतनाथ" मैरी चेस, अनुवाद – निर्देशन – रजीत कपूर

"खालिद की खाला" बेगम कुदसिया जैदी, निर्दे० अजय रोहिल्ला

"दीपशिखा " लेखन निर्देशन – रेवती सरन शर्मा

"सिकन्दर –ए–सानी" रघुवीर चौधरी, निर्दे० अरविन्द गौड़

"आने भी दो यारों" वर्नाड कॉप, रूपानतर, पीयूष मिश्र

"पंख होते तो उड़ जाती" टेनेसी विलियम्स, अनुवाद– विजय कुमार

"पैसा न ध्यल्ला गुमान- सिंह रोस्यल्ला" "महेश एंलकुचवार , निर्दे० हरिसेमवाल

"बोलो अल्फ्रेड" लेखन निर्देशन – गुरूदत्त पाण्डेय

"गुमनाम रास्ते" निर्देशन – सुरेश्वर अरोडा

"शनिवार रविवार" सतीश आलेकर अनुवाद– प्रकाश भट्टम, निर्दे० –चन्द्रमोहन

"बाघ" शिशिर कुमार दास, अनुवाद – रणजीत शाहा

"जमादारिन"लेखन– निर्देशन – हबीब तनवीर

"लोक देवता" ब्रिजेन्द्र लाल शाह, निर्दे० एम०के०रैना

"ये लोगों लेओ क्या है" अनोइल्ह" अनुवाद = निर्देशन– रॉबिनदास

"भगवान का भूत" राजा चटर्जी , निर्दे० रॉबिनदास

"राजावलि की नई कथा" लेखन– निदे० रेवती सरन शर्मा

"आतंक के साये " बर्तोल्ल ब्रैश्ट, अनुवाद– नीलाभ, निर्दे० – अमाल अलाना ।

"गाँधी " लेखन – निर्देशन – प्रसन्ना

---

1. साक्षरता अभियान : डॉ० अनिरुद्ध प्रसाद श्रीवास्तव

"तीन बहनें" अन्तोन चेखव, अनुवाद जाहिदा जैदी

"भारतेन्दु चरित" अजित पुष्कल, निर्दे0 परितोष सांद

"मंथन" सीमा अधिकारी, निर्दे0 – श्यामानन्द जालान

"होटल दिलरूबा" जी फेदो अनुवाद– जे0एन0कौशल , निर्दे0 फैसल अल्फाजी

"खोल दो" सआदत हसन मंटो, रूपान्तर – निर्दे0 – मायाकृष्ण राव

"जिस लांहौर नहीं देखया " असगर वजाहत , निर्दे· हबीब तनवीर ।

"लंका विजय के बाद " हरिशंकर परसाई, निर्दे0 राजिन्दर नाथ

"उचक्कों का कोरस" अविनाश चन्द्र मिश्र, निर्दे0 राजिन्दर नाथ

"जब शहर हमारा सोता है" जेराम डी रॉविंस, निर्दे0 एन0के0 शर्मा

"देख रहे हैं नैन " लेखन – निर्देशन – हबीब– तनवीर

"रामी" ब्रिजेन्द्र लाल शाह, निर्दे0 – मोहनउप्रैती

"साक्षरता अभियान" लेखन – निर्देशन उदय सिंह बादल

"एक मामूली आदमी" अशोक बी0लाल, निर्दे0 रंजीत कपूर

"हस्तिनापुर" नन्द किशोर आचार्य, निर्दे0 राम गोपाल बजाज

"बियावन में उगले किंशुक" सुधा श्रीवास्तव, निर्दे0 – विपिन कुमार

"मंत्रिमण्डल" जितेन्द्र मित्तल", निर्दे0 दीनानाथ मिश्र

"बलि का बकरा " चन्द्रशेखर कम्बार, अनु0बी0आर0 नारायण

"रामी" बिजेन्द्र लाल शाह, निर्दे0 मोहन उप्रैती

"सत्यशोधक " निर्देशन– सुधन्वा देश पाण्डेय

"द्वन्द्व " अमर गंगोपाध्याय, निर्दे0 गौरीशंकर बनर्जी

"मादर–ए–वतन–लेखन" निर्दे0 राजेश अस्थाना

"होली" महेश एल0 कुंचवार, निर्दे0 स्वानन्द किरकिरे

"घाटी में मुनादी" धर्मवीर भारती, निर्दे0 सुन्दर आनन्द

"नया गोकुल " पु0ल0देशपाण्डे, निर्दे0 कुमार किशन

"खुदा खैर करें आत्माराम सावन्त निर्दे0 पूरन शखवाय

"झूठा सच" यशपाल, निर्दे0 राजीव गोविल

धरती का ईश्वर"   रमेश तिवारी, निर्दे0 भानु चन्द्र का सवर

"नहले पे दहला"   गार्द पीश, निर्दे0 आलोक चटर्जी

"नदीः एक लोक कथा "   निर्देशन – राज कमल नायक

"नाटक नहीं, कांवर"   लक्ष्मीकान्त वैष्णव, निर्दे0 सतीश मेहता

"पूरब का छैला"   जे0एम0सिन्जे, निर्देशन– राजा बन्देला

"लटकमलकम"   शंखधर, अनुवाद– राधाबल्लभ त्रिपाठी

"सीढ़ियाँ" दया प्रकाश सिन्हा, निर्दे0 शेखर, वैष्णवी

"एक अकेली एक सुबह"   डोरियों को फ्रैंका , निर्दे0 अतुल तिवारी

"सुदामा दिल्ली आये"   हमीदुल्ला, निर्देशन– सतीश शर्मा

"प्राकट्य " हंसमुख बराडी, निर्दे0 भानुभारती

"किस्सा पहाड़ सिंह का"   किरण घई, निर्देशन – राजन सभरवाल

"फुनगी " लेखन– निर्देशन – सरताज माथुर

"ढाई आखर प्रेम का"   बरून्त कानेटकर" निर्दे0 सौरभ श्रीवास्तव

"व्यक्तिगत" लक्ष्मी नारायण लाल, निर्दे0 सौरभ श्रीवास्तव

"शुतुरमुर्ग " ज्ञानदेव अग्निहोत्री, निर्दे0 श्याम पवार

"उधार की वसूली"   हरीश तिवारी, निर्दे0 सीमा शर्मा

"टिटला पंडित "   पुष्पराज निर्दे0 सुरेश शर्मा

"लाख की नाक "   सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, निर्दे0 – सीमा शर्मा [1]

---

1. नटरंग ,खण्ड– 15, अंक 60–61 जुलाई –दिसम्बर 1994

   (नाटक डायरी –1993) पृ0 107– 112

   सम्पादक – नेमिचन्द्र जैन

अध्याय – छः

"नाट्य – प्रबन्ध"

यथा जीवत्स्वभावं हि परित्यज्यान्यदेहिकम् ।
परभावं प्रकुरूते परभावं सगाश्रितः ।।

एवं बुध. परंभावं सोष्स्मीति मनसा स्मरन् ।
येषां वागंगलीलाभिश्चेष्टाभिस्तु समाचरेत् ।।

जिस प्रकार जीव एक शरीर त्याग कर अन्य देह में प्रवेश कर दूसरे जीव के स्वभावानुसार आचरण करने लग जाता है, उसी प्रकार पात्र को चाहिए कि वह जिसकी भूमिका कर रहा है उसका मन से स्मरण करें और उसके बाद अपनी वाणी तथा आंगिक क्रियाओं को उसके अनुरूप बनालें ।

नाट्य प्रबन्ध

"नाटक के तत्व – शास्त्रीय विवेचन "

काव्य के मुख्यतः 2 भेद होते हैं – (1) श्रव्य काव्य (2) दृश्य काव्य ।जिसमें कवि किसी प्रख्यात कथा को अपने आप ही वर्णन करता है वह श्रव्य काव्य है । नाटककार जिस –जिस स्थिति का वर्णन करना चाहता है उसी स्थिति के व्यक्तियों से वर्णन कराता है ऐसे काव्य को दृश्य काव्य कहते हैं । यथा – वेणी संहार , रत्नावली ,शकुन्तला आदि । इस काव्य में जो पात्र होते हैं वे अपनी स्थिति के अनुसार उसी स्थिति—————— का वेश धारण करते हैं और नाटकों की रंगभूमि में वैसे ही हाव – भाव कटाक्ष से प्रत्यक्ष दिखलाते हैं ।

नाना प्रकार के भावों और अवस्थाओं से परिपूर्ण लोकवृत्त का सजातीय अनुकरण रूप नाट्य होता है । यह नाट्य विश्व जीवन की ऐसी विशाल – रंगवेदिका है जिसमें प्रत्येक कला, विद्या, ज्ञान, योग, कर्म आदि का नाट्य प्रदर्शन होता है । नाट्य का प्राण रस लोक – चेतना से स्पन्दित होता है, उसके मूल में लोकोत्सव प्रेरक शक्ति के रूप में अपना महत्व प्रदर्शित करते हैं जिसमें तीनों लोकों का भावानुकीर्तन और जन– मन के अनुरंजन का भाव वर्तमान रहता है ।

नाट्य में अभिनय :

नाट्य अथवा अभिनय प्रयोग के लिए होता है । अभिनय में पात्र अनुकार्य आदि की अवस्था का साजात्य अनुकरण करता है । अपनी आंगिक चेष्टाओं ,वाणी के सन्तुलित उपक्रम,

मनोवेगों की प्रांजल अभिव्यंजना उचित वेश – विन्यास तथा अवस्था और प्रकृति के अनुसार वह कवि– निबद्ध पात्रों उनके विचारों, भावों तथा कथावस्तु आदि को रूपायित करता है । इन माध्यमों के द्वारा प्रेक्षक को रसाभिमुख करता है, अतएव यह अभिनय करने वाला पात्र " अभिनेता" " भी होता है । समस्त नाट्य कर्म अभिनय में ही सन्निविष्ट होता है । अभिनय होने पर काव्य होता है और नाट्य ही रस होता है । वस्तुतः अभिनय नाट्य और रस क्रमशः नाट्य की रसाभिमुखी विकासशील प्रक्रियाएं हैं ।[1] नाट्य अभिनीत होने पर रस्य होता हे और रस्यता से ही नाट्य की प्राण रूप आस्वाद्यता रहती है । यह अभिनय चार प्रकार का होता है – (1) आंगिक (2) वाचिक (3) सात्विक (4) आहार्य ।

आंगिक अभिनय :

अंग, उपांग और प्रत्यंगों की चेष्टा आदि के द्वारा आंगिक अभिनय होता है । जैसे – कोई पात्र दु:शासन का किरदार कर रहा है । वह दु:शासन रूपधारी नट (पात्र) को द्रोपदी के केशाकर्षण के समय अपने हाथ से द्रोपदी रूपधारी पात्र के बाल पकड़कर खींचना पड़ेगा इसे आंगिक अभिनय कहते हैं ।

वाचिक अभिनय :

इस अभिनय के द्वारा कवि निबद्ध पात्र, काव्य एवं जीवन सौन्दर्य की व्यंजना करता है । नाट्य के पाठ्य अंश का प्रयोग वाचिक अभिनय द्वारा सम्पन्न होता है । यथा – बालक के समान भाषण के लिए बालक के ही समान तुतलाकर बोलना होता है ।

---

1. हिन्दी नाटक सिद्धान्त विवेचन – गिरीश रस्तोगी, पृ0 – 9

सात्विक अभिनय :

सात्विक अभिनय द्वारा मनुष्य के सुख – दु:खात्मक मनोवेग की अभिव्यक्ति होती है। सब अभिनयों के सम्पन्न होने पर भी सात्विक अभिनय के वेग से अनुकार्य पात्र से साधारणीकृत मनोभावों का पूर्ण प्रस्फुटन होता है ।स्तम्भ, रोना, काँपना, पसीना आना, अश्रु आदि सात्विक चिन्हों के द्वारा मनोभाव की अभिव्यक्ति होती है ।

आहार्य अभिनय :

इसमें मुख्यत: वेशभूषा आदि नेपथ्य विधियों से सम्बन्धित अभिनय का एक प्रकार है अन्य अभिनयों की अपेक्षा यह इस अर्थ में भिन्न है कि आहार्याभिनव विधियों का प्रयोग नेपथ्य में ही सिद्ध कर लिया जाता है अन्य अभिनयों का प्रयोग रंगमंच पर होता है ।

रूपक के पात्र

रूपक दो प्रकार के हैं – (1) जिस समय का प्रसंग या रूपक होता है उस प्रसंग के व्यक्ति । (2) खेल दिखाने के लिए जो नाटक रंग भूमि में आते है । तीन पात्र हैं –

(1) मुख्य नायक

(2) मुख्य नायिका

(3) उपनायक अन्य पात्र

नायक :

कथा भाग में मुख्य पात्र के अधिकारी को नायक कहते हैं । शकुन्तला नाटक में दुष्यन्त राजा नायक थे। नायक 4 प्रकार के हैं –

(1) **धीरोदात्त :**

जिसका स्वभाव अपनी स्तुति कराने का न हो, क्षमाशील और गम्भीर हो, जिसका मन पराभूत नहीं है जिसकी बाहें गहीं उसका निर्वाह करे यथा-रामचन्द्र युद्धिष्ठिर आदि ।

(2) **धीरोद्धत :**

जो ढ़ीठ स्वभाव का हो, कार्य करने में जिसकी मति स्थिर हो । जिसका स्वभाव थोड़ा सा कपट मुक्त हो । गर्भित हो, बलिष्ठ हो । जैसे – भीमसेन आदि ।

(3) **धीर ललित :**

जो नाना प्रकार की कलाओं से निपुण हो, विलासी और चतुर हों । नृत्य और गायन का रसिक हो ।यथा – कृष्ण, वत्सराज आदि ।

(4) **धीर प्रशांत :**

सज्जन मनुष्य के गुण हों, उपर्युक्त गुण न हो । मालती माधव में माधव ।

नायिका

कथा के फल की मुख्य अधिकारिणी नायिका होती है । अभिज्ञान शाकुन्तला में – शकुन्तला ।

नायिका को तीन भाग में बाँटते हैं –

स्वीया → स्वस्त्री

परकीया → परस्त्री

साधारणी → वेश्या

स्वीया नायिका के तीन भेद :

(1) मुग्धा (2) मध्या (3) प्रगल्भा

मुग्धा जिसका यौवन प्रारम्भ हो, जिसका मन कोमल हो, रति विषय के भोग में पराङ्मुख होती है अर्थात् उसकी ओर रूचि नहीं होती और जिसको लज्जा विशेष रहती है ।

मध्या जिसका काम और यौवन प्ररूढ़ हो जिसको लाज थोड़ा हो और बात करने में बड़ी चतुर हो ।

प्रागल्भा जो अपने पूरे यौवन में हो और काम करके व्याप्त और रति विषय में कुशल हो और जिसको लज्जा अति थोड़ी हो श्रृंगार रस में इन भेदों को छोड़ स्वीया नायिका के 8 भेद किये गये हैं ।

1. **स्वाधीनपतिका** जिस पर उसका पति विशेष आसक्त हो ।
2. **खण्डिता** अपने पति को अन्य स्त्री के साथ रमण करता देखकर ईर्ष्या से कुपित होती है ।
3. **अभिसारिका** गुप्त रीति करने के हेतु अपने कंथ के पास संकेत स्थान पर जावे या उसको बुलावे ।
4. **कलहांतरिता** जिसको उसका पिय अनुनय करे परन्तु वह उसका निरादर करके फिर पछतावे ।
5. **बिप्रलब्धा** कंत ने संकेत स्थान में वहाँ आने को कहा था वहाँ जाकर उसको नपाकर जो अपमानित हो ।
6. **प्रोषित भर्तृका** जो पति के परदेश में जाने के कारण काम दुख से व्याकुल हुई हो ।
7. **वासक सज्जा** आज मेरा पति मेरे पास आगमन करेगा इस इच्छा से क्रीडा ग्रह में आभूषणादिक पहन कर जो राह ताक रही हैं ।

8. **बिरहोत्कंठा** पति के संगम का निश्चय रहते भी उसके आगमन न करने से विरह से व्याकुल होकर उत्कंठ को प्राप्त होती है ।

परकीया के भेद – इसके दो भेद

1. प्रौढ़ा – परस्त्री
2. कन्यका – जिसका व्याह न हो ।

(पिता इत्यादि के अधीन होने के कारण इसको भी परकीया में गिना है ।)

साधारणी : वेश्या – यह अन्त:करण से किसी पर आसक्त नहीं होती ।

उपनायक : वीर रस के रूपक में जिसके लिए नायक का पराक्रम वर्णन किया गया हो उसको उपनायक है जैसे – रामायण में रामचन्द्र नायक और रावण उपनायक है ।[1]

"रूपक सम्बन्ध के पात्र "

सूत्रधार : इसका काम सब नाटक पात्रों को रूप भरवाना और उनसे नाटक की भूमिका की रंगभूमि में अपना काम कराना होता है । यह नाटक का मुख्य व्यवस्थापक होता है इसलिए इसे सूत्रधार कहते हैं । यह नाट्य शास्त्र में निपुण व्यवहार कुशल धैर्यवान संगीत शास्त्र को जानने वाला होता है ।

नटी सूत्रधार की स्त्री, यह भी सूत्रधार की तरह गुणों से युक्त वेष धारण करती है ।

पारिपार्श्विक सूत्रधार का सहायकारी होता है । इसको मारिष भी कहते हैं । सूत्रधार से कम बुद्धि रखता है ।

---

1. नाट्य शास्त्र : भरतमुनि, पृ0 36

विदूषक इसका कार्म हास्य उत्पन्न करने का होता है यह नायक का साथी भी बनता है ।

पीठामर्द विदूषक से कम वुद्धि रखने वाली नायक का साथी होता है।

विट यह धूर्त, भेष बदलने में चतुर उपचार करने में चतुर, नृत्यादि कलाओं को कुछ कुछ जानता रहता है ।

चेट विट के समान होता है ।

सब रूपलेने और धारण करने वाला होता है

नेपथ्य वा जवनिका

नाटक के पात्रों को जहाँ वेष दिया जाता है अर्थात जहाँ अपना रूप भरते हैं उस स्थान को नेपथ्य का जवनिका कहते हैं; यहस्थान जहाँ नाटक खेलते हैं उसके पीछे होता है ।

जहाँ नाटक का खेल होता है उसको रंगभूमि कहते हैं ।रंगभूमि में जो पात्र आते हैं उसी परदे के भीतर से आते हैं । रूपक में आकाशवाणी यादेवताओं की वाणी या दूर के शब्द की आवश्यकता होती है तब शब्द नेपथ्य से आते हैं । आज कल अच्छे परदे (रंगविरंग) के कारण नाटक और उत्कृष्ट बन जाता है ।

वस्तु नाट्य कथा का जो कथा भाग होता है उसे वस्तु कहते हैं यह दो प्रकार का होता है

(1) अधिकारिक

(2) प्रासंगिक

मुख्य कथा भाग को अधिकारिक कहते हैं । यथा – रामायण नाटक में श्री रामचन्द्र जी का कथा भाग आधिकारिक है ।

प्रासंगिक

मुख्य कथा का जो सहायकारी भाग होता है उसे प्रासंगिक कहते हैं । यथा – रामायण नाटक में सुग्रीव का रूप प्रासंगिक है । उत्तम प्रकार के वस्तु के टूटन ही नाटककार की चतुराई होती है ।

मुख्य कथा भाग के सम्बन्ध मे जो कथा भाग आता है । उन सबको एक दूसरे के साथ उत्तम रीति से जोड़ने को सन्धि कहते हैं । इस सन्धि की रचना कठिन होती हैं।

"वस्तु "रचने में कवि को जिस रस का वर्णन करना अभीष्ट हो उसी रस के साधने में विशेष लक्ष देना चाहिए , चूँकि नाटक में (रूपक (मुख्य रूप से रस ही की प्रधानता होती है । यदि मूल कथा में रस को बिगाड़ने की कोई बात आये तो शास्त्रों में कहा गया हे कि उस मूल कथा के भाग को ही हटा देना चाहिए । यदि रस की पुष्टिकरण करने वाली कोई नयी बात भी सूझे जो उस मूल का कथा भाग मे न हो तो उसको अवश्य उसमें मिला दें, पर रस का विच्छेदक भी न होने दे । यथा – श्रीराम चन्द्र जी ने छल से बाली को मारा, यह धीरो दात्त नायक को योग्य नहीं है इसलिए प्रासंगिक कथा भाग को उत्तर रामचरित्र नाटक में रखा ही नहीं

वस्तु रचना में देश और काल का बड़ा ही विचार रखना चाहिए जो कथा भाग (इतिहास) जिस देश और समय के लोकाचार के अनुसार हो उस देश की जैसी रीति- भाँत होउसी प्रकार का वर्णन करना चाहिए । यथा – पुराण काल के वर्णन के सन्दर्भ में युद्ध प्रसंग में तोप, बन्दूक युद्ध का वर्णन करना यह वर्णन सदैव अनुचित ही होता है । आज के ग्रन्थ कर्ताओं को तो इस बात का ध्यान देना चाहिए जो बातें आजकल के समय के अनुसार असम्भव जान पड़े उनका कथन किसी योग्य प्रसंग बिना कदापि न करें ।

पात्रों का भाषण

जो राजा का रूप लेता है उसका राज्य कैसा था उस युग की वेशभषा और रस के अनुसार उसके वक्तव्य निकलने चाहिए स्त्रियों का भेष लेने वाले को स्त्रियों के समान । परिचारक और गणों को अपनी-अपनी योग्यतानुसार । पण्डित का किरदार करने वालों को पण्डितों के समान भाषण करना चाहिए । वार्ता थोड़ी ,अर्थ बहुत से ऐसे भाषण करने चाहिए । जहाँ रूदन चिल्लाकर हो वहाँ चिल्लाकर रोना आँसू निकलना होना चाहिए जहाँ खुशी का दृश्य वहाँ हंसमुख मुद्रा आनी चाहिए यथा स्थान पर हँसना चाहिए । जहाँ वीरता का दृश्य वहाँ नायक था नायिका में जोश या वीर रस को केन्द्र में रखकर अपनी रखनी चाहिए ।

कथाभाग की रचना :

कथा भाग की रचना में मुख्य कथा भाग से दूसरी कथाओं का सम्बन्ध ऐसा दिखाया जाये कि समाप्ति के अंक पढ़ने तक वाँचने वालों को न जान पड़े कि कथा की समाप्ति किस

4. भारती वृत्ति :

जहाँ नाट्य लेखन में मागधी, पैशाची इत्यादि की भाषा बहुत आती है उसे भारती वृत्ति कहते है ।[1]

"अर्थ प्रकृति "

अपने इच्छित अर्थ की सिद्ध हेतु जो दूसरी बाते होती हैं उसे अर्थप्रकृति कहते हैं , इसके 5 भेद होते हैं -

1. बीज 2. बिन्दु 3. पताका 4. प्रकरी 5. कार्य ।

1. बिन्दु :

कथार्थ की परि समाप्ति हुई हो और वहीं अर्थ आगे चलने के लिए कारण होती है यथा - रत्नावली नाटक में अनंगपूजा की परिसमाप्ति के समय कथा भाग की पूर्ति हुई ऐसा जान पड़ता था ; इतने में ही उदयनस्येदोरिबोद्धीक्षते यह वाक्य सागरिका ने सुन करके "क्या यह, वह उदय नरेन्द्र हैं ।" इत्यादिक जो उसका (सागरिका) भाषण हुआ उससे कथार्थ का सम्बन्ध आगे चला ।

पताका :

मुख्य फल का जो साधनभूत हो पर " नायक" को छोड़ दूसरे पात्र से प्रसंगवृत्त

---

1. नाटक के तत्व - कमलिनी मेहता

पृ016

उत्पन्न हुआ हो उसको पताका कहते हैं । यथा रामचरित्र में सुग्रीव का वृतान्त । शाकुन्तल में विदूषक का वृतान्त । यह पताका गर्भ वा विमर्ष नामक सन्धि तक होती है ।

प्रकरी :

एक देशीय प्रासंगिक वृत्त को कहते हैं जैसे – रामचरित्र में जटायु की मोक्ष प्राप्ति । इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि नायक के स्वकीय फलांतर में प्रकरी नहीं कहते ।

कार्य :

धर्म, अर्थ, काम, इसमें से एक वा अनेक का साधन करना हो उसको अथवा वस्तु के मुख्य फल को कार्य कहते हैं । इस कार्य के 5 अंग होते हैं – (1) आरम्भ (2) यत्न (3) प्रात्याशा (4) नियताप्ति (5) फलागम ।

आरम्भ : मुख्य फल की सिद्ध के अर्थ में जो उत्सुकता होती है उसे आरम्भ कहते हैं ।

यत्न : फल प्राप्ति के हेतु जो उद्योग किया जाये उसको यत्न कहते हैं ।

प्रात्याशा : उपाय और अपाय इनकी शंका से जो फल प्राप्ति संभव हो ।

नियताप्ति अपाय का निवारण होकर फल प्राप्ति के विषय में जो निश्चय होता है उसको नियताप्ति कहते हैं ।

फलागम : अभीष्ट फल के पूर्ण प्रकार से प्राप्त होने को कहते हैं । इन पाँच अवस्थाओं के योग से कथा भाग के अनुक्रम से 5 भाग होते हैं उनको सन्धि कहते हैं ।

<u>सन्धि :</u> किसी प्रधान कार्य के सम्बन्ध में जो अलग कथांश उस प्रधान कार्य से सम्बन्ध रखते हैं उसको सन्धि कहते हैं । इसके 5 भेद हैं ––

1. <u>मुख संधि :</u>

"आरम्भ, नामक कार्य भोग से युक्त और जिसमें बीज नामक अर्थ प्रकृति दिखाई हुई होती है ; उसको मुख संधि कहते हैं । यथा – रत्नावली नाटक का प्रथम अंक ।

2. <u>प्रतिमुख सन्धि :</u>

मुख सन्धि जो दर्शाया हुआ बीज कुछ छिपा, कुछ प्रगट हुआ ऐसा प्रकाश जिसमें हो वह प्रतिमुख संधि जानिये । यथा – रत्नावली के प्रथम अंक में "सागरिका "।

3. <u>गर्भ सन्धि :</u>

प्रतिमुख संधि में प्रकाशित हुए बीज का उद्भव, लोप, और फिर उसकी खोज करना जिसमें वह गर्भ सन्धि है । इसमें मुख्य फल गर्भित रहता है । यथा – रत्नावली नाटक में सामरिका का हस्तस्पर्श, राजा का होना, यह उद्भेद है । वासवदत्ता का आना हास, हुआ और बंसत को सागरिका का संदेश लाने में देरी हो जाने से राजा का चितांतुर होना अन्वेषण है ।

4. <u>विमर्श सन्धि :</u>

गर्भ से बीज : विशेष फैलकर शाप अथवा भय इत्यादि से जीवित हो जाये, उसको विमर्ष सन्धि कहते हैं । यथा – दुर्वासा के शाप देने से राजा दुष्यन्त शकुन्तला को भूल गया ।.

5. **निर्वहन संधि :**

बीज युक्त चार सन्धियों को एकत्र करना अन्त में एक ही कार्य जोड़ देने को निर्वहन संधि कहते हैं ।[1]

नाटक कैसा होना चाहिए ?

इसके सन्दर्भ में भरत सूत्र में कहा गया है कि – पाँच सन्धि, चार वृत्ति, चौसठ सन्धियों के अंग, छत्तीस लक्षण, चौतीस नाट्यालंकार, इन सबसे युक्त और फिर महारस, महायोग, उदात्त रचना, महापुरूषों का संचार इनसे युक्त है और फिर सुलिष्ट हो, और जिसके योग से सुख हो, ऐसा नाटक कवि रचना उचित, इतनी बातें नाटक में अवश्य होनी चाहिए ।

साहित्य दर्पण में नाटक का लक्षण इस प्रकार लिखा गया है –

" नाटक का वृतान्त होना चाहिए, पाँचों संधियों से युक्त हो, वैसे ही विलास, ऋद्वि, धैर्य, गांभीर्य और अनेक प्रकार के ऐवर्श्यों से युकत होना चाहिए , उसमें सुख और दुख के प्रसंग आवे उसके अंक पाँच से अधिक दस तक हों । नाटक का नायक धीरोदान्त, प्रतापवान, प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न दिव्य अथवा दिवयादित्य होना चाहिए श्रृंगार अथवा वीर इन दोनों में से कोई एक रस भी अवश्य आने चाहिए । निर्वहण संधि में – अद्‌भुत रस होना चाहिए । कथा में चार बार पाँच पात्र हों । आगे प्रत्येक अंक छोटे – छोटे हों, किसी के मत में कोई बड़ा और कोई छोटा होना चाहिए । किसी का यह मत है कि मुख संधि में कुछ कार्य और प्रतिमुख में कुछ कार्य इस प्रकार कोई दो कार्य समाप्त करना चाहिए ।"

अंक :

नाटक की वस्तु अर्थात् कथाभाग को अंक कहते हैं । जो कार्य वर्षों में हुए हो या जो कार्य थोड़े समय में अनेक कार्य दिखाना हो तो उनमें जो कार्य सुन्दर मनोहर हो, उनको ही

अंक में दिखाना चाहिए । अंक विस्तार उचित नहीं होता । नायक चरित्र प्रधान कार्यो के विरूद्ध नहीं होना चाहिए । समाप्ति के अंक में सब पात्रों का निर्गमन होना चाहिए यह अंक का सामान्य लक्षण कहा जाता है ।

गर्मीक :

अंक में यह दूसरा अंक हैं इसमें सूत्रधार आकार मंगलाचरण का श्लोक प्रस्तावना युक्त पड़ता है इसे ही गर्भीक कहते हैं – " बाल रामायण में सीता स्वयंबर नामक गर्भीक हैं ।

पताका स्थानक :

नाटकीय वस्तु में प्रसंग देखकर योग्य स्थल में पताका स्थानों की योजना करनी चाहिए । जब मन में कोई कार्य करना विचारा है वह कुछ और हो उसमें किसी आगन्तुक कारण से उसी प्रकार का दूसरा कार्य उपस्थित हो जाये तब उसको पताका स्थानक कहते हैं ।

अर्थोपक्षेपक :

जो बातें अंक में प्रत्यक्ष दिखाने योग्य न हो परन्तु प्रगट करना आवश्यक हो । ऐसी बातें व और भी विस्तृत बातें अर्थोपक्षेक के द्वारा सूचित करते हैं । यह 5 प्रकार का होता है । (1)विष्कंभक (2)प्रवेशक (3) चूलिका (4) अकांवतार (5) अंकमुख

विष्कभंक : गत कथा भाग और आगे होने वाले कथा भाग की जहाँ थोड़े ही में सूचना दी जाती है उसको विष्कभंक कहते हैं । यह सूचना मध्यम पात्रों के आपस में भाषण करने से होती है।यदि सूचना नीच पात्रों द्वारा हुई तो उसे "संकीर्ण "कहते हैं ।

प्रवेशक

विष्कंभक के ही समान जो हो चुकी हो, और होने वाली सूचना आपस में नीच पत्रों के द्वारा की जाय तब वहाँ प्रवेशक होता है ।

चूलिका

नेपथ्य ही में सूचनीय अर्थ के प्रकाश करने को कहते हैं ।

अंकावतार

एक अंक के अन्त में अगले अंक में होने वाले कथा भाग की सूचना पात्रों द्वारा की जाती है और उसी प्रकार से अगला अंक प्रारम्भ होता है । उसी को अंकावतार कहते हैं । यथा – शाकुन्तला नाटक में पाचवें अंक के अन्त में पात्रों के संकेत अनुसार छठें अंक का प्रारम्भ हुआ है ।

अंकमुख

अंक में आने वाली वस्तुओं में से केवल बीजार्थ की जिसमें सूचना हो उसने अंकमुख कहते हैं ।[1]

"नाटक रचना की परिपार्टी "

नाटक का प्रारम्भ करने के समय सबसे पहले पूर्वरंग, फिर सभा पूजा उसके अनन्तर कवि और नाटककार का नाम निर्देश और सबसे पीछे आमुख इस प्रकार की योजना

---

1. नाटक निबन्ध, पृ0 250
दशरथ ओझा

करनी चाहिए , पूर्वरंग – रंग में उत्पन्न होने वाले विघ्नों के निवारणार्थ सूत्रधार आदि का जो उपाय करते हैं उसको पूर्वरंग कहते हैं । पूर्वरंग के अनेक अंग हैं ।

सभापूजा

पूर्वरंग के बाद सामाजिकों का ध्यान काव्यालोकन में प्रवृत्त करके कवि और नाटक के नाम सूत्रधार उल्लेख करता है और फिर भारतीय वृत्ति के आश्रय से सभापूजा कहते हैं ।

नॉदी

देव ब्राहमण अथवा राजा इनकी आर्शीवाद से युक्त स्तुति को नॉदी कहते हैं । प्रत्येक नाटक की आदि में मंगलाचरण के श्लोक होते हैं वे सब नादी है । नॉदी के बाद सूत्रधार आता है ।

प्रकरण

प्रकरण इतिहास पुराण आदि में से नहीं होता वरन् कवि कल्पित और लौकिक होता है और श्रृंगार रस से भरा हुआ होता है ।

भाण

नाना अवस्थाओं के जो धूर्तादि के चरित्र हैं उनको भाण कहते हैं । इसका एक ही अंक होता है । इसमें सहानुभूति या आप बीती बात रंगभूमि में आकर ऊपर देख देखकर अपने आप ही करता है और आप ही आप उत्तर प्रत्युत्तर करता है । मुख और निर्वहण सन्धि, भारती और कौशिकी वृत्तियों,वीर अथवा श्रृंगार रस यह सब होने चाहिए । बुरे कार्यों से बचने के उपदेश होने चाहिए ।

व्यायोग :

स्त्री पात्र थोड़े हों और इतर पात्र अधिक हों ।[1]

---

1. नाट्य प्रबन्ध" पृ017
बलदेव प्रसाद मिश्र

नाटकों में द्वन्द्व

"द्वन्द्व" अंग्रेंजी शब्द " कान्फ्लिक्ट" का हिन्दी रूपान्तर है । इसका सामान्य अर्थ है संघर्ष अथवा टकराव । "द्वन्द्व" शब्द अत्यन्त व्यापक है । दर्शन के अन्तर्गत उल्लिखित द्वैतवाद, सांख्यमत, शैव–दर्शन आदि में भी द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हुई है । पश्चिमी चिन्तकों में मार्क्स, हीगल, कांट आदि विचारकों ने भौतिक सन्दर्भ में द्वन्द्व का उल्लेख किया है । मार्क्स के चिन्तन की अभिव्यक्ति द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के रूप में हुई है ।

द्वन्द्व सामान्यतया दो विरोधी विचारों के मध्य संघटित होता है, किन्तु "हीगल" के अनुसार सद और सद अथवा असद् और असद् के माध्यम से भी उजागर होता है । इस प्रकार का द्वन्द्व स्पर्धात्मक वैचारिकता के द्वारा सम्भव है ।

महान दार्शनिक प्लेटों ने द्वन्द्ववाद का एक विलक्षण अर्थ किया है । प्लेटों दार्शनिक दृष्टि से प्रत्ययवादी या समन्वयवादी था । समस्त प्राकृतिक और कृत्रिम वस्तुओं में अन्तः वर्तमान सामान्यों की उसने स्थापना की है । सामान्य का जिसे अंग्रेजी में "कॉन्सेप्ट " कहते हैं और जिसे यूनानी भाषा में " आयडौस " कहते हैं , शास्त्रीय विवेचन ही प्लेटो के मत में डायलेक्टिक है । सामान्यों की अन्तःसम्बद्धता का विवेचन ही परम ज्ञान है ओर यही डायलेक्टिक है ।

मनुष्य अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण अन्य प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ प्राणी है । इन्हीं विशेषताओं के बल पर मनुष्य आदिकाल से प्राप्य को पाने तथा अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए परिस्थितियों से संघर्ष कर रहा है । प्रकृति ने मनुष्य को संवेदनशक्ति,

इच्छाशक्ति, विचारशक्ति , कल्पनाशक्ति ,कर्मशक्ति और रचनाशक्ति की मूल्यवान देन दी है, परन्तु मनुष्य का जीवन बड़ा टेढ़ा,उलझा हुआ, आपत्तियों से घिरा हुआ, विषम परिस्थितियों से भरा हुआ है । अनेक मनोविज्ञानवेत्ताओं ने इस विषय पर सप्रमाण प्रकाश डाला है कि मनुष्य को जीने के लिए परिस्थिति से किस प्रकार का व्यवहार करना पड़ता है । इस व्यवहार में संघर्ष का महत्वपूर्ण स्थान है । इस वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर ही मनोविज्ञान वेत्ता "जे0पी0गिलफोर्ड" ने कहा है – " संघर्ष से कोई मुक्ति नहीं है ।"

उद्देश्ययुक्त क्रिया मनुष्य को संघर्ष में प्रवृत्त करती है । भूखा मनुष्य अनुभव करता है कि यदि उसे जीवित रहना है तो भूख को मिटाना अत्यावश्यक है । वह यह भी अनुभव करता है कि भूख मिटाने के लिए कुछ खाने की आवश्यकता है । इस आवश्यकता से भूखे मनुष्य में कुछ पाने की इच्छा उत्पन्न होती है । इस इच्छा को लेकर मनुष्य सोचने विचारने तथा कल्पवना करने लगता है । इसके पश्चात वह एक निर्णय कर लेता हे और प्राप्य को पाने के लिए कार्य आरम्भ कर देता है।

यदि इस कार्य में प्रकृति अथवा जीव या जीव – समूह के द्वारा बाधा के रूप में प्रतिकूल परिस्थिति का निर्माण किया गया, तो असन्तोष के कारण भूखा मनुष्य प्राप्य को पाने के हेतु प्रतिबन्ध रूपी परिस्थिति से संघर्ष करता है ।[1]

नाटक के सन्दर्भ में विचार करते हुए द्वन्द्व की स्थिति को डा0 रामकुमार वर्मा ने नियमतः स्वीकृत दी है, उनके मतानुसार "नाटक का प्राण उसके संघर्ष में पोषित होता है । अतः नाटककार ऐसी स्थितियों की खोज में रहता है जिसमें उसे विरोध की तेजस्वी

---

1. रस मीमांसा पृ0 114 (सम्वत् 2023)

शक्तियाँ मिलती है ।"

संस्कृत नाटकों में वस्तु एवं पात्र विशेष रूढ़ियों में अथवा नियमों से आबद्ध थे इस कारण उनमें संघर्ष के लिए विशेष स्थान नहीं था । संघर्ष की स्थिति नाटक के एक विशेष स्थल तक ही रहती थी । संस्कृत आचार्यो ने नाट्य विवेचन के अन्तर्गत संघर्ष पर प्रथम रूप में विचार नहीं किया है, किन्तु नाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव स्वरूप आधुनिक हिन्दी नाटककार इसे कथावस्तु का अनिवार्य अंग मानते हैं ।

संघर्ष के विषय में एक सामान्य शंका यह हो सकती है कि नाटक में आद्यन्त संघर्ष का निर्वाह अपेक्षित है अथवा किसी निश्चित सीमा तक उसकी स्थिति संगति है । इस विषय में डॉ0 रामकुमार वर्मा की धारणा है कि आधुनिक नाटक में संघर्ष की सार्वत्रिक स्थिति काम्य है तथा संघर्ष की चरम परिणति चरम सीमा में होनी चाहिए । भारतीय नाटकों में संघर्ष की स्थिति विश्लेषण करते हुए उन्होंने प्रतिपादित किया है कि उनमें संघर्ष की स्थिति एक निश्चित सीमा तक रहती थी, इसके उपरान्त घटनाएं सिमटकर सुखद अन्त में परिणति पाती थीं । इसलिए इसमें चरम सीमा के लिए अवकाश नहीं था । इसके विपरीत आधुनिक नाटक केवल सुखान्त नहीं होते । फलतः उनमें संघर्ष की स्थिति सहज सम्भाव्य है –

द्वन्द्व सामान्यतया दो रूपों में उपलब्ध होता है –

1. अन्तर्द्वन्द्व के रूप में ।

2. बहिर्द्वन्द्व के रूप में ।

मनुष्य के हृदय में उठने वाले विचारों के टकराव को अन्तर्द्वन्द्व कहते हैं । अन्तःकरण के भीतर जब कई भानवाएं या विचार समन्वय का रूप ग्रहण नहीं कर पाते तो मानसिक स्थिति निश्चयात्मक नहीं होती । अनिश्चय की स्थिति में विचार तथा भावनाओं में संघर्ष नवीन नहीं, पारस्परिक एवं प्राकृतिक है । संकल्प –विकल्प की इस स्थिति पर विवेक तथा संयम से ही विजय प्राप्त की जा सकती है । नाटक में यदि इस संघर्ष या द्वन्द्व का चित्रण प्राकृतिक रूप में किया गया , तब तो ठीक ; अन्यथा नाटक निष्कृष्ट कोटि में रख लिया जाता है । उत्तम कोटि के नाटककार निरन्तर सत और असत्, धर्म और अधर्म, हित और अहित, भौतिकता और आध्यात्मिकता ,पुण्य और पाप, अनुरक्ति और विरक्ति , भोग और त्याग, कर्तव्य और अकर्तव्य का संघर्ष अपने नाटक में उपस्थित करके आदर्श का प्रतिपादन करते हैं ।[1]

इन विचारों तथा भावनाओं का द्वन्द्व किसी भी नाटक में पात्रों के अन्तःकरण के भीतर किया जाता है । इस प्रकार के वर्णन में पात्रों के चरित्र में विविधता के दर्शन होते हैं । उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट कोटि के चरित्र का आधार यही अन्तर्द्वन्द्व है । विभिन्न विचारों तथा प्रवृत्तियों वाले मनुष्यों में मतैक्य न होने के कारण द्वन्द्व बढ़ता है । निःसंदेह यह द्वन्द्व मनुष्य के जीवन के साथ अनादि काल से सम्बद्ध है । समस्याओं के समाधान तथा उलझनों के निराकरण के लिए नाटककार अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि करता है यह सामाजिक — मर्म को छूता हुआ उसे भावी निर्माण के लिए सचेत करता है ।

---

1. नाटक और प्रस्तुतीकरण स्वरूप और प्रक्रिया – विश्वभावन देवलिया, पृ0 87

अन्तर्द्वन्द्व एक मानसिक स्थिति से दूसरी स्थिति के विकास का द्योतक हो सकता है। आत्मा ओर परिस्थिति के द्वन्द्व से आत्मा और परमात्मा के द्वन्द्व को महत्वपूर्ण माना गया है ।

नाट्य कला की दृष्टि से अन्तर्द्वन्द्व का महत्व कहीं अधिक है । यही आन्तरिक संघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व दुखान्त नाटकों में तो और भी स्पष्ट है , कलात्मक और मोहक होकर हमारे समक्ष उपस्थित होता है । "इब्सन " ने तो मानव चरित्र की उत्कृष्ट कल्पना ही नाटक की सबसे उत्तम कृति मानी है और मानव चरित्र की कल्पना बिना आन्तरिक संघर्ष के हो भी नहीं सकती । इसके द्वारा "भावना " का गुप्त संसार हमारे सामने मूर्त हो जाता है । जैसे-जैसे कथावस्तु तीव्र गति से चरमसीमा की ओर बढ़ती जाती है, वैसे ही पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व दिन के प्रकाश की भाँति प्रत्यक्ष होता जाता है । कथावस्तु और अन्तर्द्वन्द्व के चरमसीमा पर पहुँच जाने के पश्चात शीघ्र ही नाटक का अन्त हो जाता है। अन्तर्द्वन्द्व की समाप्ति के पश्चात लेखक जैसे एक शब्द भी जोड़ना अनावश्यक समझता है । पाठक या दर्शक भी अन्तर्द्वन्द्व के समाप्त होते ही अनुभव करने लगता है कि नाटक की समस्त घटनाएं एक बिजली की भाँति उसके हृदयकाश पर तड़प कर विलीन हो गयी ।

बहिर्द्वन्द्व –बाह्य संघर्ष दो अथवा अनेक पक्षों में छिड़ता है । इनमें से कोई दमनशील पक्ष बुरे अथवा अच्छे हेतु को मन में लेकर अन्य पक्ष का दमन करता है । रक्षणशील पक्ष अपनी बुराई तथा अच्छाई की रक्षा के हेतु संघर्ष करता है । कभी – कभी रक्षणशील पक्ष दमनशील तथा आक्रामक बन जाता है नाटक के अन्त तक वह उसी रूपी में रहता है । कभी–कभी दो पक्षों में किसी की हार या जीत नहीं होती है, जैसे अश्क के "अलग –अलग रास्ते " में और

न रूढ़िवादी पक्ष की हार या जीत हुई है, न क्रान्तिकारी पक्ष की ।इसी प्रकार मोहन राकेश के " आधे –अधूरे" में भी हार या जीत नहीं होती है ।

परस्पर विरूद्ध इच्छाओं, भावनाओं तथा विचारधाराओं के कारण व्यक्ति –व्यक्ति का संघर्ष छिड़ता हे । उपेन्द्र नाथ अश्क के अलग अलग रास्ते में रावी और पूरन का क्रान्तिकारी संघर्ष उन व्यक्तियों से है जो समाज द्वारा निर्मित्त विधा तक रूढ़ियों को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

नाटकों में द्वन्द्व अधिकांशतः नायक और प्रतिनायक में होता है । प्रतिनायक की मानसिक बनावट कुछ अद्भुत हुआ करती है । प्रतिनायक किसी परिस्थिति जन्य अभाव की आपूर्ति के लिए नायक से अथवा अपने प्रतिद्वन्द्वी से टकराता है । यह विविध प्रकार के अभावों को लेकर होती है । जैसे मान लीजिये कि किसी व्यक्ति के मन किसी व्यक्ति विशेष के प्रति रूझान और संयोग वश जिसके प्रति वह आकर्षित है, वह किसी अन्य पात्र को प्राप्त हो जाती है तो ऐसी परिस्थिति में उस प्रेमी पात्र का उत्तेजित हो उठना स्वाभाविक है । कोई भी उत्तेजना भावावेश ऐसी परिस्थिति में उस प्रेमी पात्र का उत्तेजित हो उठना स्वाभाविक है । कोई भी उत्तेजना के क्षणों में अपनी अस्त –व्यस्त मानसिकता में अपने प्रेमास्पद को उपलब्ध करने का निर्णय ले लेता है और उस निर्णय के फलस्वरूप वह सक्रिय हो उठता है । उसकी सक्रियता प्रतिद्वन्द्विता प्रेम अथवा सेक्स के सन्दर्भ में ही नहीं, राज्य,धन, रूप,ईर्ष्या,प्रतिस्पर्धा, महत्वाकांक्षा में भी सम्भव है ।[1]

---

1. नाटक बहुरूपी – लक्ष्मीनारायण लाल ,पृ0 33

रामकुमार वर्मा के " नाना फड़नवीस" नाटक में बाहय संघर्ष को स्थान मिला । चतुर राजनीतिज्ञ नाना हत्यारे राघोबा को कैद में रखता है । नारायण राव के पुत्र सवाई माधवराव को सिहांसन पर बिठाता है । इस प्रकार संघर्ष से पूर्व नाना पानीपत की हार को जीत में बदल देने का प्रयास करता है। माधव राव नाना-की विलक्षण बुद्धि की सहायता से कई विजयें सम्पादित करता है।

नाटकीय सन्दर्भ की दृष्टि से प्रतिनायकों का होना अनिवार्य है । यदि जीवन में संघर्ष के बिना ही सफलता मिल जाये तो उसमें नायक की शक्ति का क्या पता चलेगा ? यदि नायक के गुणों के विकास की स्वाभाविकता के लिए प्रतिनायकों की कल्पना की जाती है, तो पाश्चात्य नाटकों में नायक और प्रतिनायक के माध्यम से संघर्ष की सृष्टि करके आरम्भ से अन्त तक अनिश्चित स्थिति पैदा की जाती है। इस संघर्ष में कौतूहल और विशेष रूप से तनाव की स्थिति का होना अत्यावश्यक है । संघर्ष नाटक की उत्पत्ति करता है, किन्तु कौतूहल और विशेष रूप से तनाव के कारण ही नाटकीयता होती है ।[1]

बिना विरोध के संघर्ष असम्भव है । इसलिए नाटक में धीरललित , धीरशान्त एवम् धीरोदात्त चरित्रों के साथ धीरोदात्त, खल और आसुरी पात्रों का संयोग किया जाता है बिना विरोध के जैसे जीव गतिशील नहीं होता है, ऐसे ही नाटक भी बिना संघर्ष के आगे नहीं बढ़ता ।

---

1. नाटकों में द्वन्द्व (निबन्ध) पृ0 181
   डॉ0 पुष्पलता वर्मा

संघर्ष से आशय दो समान शक्तिशाली पक्षों की टकराहट ,विरोध या प्रतिक्रिया है । संघर्ष अथवा द्वन्द्व किन्हीं दो भावों, स्थितियों ,व्यक्तियों ,समूहों. शक्तियों, मान्यताओं एवं इच्छाओं की है । संघर्ष की अनेक स्थितियाँ हो सकती हैं । एक स्थिति में दो विरोधी तत्व नित्य अनित्य ,दैहिक– दैविक ,लौकिक– पारलौकिक आदि वस्तुतः प्रत्येक क्षण ,प्रत्येक परिस्थिति, जो जीवन की अपनी है , के विरोध का प्रदर्शन नाटकीय संघर्ष का उद्भावक है । इस कारण उसमें उसी तरह उदात्त तथा नीच का समन्वय रहता है जिस तरह जीवन में महान व्यक्ति के अन्दर भी एक पशु होता है जो उसी महानता की हँसी उड़ाता है । विरोध की भावना त्रासदी के मूल में हैं । एक ओर कल्पना और हास्य है तो दूसरी ओर करूणा और भय है ।

चरित्र की सृष्टि करते समय नाटकाकर की मूल समस्या चरित्र के मूल द्वन्द्व या संघर्ष की तलाश होती है। द्वन्द्व के द्वारा प्रतिनायक के चरित्र का विकास शारीरिक, मानसिक और सामाजिक धरातल पर होता है, विरोध अच्छे और बुरे आदमी के बीच नहीं होता है , ऐसे दो व्यक्तियों के बीच होता है जो अपने को ठीक समझते है । सच्चा नाटककार पक्ष धरता नहीं करता , वह निष्पक्ष भाव से पात्रों को अपने आपको सच्चाई से अभिव्यक्त होने देता है । साधारणतः जहाँ एक व्यक्ति अच्छा ही अच्छा ओर दूसरा बुरा ही बुरा दिखाया जाय, वहाँ संघर्ष प्रतिद्वन्द्विता की भावना को उजागर करता है ।

भाव एवं रस नाटक के उत्कर्ष पर आधृत है, फलतः संघर्ष की नाटकगत उपयोगिता के सम्बन्ध में शंका की आवश्यकता नहीं है । संघर्ष की उद्भावना के लिए विरोधी स्थितियों पर बल

दिया गया है । "नाटक का प्राण संघर्ष में पोषित होता है ।" संघर्ष जितना अधिक नाटककार की विवेचन – शक्ति में होगा, उतना ही जिज्ञासामय उसका नाटक होगा । चरित्र– विकास के लिए अन्तर्द्वन्द्व को आवश्यक माना जा सकता है । अन्तर्द्वन्द्व के द्वारा पात्रों के मनोगत रहस्यों का उद्घाटन सफलतापूर्वक किया जा सकता है ।

6. नाटक के रस तथा अन्य तत्व

व्यक्ति के मूल भावों–रति, उत्साह, क्रोध, शोक आदि उद्बुद्ध कर आस्वादनीय आनंदमयी चेतना की सृष्टि करने की क्षमता जिस रचना में होती है, वही रचना सर्जनात्मक साहित्य का गौरव प्राप्त करती है । ऐसी रचना व्यक्ति के हृदय एवं बुद्धि को परितृप्त तथा उत्तेजित कर उसको सात्विक भावों का आस्वादन कराती है । साहित्य की श्रेष्ठतम विधा नाटक में रस की प्रक्रिया और अन्य तत्वों – कथावस्तु, पात्र, संवाद, भाषा, दृष्य विधान, प्रतीक – विधान, संगीत, अभिनेयताआदि से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है । नाट्य रचना में इन तत्वों के सुसंयोजन से समर्थ रस सिद्दि सम्भव होती है । नाटक में रस का अन्य नाट्य तत्वों से वही अन्तः सम्बन्ध है जो शरीर में प्राणतत्व का ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों से है ।

कथावस्तु या घटना – विन्यास विचारतत्व अर्थात् रस से संभव होता है । वैचारिक मौलिकता, घटनात्मक सत्यता, शैलीगत निर्माण कौशल पारस्परिक संबद्वता, वर्णनात्मक रोचकता, साधारणीकरण क्षमता आदि कथानक के आवश्यक गुण हैं । कथानक द्वारा मानव जीवन तथा उसकी समस्याओं की व्याख्या की जाती है, साथ ही मानवीय संवेदनाओं – अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है । भारतीय साहित्य शास्त्र में नाट्य कथा का सैद्वान्तिक विवेचन बहुत विस्तार से किया गया है ।

वस्तु या "इदम्" की आत्मा के साथ अद्वय स्थिति आत्म विस्तार का मार्ग प्रशस्त करती है । यह आत्म विस्तार रसानुभूति के लिए नितांत अपेक्षित है।[1] जीवन के सुख–दुःख,

---

1. आज के हिन्दी रंग नाटक, 30 अल्काजी, दु0ल0 देशपाण्डे, सुरेश अवस्थी (सं0) पृ0 77

हर्ष, क्रोध, राग–द्वेष के वैविध्यपूर्ण आलेख द्वारा वासना या भाव को अभेद आनंद के रूप में ग्रहण करने की प्रक्रिया ही रसानुभूति है । नाटक का विचार या भावतत्व कथा–परिकल्पना और कथा–सन्तुलन द्वारा ही व्यंजित हो सकता है । नाटककार नाटक के घटना – विन्यास द्वारा जीवन के किसी मूल्य को, सामाजिक–दार्शनिक–नैतिक उपलब्धि को अभिव्यक्त करता है । यह अभिव्यक्ति ही सामाजिक के हृदय में संस्कारावस्थित स्थायी भावों से साधारण के साथ व्यक्त होकर रस रूप में परिणत होती है ।

पात्रों की चरित्र–सृष्टि रससिद्धि में सहायक होती है। चरित्रों के संतुलन विन्यास तथा विकास में अन्तर्विरोध की अनवस्थिति से रस की सृजन प्रक्रिया अखण्ड एवं अविच्छिन्न बनी रहती है । कथा–अनुकूलता, व्यावहारिक स्वाथाविकता तथा सप्राणता चरित्र चित्रण के गुण है। महान् रचना के चरित्रों का सम्बन्ध राष्ट्र की संस्कृति से होता है । राष्ट्रीय संस्कृति के कोड से निःसृत चरित्रों के गुणों, भावों एवं व्यापारों के साथ सहज तादात्म्य स्थापित हो जाता है । चरित्र–चित्रण द्वारा वासना रूप में स्थिति मनोवृत्तियाँ आस्वादनीय बना दी जाती है । श्रेष्ठ नाटक में अनतर्द्वन्द्व और बहिर्द्वन्द्व में डूबे पात्रों का व्यक्ति–वैचित्र भी रस का साधन बनता है। रसवाद का धरातल विविध चरित्रों के बीच एक समीकरण स्थापित करता है और विविध भावनाओं में एक अभिन्नता की सृष्टि करता है।

नाटक के रचना–तत्वों में दृश्यात्मक परिकल्पना का विशिष्ट महत्व है। हृदयस्पर्शी भावना को प्रत्यक्ष रूप देने में नाटकीय वातावरण से पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है । व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है, आसंग के कारण उसके प्रति एक मोह सा उसके मन में हो जाता है। यही आसंग मोह समय–समय पर जागृत होता रहता है जिसका मानसिक साक्षात्कार रसमय

प्रतीत होता है। जिस वातावरण में, जिन प्राकृतिक उपकरणों के सम्पर्क में हम बाल्य काल से रहते आये हैं, उनके प्रति हमारा एक स्थायी लगाव सा हो जाता है जो उसी वातावरण पाकर उत्फुल हो उठता है और रस का परिपाक करता है।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वातावरण की विलक्षण शक्ति की ओर ध्यान आकर्षित किया है। रचनाकार शब्द चित्र या दृश्य चित्रों के माध्यम से किसी वस्तु या व्यापार को पाठक या दर्शक के सामने इस ढंग से उपस्थित कर देता है कि श्रोता या दर्शक में वैसा ही भाव जागृत जो जाता है । प्राकृतिक दृश्यावलियों में मनोमुग्धकारी क्षमता होती है। प्रकृति के साथ रूप–विधान तथा उसके विभीषक दृश्यों में मानव अपने राग तथा विस्मय मूलक भाववृत्तियों के लिए अनुकूल उपादानों का संचय करता है।

आचार्य शुक्ल जी ने प्रकृति के विविध रूपों को आदिम जीवन की साहचर्य जनित भावना से जोड़कर उनकी रसमयता प्रतिपादित की है – "पर्वत, नदी, निर्झर आदि प्राकृतिक दृश्य हमारे राग या रतिभाव के स्वतन्त्र आलम्बन है। उनमें सहृदयों के लिए सहज आकर्षण वर्तमान है। इन दृश्यों के अन्तर्गत जो वस्तुएं और व्यापार होंगें, उनमें जीवन के मूल स्वरूप और मूल परिस्थिति का आभास पाकर हमारी वृत्तियाँ तल्लीन होती हैं।"[2]

रमणीय स्वर और हृदयरंजक ध्वनि का मिश्रित रूप ही संगीत है। संगीत के अन्तर्गत – नृत्य, वाद्य और गीत का समन्वित सौन्दर्य निहित होता है। नृत्य उस आकर्षण गति को

---

1. नाट्य प्रशिक्षण स्वरूप और दिशायें – सं0 विश्व भावन देवलिया, पृ0 41
2. रस मीमांसा (सम्वत् 2023) पृ0 114

कहते है जो ताल तथा भाव के आश्रित होती है तथा जो आस्वादात्मक महत्व रखती है। वाद्ययन्त्रों की विभिन्न प्रकार की सुमधुर ध्वनियॉं नृत्य को गति तथा गीत को राग प्रदान करती है। नृत्य एवं वाद्ययन्त्रों के तालमेल पर मानव–कंठ से निकली लयात्मक मधुर स्वर लहरी ही गीति है।

आधुनिक युग में प्रतीकों बिम्वों से भी रस – निष्पति में सहायता ली गयी है। व्यापक अर्थ में प्रतीक के अन्तर्गत समस्त शब्द–जगत् आ जाता है। साहित्य में प्रतीक विधान का महत्व अनुभूति को व्यवस्थित करने और भाव प्रसार में सहयोग देने के कारण है।

अतः समकालीन हिन्दी नाट्कों में वर्तमान जीवन-बोध को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यंजित करने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया जा रहा है। 'आज की रूप जीवन दृष्टि, संत्रास, विघटन और मूल्यहीनता को प्रतीक समर्थ अभिव्यक्ति दे रहे हैं। प्रतीक की भाषा गहरी अभिव्यंजना और प्रभावशाली अभिव्यक्ति की भाषा होती है। नाटककार डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल के शब्दों में, "प्रतीक तो स्वयं नाटक की प्रकृत भाषा और सहज बोल है – ऐसी भाषा जो नित्यप्रति के जीवन में बोलते हैं। चेत–अचेतन रूप से जिसे हम सम्प्रेषणीयता और बौध तत्व का माध्यम बनाते हैं। इस तरह ये प्रतीक हमारी अभिव्यक्ति के जीवन्त आधार हैं – अतः हमारे व्यक्तित्व के अंग हैं, जैसे स्वप्न अंग हैं।"[1] साहित्यकार कभी–कभी सीधे वर्तमान परिवेश को ग्रहण कर प्रतीकों और मिथकों के सहारे आधुनिक सन्दर्भों का रूपायन करता है । यह शैली उसे अनावश्यक विस्तार के व्यर्थ श्रम से भी बचाती है।

1.

अभिनय नाट्य की तादात्म्य प्रतीति है और तादात्म्य प्रतीति वह महासुख है जो आनन्द में निमग्न कर देता है । नाटक "प्रति साक्षात्कार कल्प" है, इसलिए यह काव्य, व्याख्यान आदि से श्रेष्ठ है । नाटक के पात्र योग्य अभिनय द्वारा साधारणीकृत विभाव आदि की सजातीय सम्वेदनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। यह सम्वेदनात्मक अभिव्यक्ति सहृदय के हृदय में प्रतिकलित होती है।

भारतीय नाट्य शास्त्र में अभिनय के चार प्रकार बनाये गये हैं – आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक । नाटक की भाववस्तु और उसकी आत्मा मुख्यतः वाचिक अभिनय अर्थात् संवादों द्वारा प्रकट होती है । संवाद नाटक की कथा, घटना–विन्यास और विचार तत्व को व्यक्त करते हैं। इनका संतुलित होना आवश्यक होता है।

अभिनेयता नाटक का मुख्य एवं अनिवार्य धर्म होता है । प्रेक्षक के रसास्वादन में ही अभिनय की सफलता निहित है। रस–सृष्टि सम्प्रेषण–क्षमता की चरम सार्थकता है । नाटक में यद्यपि पठन से भी रंग – कल्पना द्वारा रसान्विति संभव है, तथापि उसका अभिनय अपनी अतिरिक्त कलात्मकता से सम्पृक्त होकर रस – संचार करने में अपेक्षाकृत अधिक समर्थ हो जाता है । नाटक की श्रेष्ठता अभिनय द्वारा उसके रस सिक्त करने की क्षमता पर बहुत कुछ अवलंबित है ।

रसः –निष्पत्ति में अर्थात् प्राण को आकार देने में भाषा तत्व का अतिमहत्व पूर्ण स्थान होता है । भाषा किसी जाति या मानव समुदाय की आत्माभिव्यक्ति और पारस्परिक अनुभवों के सम्प्रेषण का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। इसमें जन–समुदाय की असंख्य पीढ़ियों की अनुभव–

सम्पत्ति और उसकी समूची परम्परा संचित रहती है। भाषा नाट्य-रचना को सामान्यी करण के स्तर तक पहुँचाती है। भावों-संवेदनाओं का साधारणीकरण भाषा-तत्व के सहायता से ही सम्भव होता है। भाषा का शक्ति है जो मानव हृत्तंत्री को झंकृत कर भावना को उत्प्रेरित करती है। भाषा में सरलता और सहजता आवश्यक है। भाषा का भावमय प्रयोग रचना को प्रभावशाली एवं हृदय-संवेद्य बनाता है।[1]

इस तरह नाटक में विभिन्न तत्वों के समानुपातिक सहकार से तीव्र और सक्षम रसानुभूति सम्भव होती है। इस रस सिद्धि को आधार मानकर आचार्यों ने नाट्य रस को काव्य रस से श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है। नाट्य में न केवल कवि की वाणी की लोकोत्तर संवेदना का साक्षात्कार होता है, अपितु अभिनेता का अभिनय भी सम्वेदना की वृद्धि कर प्रत्यक्ष साक्षात्कार का आनन्द प्रदान करता है। संगीत, नृत्य आदि कलाएँ नाट्य में मनोहरता की सृष्टि कर प्रेक्षक की तन्मयता को प्रभावित करती है। मंच सज्जा, प्राकृतिक दृश्य संयोजन, ध्वनि एवं प्रकाश व्यवस्था आदि उपकरण भी नाट्य रस की सम्प्रेषणीयता में महत्वपूर्ण योग देते हैं। इस तरह समस्त नाट्य तत्वों की यह एकाकारता लोकोत्तर और अनिर्वचनीय आनन्द स्वरूप रस की सृष्टि करती है।

---

1. नाटक में रस तथा अन्य तत्व (निबन्ध) विभुराम मिश्र (नाटय समीक्षा विशेषांक, पृ0 192)

"नाटक की भाषा और बोलियाँ "

"नाटक की भाषा" रचनात्मक स्तर पर भाषा – विज्ञान और व्याकरण के पारम्परिक नियमों /सिद्धान्तों या सूत्रों से हल नहीं किया जा सकता । नाटक की भाषा केवल शब्दाश्रित नहीं होती । वह एक संश्लिष्ट जैविक इकाई की तरह होती है । इसमें सार्थक (शब्द (और निरर्थक ध्वनियों के अतिरिक्त , मौन, क्रिया–कलाप, मूकाभिनय, मुद्रायें/भंगिमाएं ,दृश्यबन्ध (स्थापत्य ,चित्रकला (मंच–उपकरण, संगीत, नृत्य , छायालोक, ,वस्त्राभूषण और रूपसज्जा और तमाम अवरुन्न मिलकर रचनाकार /चरित्र के जटिल जीवन अनुभव और अस्तित्व के सूक्ष्म गहन स्तरों को अधिकाधिक प्रामाणिक ,विश्वासनीय एवं जीवन्त रूप में प्रेक्षकों तक सम्प्रेषित करने का प्रयत्न करते हैं । केवल नाट्यालेख की भाषिक संरचना की दृष्टि से ही देखें, तब भी नाटक की भाषा बोलने (अभिनेता(और समझने (दर्शक (में, सहज–सुबोध होने के साथ साथ बिम्ब हरकत(कार्य (से युक्त होती है, और चरित्र के व्यक्तिगत पारिवारिक ,सामाजिक तथा जातिगत जैसी विभिन्न विशेषताओं को तुरन्त व्यक्त करने में समर्थ होती है ।

नाटक में चरित्रों की भिन्नता ही नाटककार को उनके लिए संवादों के अलग – अलग लय– विधान और भाषा –रूप खोजने को विवश करती है । नाटक की भाषा चूँकि अनिवार्यतः चरित्र से जुड़ी होती है और प्रत्येक चरित्र का समबन्ध उसकी अपनी

---

1. नाट्य भाषा – गोविन्द चातक, पृ0 97

जमीन (भूगोल, इतिहास, संस्कृति) से होता है, इसलिए नाटककार को, व्यापक जन–समुदाय द्वारा बोली समझी जाने वाली मानक भाषा के साथ अंचल –विशेष से जुड़े किसी अपेक्षाकृत छोटे जन समुदाय की " बोली" या उसके कुछ शब्दों और मुहावरों का उपयोग भी करना पड़ता है । भारतवर्ष बहुभाषी विविधापूर्ण देश में जहाँ " ढाई कोस पर पानी और तीन कोस में बोली " बदल जाती है , बोलियों के बिल्कुल प्रामाणिक रूप को जानना , लिखना ,बोलना और समझना आसान काम नहीं है । यथा – हिन्दी की एक उपभाषा बिहारी की भोजपुरी, मगही और मैथिली – जैसे बोलियों के बारीक फर्क को रेखांकित करना, दूसरे हिन्दीभाषी प्रदेशवासियों के लिए काफी कठिन है । सम्भवत:यही कारण है कि बोलियों की चर्चा करते समय सामान्यतः ब्रज,अवधी, भोजपुरी, राजस्थानीय ,बुन्देलखंडी और हरियाणवी जैसी प्रदेश विशिष्ट में अपेक्षाकृत प्रचलित बोली के नाम से ही काम चला लिया जाता है ।[1]

आधुनिक हिन्दी नाटक की रंग–भाषा की तलाश, प्रगति और समृद्धि में, हमारी धरती से जुड़ी सहज प्रखर, जीवन्त, बिम्बात्मक, हरकतभरी , ताजी, स्वतःस्फूर्त और लय– विधान की दृष्टि से विविधतापूर्ण बोलियों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती थी, परन्तु अधिकांश नाटककारों ने कई व्यक्तिगत और ऐतिहासिक कारणों से इस चुनौती को स्वीकार करने के बजाय, एक बनी – बनायी या उपलब्ध " साहित्यिक भाषा " के उपयोग का आसान रास्ता अपनाया है ।

"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र " रंगधर्मी रचनाकार थे । वह रंगमंच के अभिनेता की अपेक्षाओं को अच्छी तरह जानते थे ; इसलिए उनके संवादों में बोलचाल की लय और प्रवाहमयता है, परन्तु राजनैतिक कारणों से वह (भाषा की दृष्टि से (उर्दू – अंग्रेजी का समय था, और साहित्यिक परम्परा की दृष्टि से ब्रजभाषा का । खड़ी बोली बनने की प्रक्रिया में थी, और लेखकों काएक बड़ा वर्ग संस्कृत की तत्सम् शब्दावली को उसको मूलाधार बनाने के पक्ष में था । सम्भवतः यही कारण है कि भारतेन्दु के नाटकों की भाषा का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है । यह सच है कि भारतेन्दु पात्रानुकूल भाषा एवं संवाद रचना के प्रबल समर्थक थे, और उन्होंने उर्दू ,बंगला और मराठी भाषी पात्रों से पूरी तरह उन्हीं की भाषा बुलवायी थी, परन्तु जहाँ तक हिन्दी भाषा पात्रों का प्रश्न है उनके चरित्र प्रायः "बोली" ओर भाषा के बीच की ऐसी मिश्र भाषा का प्रयोग करते हैं जो बोलने में मुख– सुख ओर सुनने समझने में सहज सुबोध जैसी विशेषताओं से युक्त होने के बावजूद, चरित्रों के स्वरूप, नाट्य भाषा के गठन और संवेदना में अक्सर अन्तर्विरोध पैदा कर देती है ।

"जयशंकर प्रसाद "मूलतः अभिजात–वर्ग के छायावादी थे । "प्रसाद " जी के नाटक ऐतिहासिक थे जिनका प्रमुख स्वर राष्ट्रीय पुनरूत्थान-वादी था और दृष्टिकोंण रोमानी ।[1] इसलिए उन्होंने यदि अपने अतीतोन्मुखी नाटकों के अनुरूप – संस्कृतनिष्ठ, आलंकारिक भाषा का उपयोग किया, तो यह काफी हद तक स्वाभाविक ही था ; उनके सभी पात्र एक सी भाषा बोलते हैं । थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ, प्रायः यही स्थिति प्रसाद– परम्परा के सभी नाटक कारों में देखने को मिलती है । अजातशत्रु ,स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त ओर ध्रुवस्वामिनी से लेकर

---

1. नाटक की भाषा –नेमिचन्द्र जैन,

कोणार्क [1],शारदीया, अन्धायुग

कोणार्क [1] शारदीया, अन्धायुग,[2] आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस , कलंकी, सूर्य –मुख, सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, आठवाॅं सर्ग, कथा एक कंस की, प्रजा ही रहने दो, एक और द्रोणाचार्य, कोमल गान्धार ,देहान्तर और अन्तरंग तक शायद पारम्परिक कारणों से ही बोलियों का प्रयोग किसी नाटककार ने नहीं किया । हालाॅंकि यह बात भी उतनी ही सच है कि इनमें से कइयों में इसकी बाकायदा गुंजाइश हो सकती थी ।

नाटक की भाषा बुनियादी तौर से चरित्रों के स्वरूप, उनके पारस्परिक सम्बन्धों और देशकाल परिवेश से निर्धारित होती है । इस दृष्टि से हमारे रचनाकारों की जड़े बेशक कहीं पर रही हों, लेकिन उनकी रचनाओं के फूल शहरी मध्य–वर्ग के रूप में ही खिले हैं । इसलिए उनके चरित्र और सरोकार, उनकी समस्याएं और कुंठाएं प्रमुखतः, मध्यवर्गीय ड्राइंगरूम से जुड़ी रही हैं , और उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए स्वभावतः उसके पास शहरी/सरकारी/अखबारी बोलचाल की इकहरी भाषा ही है । बम्बइया फिल्मों की तरह, इन नाटकों में भी कभी – कभी यदि कोई "बिहारी" या " पुरबिया " नौकर आ जायें, तो वह अपनी बोली के दो चार संवादों से नाटक में एक नया रंग जरूर पैदा कर देता है ।[3]

---

1. कोणार्क –जगदीश माथुर,
2. अन्धायुग – धर्मवीर भारती,
3. नाटक की भाषा – उर्मिल कुमार थपरियाल पृ0 11

प्रामाणिक रंग भाषा की तलाश में बोलियों की घोर उपेक्षा का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है कि स्वयं ग्राम्य परिवेश से आकर और "अन्धा कुआँ " जैसा ग्रामीण सामाजिकता का घोर यथार्थ परक नाटक लिखने वाले, लक्ष्मी नारायण लाल ने भी उसे यथा सम्भव शहरी खड़ी बोली में ही लिखा है । यही नहीं एक सत्य हरिश्चन्द्र पंचपुरूष और गंगामाटी और ग्राम्य परिवेश और चरित्रों वाले नाटकों में भी कहीं – कहीं अवधी की चार –छह गीत पक्तियों के अपवाद को छोड़कर , किसी खास बोली तो क्या, ग्रामीण शब्दों तक का प्रयोग नहीं किया गया है । यही स्थिति उनके " लोक नाटक " सगुनपक्षी और हमीदुल्ला के ख्याल-भारमली की भी है । रामेश्वर प्रेम के अजातघर ,चारपाई और विशेषत: कैम्प जैसे नाटकों की शहरी भाषा, अपनी संरचनात्मक भिन्नता के बावजूद ,उनके चरित्रों के मुँह से काफी बनावटी और अजीब सी लगती है । नाटक के सन्दर्भ में यह एक दिलचस्प तथ्य है कि केवल खास जगह पर और खास तरह से प्रयोग करने के कारण ही यहाँ रचनाकार कई बार कुछ भाषाओं या उपभाषाओं को भी बोलियों की तरह इस्तेमाल कर लेता है । हिन्दी के अनेक नाटकों या रूपान्तरों में उर्दू और पंजाबी का उपयोग बोलियों की तरह ही किया गया है ।

प्रयोग की विशिष्ट दृष्टि से देखें तो हिन्दी नाटक को पहली बार समकालीन मुहावरे, तेवर और अन्दाजवाली बोलचाल की जीवन्त रचनात्मक भाषा देने वाले " मोहन राकेश " के बहुचर्चित नाटक 'आधे – अधूरे' में सिंघानिया के संवादों की संस्कृतनिष्ठ बनावटी भाषा को भी बोली का दर्जा दिया जा सकता है । यूँ तो सिंघानिया के संवादों में आये " अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क " "प्रतिनिधि मण्डल" , "औगोकि सांख्यिकी","स्वादिष्ट ", "शीतयुद्ध" ,"वस्त्र उद्योग", "अराजकता", तथा "युवा वर्ग" जैसे शब्द अपने आप में कठिन या विशिष्ट नहीं है , परन्तु

अब हम पढ़े –लिखे नहि न । पढ़वइया के संगौ– साथ नहि न । ऊ ठहरे बड़वार, हम ठहरे छोटवार । छोटन के कहना माने के परत है । कहना न मानै तो ठीक नाहीं । ऊ कहिन हम सिर झुकाय के मान लिहा । अब उनके करम उनके साथ । हमारे करम हमरे साथ ।"
(पृ0 34)

हिन्दी के मौलिक नाटक लेखन में बोलियों की स्थिति कितनी ही उपेक्षित एवं दयनीय क्यों न रही हों, इधर के हिन्दी रंगमंच पर इनका स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है । हिन्दी रंगमंच पर बोलियों के प्रयोग का प्रमुख श्रेय निर्देशकों और अनुवादकों ,रूपान्तरकारों को जाता है । इब्राहिम अल्काजी ने अगस्त 1972 ई0 में हिन्दुसतान टाइम्स में " लैंग्वेज इन हिन्दी ड्रामा " शीर्षक से एक टिप्पणी लिखी थी, जिसमें बोलियों के नाटकीय प्रयोग की महत्ता को रेखांकित किया गया था । उन्हीं दिनों राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के लिए अल्काजी ने लक्ष्मी नारायण लाल के जुलाई 1968 ई0 में प्रकाशित नाटक, सूर्यमुख का मार्च 1972 में निर्देशन करते हुए, उसमें बोलियों का उपयोग किया । इसके लिए लेखक ने कुछ दृश्यों को फिर से लिखा और भिखारियों से ब्रजभाषा , दो सैनिकों और कुछ यदुवंशियों से अवधी" तथा वेनुकरती की "सेविका" से भोजपुरी " बुलवायी ; परन्तु इन बोलियों के पर्याप्त ज्ञान या रचनात्मक उपयोग के अभ्यास के अभाव में , भाषा बेहद फूहड़, अराजक, अशुद्ध , संस्कार हीन, भ्रष्ट और बेमुहावरा हो गयी ।वरिष्ठ समीक्षक नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में , " नाटकीय भाषा की दृष्टि से सूर्यमुख कुरूचि, सन्दर्भ भ्रष्टता अजायब घर है । (यह टिप्पणी सूर्यमुख के बोलियों वाले मंचित आलेख के बारे में हैं ।(नाटक के पूर्व – प्रकाशित खड़ी बोली वाले आलेख के बारे में नहीं । नटरंग पृ0 69 (अप्रैल जून 1972 ई0 (स्पष्ट हैं कि इस प्रयोग की असफलता ने भी शायद इस क्षेत्र में काम करने के इच्छुक नाटककारों को काफी हतोत्साहित किया ।

नाटक में न सही , हिन्दी उपन्यास में इस बीच आंचलिकता और बोलियों का पर्याप्त प्रयोग हो चुका था । इसलिए जब निर्देशकों द्वारा मंचन के लिए उपन्यासों के नाट्यान्तर हुए या कराये गये, तो उनमें बोलियों का दिलचस्प इस्तेमाल हुआ । रंजीत कपूर द्वारा रूपान्तरित बेगम का तकिया,अमाल अल्लाना निर्देशित मन्नू भण्डारी का महाभोज , और देवेन्द्रराज अंकुर निर्देशित प्रतिभा अग्रवाल द्वारा रूपान्तरित प्रेमचन्द का गोदान ,भानु भारती द्वारा रूपान्तरित निर्देशित चन्द्रमा सिंह उर्फ चमकू, इत्यादि – इस तथ्य के कुछ महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं । राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा फ्रिटज बेनेविट्ज के निर्देशन में प्रस्तुत ब्रेश्ट के 'मि0 पुटिला एण्ड हिज मैन माती' के अनिल चौधरी कृत हिन्दुस्तानी रूपान्तर चोपड़ा कमाल नौकर जमाल में भी अलग-अलग भाषा – संस्कृति– मानसिकता वाले चरित्रों के लिए अलग – अलग उपभाषाओं ; बोलियों, कुछ शब्दों या अभिव्यक्तियों अथवा लहजे का बेहद असरदार प्रयोग किया गया है । उदाहरण के लिए, पाँचवें दृश्य (चोपड़ा की प्रेमिकाओं का मोर्चा) में चोपड़ा और लवीना के संवाद अंग्रेजी मिश्रित खड़ी बोली में हैं, तो जमाल के उर्दू मिश्रित खड़ी बोली में । फूलमती और चम्पा हरियाणवी बोलती हैं, तो हरजीत कौर पंजाबी । कमलेश की भाषा खड़ी बोली (हिन्दुस्तानी) है ।[1]

महत्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ, अलग– अलग भाषाओं । बोलियों के बावजूद सम्प्रेषण में कोई बाधा पैदा नहीं होती, बल्कि इनसे चरित्र और परिस्थिति को रेखांकित करने में मदद ही मिलती है ।

---

1. नटरंग , हिन्दी रंगमंच पर केन्द्रित , खण्ड – 13 , पृ0 167–168
सम्पादक –नेमिचन्द्र जैन

"लवीना की सगाई " वाले दृश्य में पण्डित जी, वकील, जज, पण्डिताइन, लबीना और जमाल के संवादों में बोलचाल की हिन्दी की जितनी और जैसी रंगते देखने को मिलती है, वे चरित्रों की आन्तरिकता से जुड़ी होने के कारण भाषा के रचनातमक नाटकीय प्रयोग का रोचक उदाहरण हैं, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण तो पूँजीपति- उद्योगपति चोपड़ा के शराब पीने के बाद के वे संवाद हैं जब वह तथाकथित " सच्चा इंसान " (कम्युनिष्ट) बनकर बोलता रहे । इन संवादों का मूलाधार तो पंजाबी है, परन्तु उसमें अंग्रेजी और खड़ी बोली का ऐसा " सचेत अराजकतापूर्ण " प्रयोग किया गया है । जो चोपड़ा की तात्कालिक मनःस्थिति से पूरी तरह मेल खाता है ।

चोपड़ा (गुस्से में उठते हुए) हुण मैं ज्यादा देर चुप नई कर सकदा । ऐसे शक्स नू होर बरदाश्त नई किया जा सकदा। मोहन लाल , तुस्सी हाले तक मेरे स्वाल दा ज्बाव नई दित्ता कि इस झल्ले के बारे इच त्वाड़ी की ओपिनियन ऐ, ए मेरी फैमिली दा मैम्बर बणने वाला है । जेड़े शख्स इच इक जोक तक समझने दी अकल नई ओसनूं कोई इंसान कह सकदा ऐ ?

" फौरेन सर्विसेज शब्द के आदमी "और अपने सम्भावित दामाद गुलाटी को सम्बोधित, इस संवाद के रेखांकित शब्द पंजाबी भाषा के बजाय हिन्दी और उसकी व्याकरण के ज्यादा निकट हैं । प्रदर्शन में इसे प्रभावशाली एवं विश्वसनीय बनाने में पंकज कपूर जैसे श्रेष्ठ अभिनेता का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं था । यही काम कुछ अन्य भाषाओं विशेषकर मराठी और उसमें भी विजय तेंडुलकर के नाटकों के वसन्तदेव द्वारा किये गये अनुवादों में काफी सफलता एवं जीवन्तता दिखाई दी है । जैसे - "घासीराम कोतवाल " के जेल प्रसंग में

सूत्रधार का यह संवाद —

सूत्रधारक (लौटकर खाँसता हुआ, साथ वालों से (रानबा, जे तो ऐसेई हो गिया यार के सेर भरी ठण्डाई में भंग रती भर की, इत्ती सी कुठारिया और साली भीड़ सवा सौ की । धंसई नई ससुर । तो भैया, मैंने सब तरफ सैं ठूँसा, हुआँ सैं घूँसा तब जाके कई घुसे हैं ।

यहाँ शब्दों के बोलचाल वाले रूप पर तो विशेष बल है ही, कहावत, गाली और खुले अन्दाज के साथ-साथ अपने आप आ जाने वाली स्वाभाविक क्रियाओं –मुद्राओं का नाटकीय समावेश और कथन की जीवन्तता भी द्रष्टव्य है । हबीब तनवीर और उनके छत्तीस गढ़ी लोक-कलाकारों द्वारा उन्हीं की भाषा में मंचित, खासकर "चरनदास चोर " जैसे, नाटकों की सफलता और लोकप्रियता तो सामने थी ही, मध्यप्रदेश रंगमण्डल ने ब0व0कारन्त, क्रिट्ज और अलखनन्दन के निर्देशन में क्रमशः कालिदास के मालविकाग्निमित्र , बैष्ट के काकेशियन चाक सर्किल (इंसाफ का घेरा (तथा बैकेट के वेटिंग फार गोदो (गोडा ला देखत हन (जैसे क्लासिक नाटकों को बुन्देली में दिखाने का उपक्रम है ।

इसके अतिरिक्त, भारतीयता और अपनी जड़ों की तलाश में, या उसके नाम पर बतौर फैशन बहुसंख्य हिन्दी निर्देशकों ने काफी पहले से ही लोक शैलियों के "प्रयोग " करने शुरू कर दिये थे, परन्तु बिडम्बना यह थी कि अक्सर लोकशैली के रंग–प्रयोगों में भी लोक भाषा का प्रयोग नहीं था । सन् 1984 की संगीत नाटक अकादमी की एक योजना ने युवा रंगकर्मियों को पारस्परिक /लोकशैलियों के साथ साथ बोलियों में भी नाटक करने को प्रेरित किया

बंशी कौल निर्देशित "खेल गुरू का " में मालवी, उर्मिल कुमार थपलियाल निर्देशित "हरिचन्नर की लड़ाई " में अवधी और ब्रज की मिली–जुली कसबाई भाषा, भानु भारती निर्देशित "पशु गायत्री" में मेवाड़ी , अर्जुनदेव चारण निर्देशित "अमली" में भोजपुरी –मिश्रित हिन्दी का रचनात्मक उपयोग किया गया है ।

हृषिकेश सुलभ के नाटक " अमली" की भाषा", देशज शब्दों, लोकोक्तियों , मुहावरों और स्थानीय विशिष्ट अभिव्यक्तियों और अर्थपूर्ण ध्वनि –संकेतों से सम्बद्ध होने के कारण, सम्प्रेषण को सहज एवं प्रभावशाली बनाती हे । "बिदेश" (कलकत्ता) जाते समय साथ चलने का हठ करती पत्नी अमली को अपने स्वाभाविक ग्राम्य अन्दाज में समझाते पति रमेसर का कथन :

(रमेसर का कथन)

तेरे मगज में भूसा भरा है । हमारे साथ परदेश जायेगी ?
हुँह ! रहे – खाये का कवन ठिकाना ना है अउर जनाना को
धोती के खूँटा में बाँधे के कहँवा– कहँवा डोलत फिरेंगे ?
नइहर चल जा ।

बोलियों/भाषाओं में लिखे हर नाटक की अपनी सीमा होती है । ब0 व0 कारन्त के "मालविकाग्निमित्र " और किसी हद तक हबीब तनबीर तथा सतीश –आनन्द के " "मिट्टी की गाड़ी " जैसे दो एक अपवादों के बावजूद , बोलियों का प्रयोग अभिजात वर्ग के चरित्र

तथा सूक्ष्म भावनाओं और गहन जटिल विचारों की अभिव्यक्ति के बहुत अनुकूल नहीं बैठता । अभिनय की दृष्टि से भी बोली के नाटकों में सात्विक की अपेक्षा वाचिक, आंगिक और आहार्य पर अधिक बल रहता है । इस सन्दर्भ में भक्ति और रीति –कालीन साहित्य में ब्रज तथा अवधी की व्यापक एवं सूक्ष्म महाकाव्यात्मक भावाभिव्यक्ति क्षमता की चर्चा करना इसलिए अप्रासंगिक या किसी हद तक गलत भी है , क्योंकि वे विचार – विश्लेषण और गद्य की बोलियाँ । भाषायें नहीं थीं । सम्भवतः यह भी एक कारण है कि नाटककारों ने अपने ऐतिहासिक – पौराणिक परिवेश के आधुनिक नाटकों में बोलियों का प्रयोग नहीं किया । बोली के नाटकों की दूसरी बड़ी सीमा इनकी स्थानीयता है । यह नाटक एक अंचल विशेष के मुट्ठी भर लोगों के बीच ही लोकप्रिय और प्रभावशील होते हैं । इनके मुकाबले खड़ी बोली के नाटक समस्त हिन्दी भाषी प्रदेश ही नहीं, बल्कि सारे देश में पढ़े – समझे और खेले देखे जा सकते हैं । हबीब तनवीर के देश – विदेश में सुविख्यात छत्तीसगढ़ी नाटक "चरनदास चोर " को शायद इसीलिए खड़ी बोली में प्रकाशित किया गया है ।

नाटक की भाषा की समस्या में एक पहलू अभिनेता की है । प्रदेश – विशेष के अभिनेता वहाँ की बोली को जितने स्वाभाविक, सहज और असरदार ढंग से बोल सकते हैं उतने दूसरे प्रदेश के शहरी अभिनेता नहीं बोल सकते । "ऋषिकेश सुलभ के भोजपुरी नाटक " "अमली " के दिल्ली आर्ट थियेटर द्वारा जे0एन0 कौशल निर्देशित प्रस्तुतीकरण में बहुसंख्य भोजपुरी संवादों को बदलकर खड़ी बोली में किये जाने के पीछे अभिनेताओं की व्यावहारिक समस्या ही एक कारण बनी थी । संक्षेप यह कहें तो यह व्यावहारिक सच है कि बोली का नाटक का स्थानीय होता है और" खड़ी बोली " का नाटक राष्ट्रीय ,जबकि रचनात्मक दृष्टि से स्थिति

उलटी भी हो सकती है । हिन्दी नाटकों में बोलियों का बहुविध इस्तेमाल हो रहा है इसका प्रमुख कारण तो फिलहाल निर्देशक – अभिनेता ही हैं । भीष्म साहनी के बहुचर्चित नाटक "कबिरा खड़ा बाजार में" के निर्देशक एम0 के0 रैना के निर्देश पर ही एक अभिनेता ने अवधी – भोजपुरी में ढाला ।

नुक्कड़ नाटकों में भी कुछ विशिष्ट चरित्र खास संवाद का प्रयोग दृष्टिगत होता है । इससे चरित्र की प्रामाणिकता और आलेख के भाषा – संसार को रोचक बनाते हैं । यथा – निर्देशक अभिनेता, नाटककार सौरभ शुक्ल का नाटक " तांडव" में कालेज के चुनाव , राजनीतिक पार्टियों के हस्ताक्षेप और षडयंत्र का दिलचस्प चित्रण है, परन्तु अभिनेताओं द्वारा हरियाणवी बोली के प्रामाणिक उच्चारण ने प्रदर्शन को जितना जीवन्त और प्रभावशाली बना दिया, उतना वह पढ़ने पर नहीं लगता । दो – एक संवादों की बानगी दृष्टव्य है –

नेताजी : राम राम भइया कैसे हो ?

राजबीर : (आगे बढ़कर पाँव छूते हुए)

पाय लागू नेता जी ।

नेता जी ; जीते रहो राजबीर, सब ठीक तो है न ?

राजबीर : कहाँ नेता जी ! वो राणा ईब तक घूम रेया है सुन्दरी के साथ ।

नेता जी ; कौन सुन्दरी ?

राजबीर : वा परधान की छोरी

नेता जी : भई राजबीर तुम्हें अभी लड़कियों के चक्कर में ज्यादा नहीं पड़ना चाहिए ।

एक — रै तो नेता जी यो कौण सा बूढ़ा हो लिया जो छोरिया के चक्कर छोड़ दे ।

(सब ठहाका मारकर हँसते हैं ।)

नाटक की भाषा सिर्फ शब्द नहीं है । वह भाषा के दूसरे अवयवों पर परस्परावलम्बित सम्प्रेषण है । रचनाकार इस अन्त:सम्बन्ध का निर्णय और इसके घटकों के सन्तुलन का विधान, कला और कथ्य के अपने आग्रह पर करता है , पर जब इसी भाषा को जन- समाज स्वीकार कर चुका होता है , तो समाज में मानवीय जीवन की आवश्यकताएं , जो कभी पूरी तौर पर कला की आवश्यकताओं के आधार पर नहीं चलतीं, एक परम्परा को फिर से जानने का आग्रह करती है — इस बार तत्कालीन राजनैतिक शर्तों पर । इस तरह जिन कल्पनाओं का अतीत में नाट्य भाषा ने साकार कर दिया था उन्हीं को वर्तमान की समाज भाषा फिर से साकार करती है — भाषा के द्वारा भाषा का अवमूल्यन होता है ।[1]

इसका महाभारत से अच्छा दृष्टान्त न मिलेगा जिस महाभारत को हमने शब्दों से जाना उसमें कल्पना का संसार जीवित था । जिस महाभारत को हमनेपारसी रंगमंच से जाना, उसमें कल्पना को बहुत कुछ मूर्त कर दिया था पर जिस महाभारत को हम टीवी से जान रहे हैं , उसमें कल्पना को लगभग ढकेल बाहर कर दिया गया है । इसके राजनैतिक कारण हैं । जिनके हाथ में प्रचार साधन हैं, उनकी राजनीति कल्पना को सत्ता के मानव विरोधी

---

1. नटरंग अर्धशती विशेषांक, अंक 50-52, पृ0 169-174
सम्पादक — नेमिचन्द्र जैन

उपयोग की दृष्टि से प्रतिकूल समझती है ।[1]

इस उदाहरण से यह भी सिद्ध होता है कि जिस भाषा में "शब्द" केन्द्रीय होता है वह दूसरे साधनों की अधिक से अधिक पूरक सृष्टि करती है । जब मनुष्य का शरीर ही उन साधनों का माध्यम होता है तो नाटक की भाषा शैलीकृत हो जाती है ,जिससे कल्पना को नये आयाम मिलते हैं ।

इस प्रकार नाटक की भाषा केवल साधारण सम्प्रेषण नहीं करती; बल्कि परिवेश, स्थितियों और पात्रों के साथ उनके माध्यम से एक नाट्य अनुभव करती है । यह नाट्य अनुभव अपनी तरह के यथार्थ का प्रत्यक्ष आभास कराता हुआ चलता है । नाटककार के अतिरिक्त नाटक की भाषा का बहुत कुछ निर्धारण नाट्य – वस्तु भी करती है ।

---

1. मौलिक नाटकों के सन्दर्भ) आलेख) " जयदेव तनेजा " पृ॰सं॰171,172,173 . "अर्धशती विशेषांक", नटरंग , सम्पादक - नेमिचन्द्र जैन

अध्याय - सात

****

निर्वहण

अध्याय - सात

निर्वहण

नाट्य लेखन काव्य और कला का विश्वकोष है, साथ ही सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों की विराट चेतना का अप्रितम संग्रह होता है । इस कारण नाटक को समझने के लिए अध्येता का स्वरूप भी द्विगुणात्मक होना चाहिए । आज के नाटक विसंगतियों के बीच जीते हुए मनुष्य के दृश्य है । नाटक या उसकी प्रदर्शन शैली उस समय के मानवीय अनुभवों की जटिलताओं, अन्तर्विरोधों या परिवर्तनों के बिन्दुओं को अभिव्यक्त करता है, तभी तो नाटक के प्रदर्शन का सामाजिक घटना कहा जाता है, जो एक साथ कई तत्वों से जुड़ी होती है । इस बिन्दु पर नाटक केवल आलेख नहीं रहता, न केवल प्रदर्शन, न केवल अभिनय, न केवल मनोरंजन वरन् समुदाय के लिए सामाजिक अनुभव में बदल जाता है । इसी विशिष्टता के कारण नाटक एक साथ बोलता और चलता है ।

नाटक पौराणिक हो या सामाजिक, राजनैतिक या ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक अथवा रोमांचक या अन्य सभी पर कुछ न कुछ प्रभाव दिखता है । नाट्य साहित्य को मुख्य विधा मानकर आजकल नाटककार आदर्शोन्मुख यथार्थवादी नाट्य रचना करते दिखते हैं । नाटकों में नैतिकता का स्वर मुखर है और विकृत तथा विरूपता की अपेक्षा सदाचार तथा सुरूचि सम्पन्नता को उजागर करने का यत्न किया गया है । वास्तव में नाट्य लेखन जीवन का दर्पण ही नहीं, दीपक भी है । मानव जीवन को ही उसका प्रमाण परिधि मानकर नाटककार उसमें सर्जनात्मक शक्ति का संचार करता है ।

सम्यक् सूक्ष्म विशलेषण करने पर प्राप्त होता है कि नाट्य लेखन धीरे-धीरे दर्शन अध्यात्म और धर्म की सरिताओं में स्नान करता हुआ ऊँचाई की उस शिखर पर पहुँच गया है, जहाँ नाटक का लक्ष्य दर्शकों को मात्र मनोरंजन करना ही नहीं, सुसंस्कारित करने का एक यज्ञ बन गया । सभ्य और आदर्श लोकवादी समाज रचना का एक प्रकल्प सिद्ध हुआ । संवेदनशील और निष्कलंक मानव की रचना एक कलात्मक अनुष्ठान है । उसका प्रयोग केवल दिखाने के लिए नहीं अपितु समाज के परिष्कार एवं विकास के लिए प्रेरणा का पीयूष बहाने वाला है ।

निर्देशक

रंगमंच, रेडियो और दूरसंचार के नाटकों के सफल प्रस्तुतीकरण में निर्देशक ही वह केन्द्रीय सूत्र होता है जो विभिन्न तत्वों को पिरोता है और उसकी समग्रता को एक समन्वित स्वतन्त्र कला रूप में दर्शाता है । सार्थक प्रदर्शन में नाटक जिस रूप में दर्शक, श्रोता, पाठक के पास पहुँचता है, वह बहुत कुछ निर्देशक के कला-बोध और जीवन-बोध को सूचित करता है । निर्देशक ही समय, स्थान के आधार पर यह निश्चित करता है कि कौन स्वर किस समय यथोचित होगा । इसके बाद ही अभिनेताओं तक अपने उस बोध को सम्प्रेषित करके उन्हें इस कलात्मक साहस यात्रा में साथ चलने के लिए आंतरिक रूप में तैयार करता है और उसकी गतियों और रंगचर्चा के संयोजन द्वारा वास्तविक अभिनय के संयोजन द्वारा विभिन्न अभिनेताओं के पारस्परिक सम्बन्ध के विशेष प्रकार के सन्तुलन नियम और प्रेक्षपण द्वारा उनके माध्यम से नाटक का अपना अभिप्रेत, अर्थ-निर्णय अभिव्यन्जित करता है।

इस प्रकार निर्देशक ही रंगशिल्प के अन्य तत्वों भी अभिनेताओं की मुख सज्जा, वेश-भूषा, दृश्यबंध प्रकाश योजना, ध्वनि तथा संगीत योजना को पूर्व कल्पित और नाटक के स्वीकृत अर्थ निर्णय से जुड़ी हुई समन्वित में बाँधता है और इस प्रकार का समग्र समन्वित प्रभाग दर्शन तक सम्प्रेषित करता है । नाटककार, अभिनेता, दृश्यांकनकार, वेश-भूषाकार, प्रकाश-व्यवस्था, ध्वनि-संयोजन तथा गीत-संगीत का केवल संगठन कर्ता नहीं होता, वरन् उनकी सर्जनशीलता को सम्पूर्ण क्षमता में सक्रिय करके उनके विशेष प्रकार के सर्जनशील संयोजन द्वारा एक सर्वथा नयी सृष्टि का रचयिता होता है । निःसंदेह निर्देशक बिना समन्वित कृति के रूप में नाटयानुभूति का आस्वाद मिलना दुलर्भ होता है । इस कारण निर्देशक की भूमिका अहं होती है ।

पात्र योजना

नाट्य प्रयोक्ता के लिए नाटक के प्रस्तुतीकरण हेतु पात्रों का संयोजन करना श्रम साध्य कार्य होता है । समय, स्थान और क्रिया-कलाप के आधार पर पात्रों की योजना की जाती है। रेडियो नाटक में ध्वनि की प्रमुखता के कारण सीमित पात्रों से ही कार्य सम्पादित हो जाता है, क्योंकि रेडियो के नाटक के पात्र दर्शक के सामने न होने के कारण एक ही पात्र कई पात्रों की भूमिका प्रस्तुत कर लेता है । टेप रिकार्डर से भी रेडियो नाटक में अच्छी मदद मिलती है।

दूरदर्शन के नाटकों में विज्ञान के कारण पर्याप्त सहायता मिलती है । दूरदर्शन के पात्र रेडियो एवं मंचीय नाटकों की तुलनामें अधिक धन लेते हैं । दूरदर्शन के पात्रों को भी रेडियो नाटक के पात्रों की तरह दर्शक की सीधे जवाब देही नहीं रहती ।

मंचीय नाटकों के नायक, नायिका के अतिरिक्त अन्य पात्र जो भी रखे जाते हैं, उनकी दर्शकों से जवाब देही होती है इस कारण मंचीय नाटकों के पात्र रेडियो नाटक एवं दूरदर्शन के नाटकों की तुलना में अधिक महत्तवपूर्ण होते हैं । सम्प्रति प्राचीन नाटकों का विदूषक अब मात्र हास्य और व्यंग्य का शाब्दिक रूप लेकर ही रंगमंच पर रह गया है । नाटकों में पात्र ही अनुकार्य आदि की अवस्था का साजात्य अनुकरण करता है । यह बात अत्यन्त समीचीन है कि नाटक का प्राण उसके पात्र ही होते हैं ।

अभिनय

अभिनय अभिनेता द्वारा नाटककार के भावों, विचारों और शब्दों को रूपाकार देने की प्रक्रिया है । रंगमंच, रेडियो एवं दूरदर्शन का अभिनेता अपनी-अपनी सीमाओं के अन्तर्गत यह कार्य को सम्पादित करता है । अभिनय में पात्र अनुकार्य आदि की अवस्था का साजात्य अनुकरण करता है । अपनी आंगिक चेष्टाओं, वाणी के सन्तुलित उपक्रम, मनोवेगों की प्रांजल अभिव्यंजना उचित वेश-विन्यास तथा अवस्था और प्रकृति के अनुसार नाटककार द्वारा निबद्ध पात्रों और उनके विचारों, भावों तथा कथावस्तु आदि को आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य रूप में रूपायित करता है । अभिनेता का अभिनय देश तथा वेष के अनुसार करना होता है ।

"देशवेषानुरूपेण पात्रं योज्यं स्वभूमिषु" ।

अभिनय के सन्दर्भ में यह बात सत्य है कि जिस प्रकार जीव एक शरीर को त्याग कर अन्य शरीर में प्रवेश करके उसके अनुरूप कार्य करने लगता है, उसी प्रकार भूमिका करने वाले पात्र को मंच पर प्रवेश करने के पूर्व अभिनीत करने वाले

पात्र का मानसिक स्मरण करना चाहिए और उसी मनोदेशा में उस पात्र जैसे वाणी और आंगिक चेष्टाँए बनानी चाहिए ।

"यतोहस्तस्ततो दृष्टि:यतो दृष्टिस्ततो मनः

यतोमनस्ततो भावः यतो भावस्ततो रस:" ।

जहाँ हाथ जाये वहीं दृष्टि को जाना चाहिए, जहाँ दृष्टि जाये वहीं मन को जाना चाहिए तथा जहाँ भाव जाये वहाँ रस को जाना चाहिए ।

वाचिक अभिनय के अन्तर्गत भाषा, ध्वनि, उच्चारण के नियम शब्द और पद-रचना आदि का वर्णन किया जाता हे । आहार्य अभिनय में पात्रों के साज-सज्जा को रूपायित किया जाता है । सात्विक अभिनय के अन्तर्गत लोक प्राणियों के स्वभाव, चारित्रिक लक्षणों और चरित्रों की भूमिका करने वाले पात्रों के अभिनय की प्रकृति का विश्लेषण किया जाता है।

इस प्रकार अभिनय उस शक्ति को कहा जाता है, जो हाव-भाव, मुद्रा चेष्टायें, वाणी, विचार आदि को नेतृत्व प्रदान करती हुई अपने मूल स्थान से आगे की ओर प्रेरित करती है । नेतृत्व के द्वारा वह विभिन्न अंगों को सन्तुलित कर उद्देश्य समान और सामूहिक बनाये रखती है । कुल मिलाकर अभिनय सबको आगे ले जाने वाला तत्व है ।

संवाद

चाहे मंचीय नाटक हो या रेडियो के नाटक हो, अथवा दूरदर्शन के नाटक हो, सबमें संवाद अत्यधिक प्रदीर्घ अनावश्यक गूढार्थक जटिल, लाक्षणिक तथा दूर तक दर्शन की गहनता के प्रतिपादक नहीं होना चाहिए । इसी प्रकार के बोझिल संवाद नाटकोचित चांचल्य में बाधक होते हैं । नाटकों में जोड़-तोड़ के छोटे-छोटे प्रभावोत्पादक आंगिक, सात्विक और वाचिक अभिनय व्यापार से पुष्ट संवादों की संयोजना अपेक्षित रहती है । संवादों के बीच में एकरसता तथा दर्शकों के तनाव को कम करने वाले हास्य व्यंग पूर्ण संवादों की सहज संयोजना से नाटकीय प्रभुविष्णुता में अभिवृद्धि होती है । सुसंगठित संवादों में स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक भावों के संवहन की क्षमता होनी

चाहिए । संवाद कथा की गति और पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करते हों । कतिपय नाटकों में टूटे, जटिल और क्रिया रहित हकलाकर एक-एक कर बोले जाते हैं । ऐसे संवादों के औचित्य को ही स्वीकार करना उचित होता है । नाटकों में चारूता संवदों के माध्यम से ही उत्पन्न होती है।

भाषा

नाटक की भाषा केवल शब्दाश्रित नहीं होती । वह एक संश्लिष्ट जैविक इकाई की तरह होती है । इसमें सार्थक और निरर्थक ध्वनियों के अतिरिक्त मोन क्रिया-कलाप, मूक अभिनय, मुद्राएँ, भंगिमाँए, दृश्यबंध, स्थापत्य, चित्र-कला, संगीत, नृत्य, छायालोक प्रभृति अवयव मिलाकर यथोचित प्रयोग की जाती है। भाषा का सम्बन्ध चरित्र से होता है इसलिए नाटककार व्यापक जन समुदाय द्वारा प्रयुक्त भाषा को ग्रहण करता है । अर्थात् भाषा देश काल परिवेश से निधारित होती है ।

नाटक-भाषा केवल सम्प्रेषण नहीं करती, बल्कि परिवेश स्थितियों और पात्रों के साथ और उनके माध्यम से एक नाट्य अनुभव कराती है । यह नाट्यानुभव अपनी तरह के यथार्थ का प्रत्यक्ष आभाष करता हुआ चलता है । इसी कारण नाट्य-भाषा जबरदस्त समस्या बन जाती है । नाटक मात्र परीक्षा के पाठ्यक्रम की वस्तु नहीं है, उसकी सार्थकता मंच पर सिद्ध होती है ।

यदि नाटक एक जीवनानुभव है, वह किसी विगत का विवरणात्मक आलेख नहीं, तो खुद सत्यगृहीत 'सत्य' स्वीकार करने होंगें । यदि नाटक की शक्ति उसकी प्रत्यक्षता में है तो ये जीवित रखने के लिए अर्थात् नाटक का संवधन करना आवश्यक होता है । नाटक की भाषा मूल रूप में प्रत्यक्षता की रक्षा करती है । वह पात्रों को जीवंत बनाती है, साधारण से विशिष्ट बनाती है और जब पात्रों के माध्यम से वस्तु उजागर होती है,तभी अनुभव सुलभ हो पाती है । दूसरे शब्दों में नाटक की भाषा कैसी हो ? इसका निर्धारण नाटककार नहीं करता नाट्य-वस्तु करती है ।

धरती से जुड़ी हुई सहज, प्रखर, जीवन्त, विम्बात्मक, हरकतभरी, ताजी स्वतः स्फूर्त और लय विधान की दृष्टि से विविधता पूर्ण समय, स्थान, क्रिया-कलापों को ध्यान में रखते हुए करना उचित होता है । रेडिया नाटक में ध्वनि, भाषा की प्रमुखता होती है । इस प्रकार भाषा में शब्द केन्द्रीय होता है । इसलिए नाटक की भाषा बोलने और समझने में सहज सुबोध होनी चाहिए ।

रस और मनोविज्ञान

रसों के जन्म की प्रक्रिया दरअसल "नाट्य शास्त्र" का संक्षिप्त सा वर्णन नहीं, अपितु मानव सभ्यता के विकास की कहानी है, इतना ही नहीं, मानव के मनोभावों के विकास की कहानी है । हिन्दू, मुसलमान एवं ईसाइयों के ग्रन्थ देखें तो मिलता है कि संसार में सर्वप्रथम एक पुरूष और एक स्त्री का संयोग हुआ । उनके मन में 'रति' का भाव उत्पन्न हुआ, जो कालान्तर में 'श्रृंगार-रस' कहलाया । भारतीय वांङ्मय में नाटकों को ही सबसे पहले काव्य कहा गया और इन्हीं नाट्योपयोगी काव्यों में आत्मा की अनुभूति रस में प्रतिष्ठित हुई । नाटक में रस की प्रक्रिया और अन्य तत्वों- कथावस्तु, पात्र, संवाद, भाषा, दृश्य-विधान, प्रतीक विधान, संगीत अभिनेयता आदि से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। नाट्य रचना में इन तत्वों के सुसंयोजन से समर्थ रस सिद्धि सम्भव होती है । व्यक्ति के मूल भावों, रति, उत्साह, क्रोध, शोक आदि उद्‌बुद्ध कर आस्वादनीय आनंदमयी चेतना की सृष्टि करने की क्षमता जिस रचना में होती है, वही रचना सर्जनात्मक साहित्य का गौरव प्राप्त करती है । व्यक्ति के हृदय एवं बुद्धि को परितृत्त तथा उत्तेजित कर उसको सात्विक भावों का आस्वादन कराती है ।

कथावस्तु या घटना विन्यास विचार तत्व अर्थात् रस से सम्भव होता है नाटक कार नाटक के घटना विन्यास द्वारा जीवन के *(सत्य)* मूल्य को सामाजिक-दार्शनिक- नैतिक उपलब्धि को अभिव्यक्त करता है । यह अभिव्यक्ति ही सामाजिक के हृदय में संस्कारावस्थित स्थायी भावों से साधारण के साथ व्यक्त होकर रस रूप

में परिणति होती है। नाटक के रचना तत्वों में दृश्यात्मक परिकल्पना का विशिष्ट महत्व है । हृदय स्पर्शी भावना के प्रत्यक्ष रूप देने में नाटकीय वातावरण से पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है ।

रेडियो का श्रोता, क्योकि अभिनेता को देख नहीं पाता, इसलिए अकेले ही कई प्रकार के संवाद बोलता है और विभिन्न रसानुभूति से श्रोताओं को कराता है । दूरदर्शन में विज्ञान ने इतनी प्रचुर मात्रा में उपकरणों का अविष्कार कर दिया है कि इनके उपयोग से क्रोध, उत्साह, शोक, रति आदि किसी की रसानुभूति भावक से करायी जा सकती है।

नाटक में रस, संगीत, नृत्य, कलाओं, मंच सज्जा, प्राकृतिक दृश्य संयोजन आदि उपकरण में महत्तवपूर्ण योग देते है । आधुनिक रंगमंचों में या नाटक के अन्य सम्प्रेषण के माध्यमों में प्रतीकों, विम्बों से रस निष्पत्ति में सहायता ली गयी इस तरह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नाटक तत्वों लोकोत्तर और अनिर्वचनीय आनन्द स्वरूप रस की सृष्टि करती है । प्रेक्षक के रसास्वादन में ही अभिनय की सफलता निहित होती है ।

दृश्ययोजना तथा संगीत और रंगमंच

रंगमंच में संगीत का यान्त्रिक प्रयोग होने लगा है इस कारण नाटक में सशक्तता और सौन्दर्य भी प्रोन्नति हुआ है । इसी क्रम में ध्वनि के ढेरों प्रयोग टेप रेडियो, फोन, क्रॉलवेल, माइक आदि ने रंगमंच में श्रीवृद्धि की है । रेडियो नाटक में ध्वनि का विशेष महत्तवपूर्ण होता है । नाटकों में 'स्वगत कथन' को अव्यवहारिकता के चलते नाट्य दोष के अन्तर्गत परिगणित किया गया है । वही अब उसी कलाकार की आवाज को टेप से सुनाकर प्रभावकारी हो जाता है । इलेक्ट्रानिक माध्यमों का रंगमंच में महत्तवूपर्ण योगदान दिखता है ।

रंगमंच में सुविधा हेतु दृश्यों का क्रम इस प्रकार हो कि प्रयोक्ता उनकी

व्यवस्था कर सके । दृश्यात्मक वस्तुएँ ऐसी लगी हो, जिनके हटाये बिना अगला दृश्य पूर्ण रूप से बन सके । अंक में दृश्यों की संयोजन इस प्रकार होनी चाहिए कि गहरे दृश्य के बाद एक संकीर्ण दृश्य का विधान रहना चाहिए, जिससे रंग व्यवस्थापक अगले गहरे दृश्य की साज-सज्जा कर सके ।

रंगमंच में प्रकाश-योजना भी अत्यन्त लाभ प्रद होती है । जैसे मंच की वस्तुओं में जो खुद घटित होता है उसे ठीक से देखा जा सके, नाटकीय क्षणों को उभारा जा सके ।

नाटक में नृत्य, संगीत और अनुकरण की प्रमुख भूमिका होती है । निःसंदेह संगीत का प्रयोग निर्देशकों ने किया । संगीत के माध्यम से नाटककार वस्तु स्थिति का ज्ञान, दर्शकों, श्रोताओं को करा देता है । संगीत रंगमंच का अहं पहलू है । संगीत के माध्यम से कठिन से कठिन कार्य करने में अभिनेता एवं अन्य पात्रों अत्यन्त सहायता मिलती है । संगीत रंगमंच ऐसा काम है, जिसके अभाव में रंगमंच की सफलता संदग्धि हो जाती है । चाहे रेडियो नाटक हो, मंचीय नाटक हो या फिर दूरदर्शन के नाटक को संगीत की प्रत्येक दशा पर आवश्यकता पड़ती है ।

रंगमंच सदैव समसामयिक होता है और समय के साथ चलता है । इस कारण उपभोक्ता वादी दुनिया में लोगों की धन लोलुप्ता के लिए आपा-धापी मची है । फलतः लोगों में नैनिकता का ह्रास हुआ है । मनुष्यों को स्वस्थ्य होने के लिए मनोरंजन की आवश्यक है । इसके लिए चाहे दूरदर्शन हो या रेडियो अथवा अन्य माध्यम संगीत की भागीदारी सबके साथ समान रहती है । संगीत मनोरंजन का प्रणातत्व है । इसलिए वातावरण का प्रदूषित करने वाली अथवा समाज को कुसंस्कारित करने वाले गीत-संगीत को हटाये जाने की परं आवश्यकता है।

रंगमंच एक सहयोगी एवं संश्लिष्ट कला रूप है, जो नाट्य लेखन से प्रदर्शन (प्रेक्षक) तक एक संयुक्त रचनात्मक प्रक्रिया से होता हुआ, जीवन्त अभिव्यत के रूप में साकार और सार्थक होता है । फिल्म और टी0वी0 धारावाहिकों ने रंगमंच

पर सीधा प्रभाव डाला है । वरिष्ठ प्रतिष्ठित और प्रतिभावान कलाकार भरपूर नाम और दाम देने वाले इन बड़े माध्यमों की ओर भाग रहे हैं । इसका कारण हमारे यहाँ हिन्दी नाटकों हेतु नियमित रंगमंच के न होने का है । रंगकर्मियों में उत्साह तो दिखता है वरन् आस्था, समझ और कल्पनाशीलता में कमी दिखती है ।

जिन लोगों को नवें दशक में रंगमंच मरता या पतित होता दीख रहा था, वह जीवन से पतित होने का प्रतिबिम्ब था, जिस प्रकार जीवन विज्ञान और तकनीक की सुविधाओं को अपनाकर स्वं पंगु बनना स्वीकार किया, इसी प्रकार नागरी रंगमंच आधुनिक शिल्प और तकनीकी आडम्बरों से युक्त होकर अपनी जुझारू प्रकृति के सामने पीठ करके खड़ा सा लगता रहा । रंगमंच में लोकतत्वों को प्रतिष्ठा देने का प्रयास नहीं दिखाई पड़ा । रंगमंच में एक ठहराव सा आ गया था, वरन् आजकल हिन्दी रंगमंच के विकास का यह समय उत्साह वर्धक है । रंगमंच को दूरदर्शन अथवा संचार के किसी माध्यम के आदर्श रूप में होना चाहिए । साथ ही रंगमंच को व्यावसायिक बनाकर तथा रंगकर्म को नियमित करके प्रचलित लोक कलाओं के माध्यम को ग्रामीणों, शहरों कें बीच निरन्तर लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है ।

संक्षेप में चाहे चित्रपट हो, चाहे रूपक हो, चाहे नाट्य रूपान्तर हो, आदि सभी 'नाटक' के ही विविध रूप है । इन सबका मूल स्रोत रूपकों तथा नाटकों में अन्तर्निहित है । वैज्ञानिक विकास और सुविधाओं ने नाटक के भेद, प्रभेद, शाखाँए उपशाखाँ , प्रशाखाँए विकसित अवश्य की हैं, किन्तु इन सबका बीज रूप नाटक में ही सामाहित है । नाट्य विधा आज भी जीवन्त है कारण उसमें कलाकार सशरीर उपस्थित होता है, जबकि इत्तरेत्तर विधाओं में हमें रंगकर्मी के मात्र छायाचित्र देखने को मिलते हैं । मंचीय नाटकों तथा अन्य नाट्यविधाओं में यह बहुत बड़ा अन्तर है जो परिलक्षित किया जा सकता है । रंगमंच और रंगभूमि से जुड़े लोग आज भी जीवन्तता की दृष्टि से मंचित होने वाले नाटकों को भी देखना पसन्द करते हैं ।

परिशिष्ट

रस
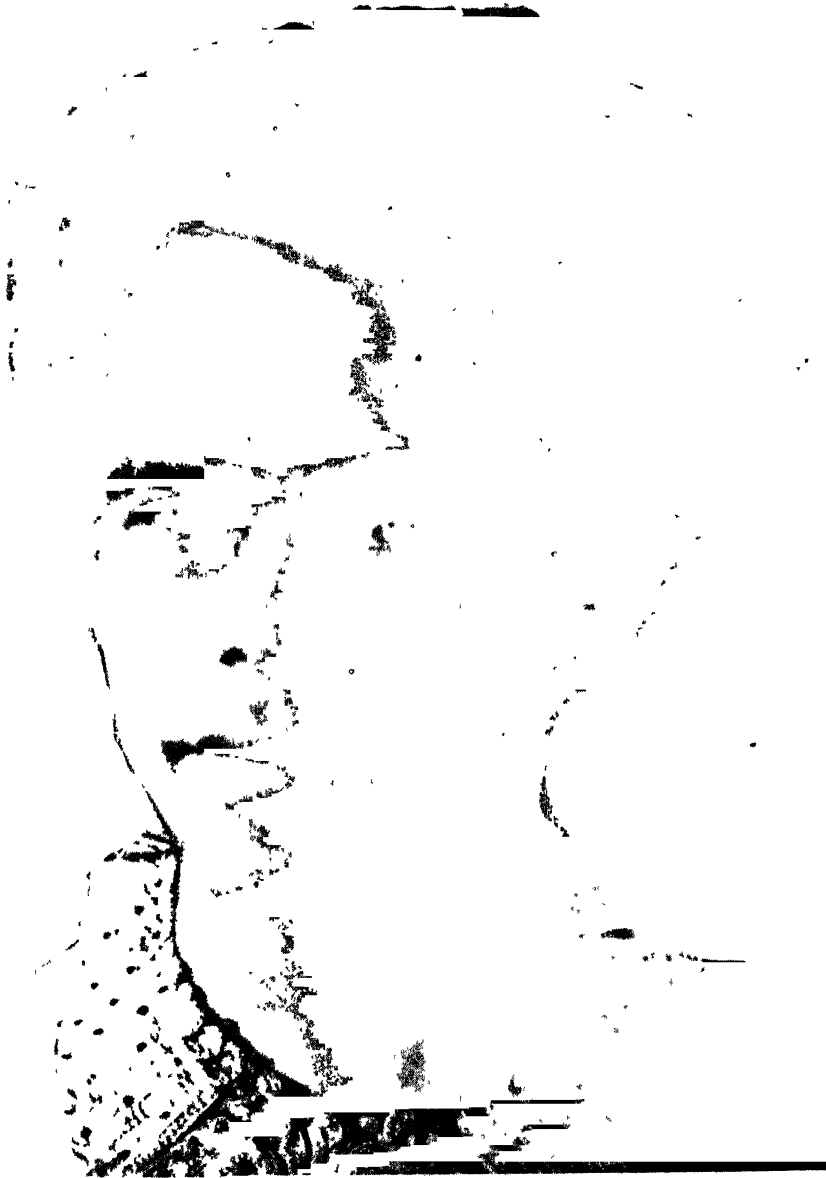
शृंगार

हास्य

वीर

भयानक

करुण

रौद्र

अद्भुत

बीभत्स

हिन्दी रेडियो नाटक का उद्भव काल :

सर्वप्रथम रेडियो प्रसारण, ब्रिटेन में मारकोनी कम्पनी द्वारा 23 फरवरी सन् 1920 ई० को किया गया था । नवम्बर 1922 ई० से नियमित कार्यक्रम प्रसारित किये जाने लगे। इसी वर्ष ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कम्पनी की स्थापना की गई और ''जे०सी०डब्लू० रैथ'' इस कम्पनी के जनरल मैनेजर नियुक्त हुए । रैथ महोदय 1923 ई० में ही भारत में प्रसारण करना चाहते थे, किन्तु किन्हीं कारणों से सम्भव नहीं हुआ ।[1] कुछ एक रेडियो क्लबों द्वारा भारत में छोटे स्तर पर शौकिया तौर से प्रसारण अवश्य होते रहे, किन्तु विधिवत् प्रसारण बम्बई स्टेशन की स्थापना के बाद 23 जुलाई 1927 ई० से हुआ । इसके बाद 26 अगस्त 1927 को कलकत्ता में और एक जनवरी 1936 ई० को दिल्ली केन्द्र की स्थापना हुई। इसी वर्ष इण्डियन ब्राडकास्टिंग कम्पनी का नाम बदल कर ''आल इण्डिया रेडियो'' कर दिया गया ।

भारत में रेडियो का प्रसारण :

नाटक का सम्बन्ध मूलतः दृश्य से होते हुए भी इसका प्रसारण रेडियो से किया जाने लगा । हरिश्चन्द्र खन्ना तथा जी०सी० अवस्थी के अनुसार पुराने रेडियो नाटक रंग नाटक की रूपरेखा पर लिखे जाते थे। उनमें वे विशेषताएं नहीं मिलती थी जो रेडियो नाटक में लक्षित होनी चाहिए थी। बंगाल में रंगमंच परम्परा के प्रभाव के अन्तर्गत जो साप्ताहिक नाटक जनवरी 1928 ई० में शुरू हुए, उनकी अवधि तीन घण्टे हुआ करती थी और इन नाटकों

---

1. दि ब्राडकास्टिंग इन इण्डिया, जे०सी०अवस्थी, पृ० 1-2.

में सभी रंगमंच युक्तियां प्रयुक्त होती थी। कथानक और संवाद भी रंगमंच नाटक के से होते थे तथा रंग निर्देशन अक्सर एक निरूपक द्वारा पढ़ दिये जाते थे[1]। इस कथन से एक तथ्य उभर कर सामने आता है कि भारत में नाटकों का प्रसारण सन् 1928 ई0 से आरम्भ हो गया था ।

सन् 1936 ई0 को एक जनवरी को दिल्ली से प्रसारण आरम्भ हुआ, यह पहला रेडियो स्टेशन था जो हिन्दी भाषी क्षेत्र में खोला गया था । इस केन्द्र से तीन जनवरी 1936 ई0 को प्रसारित होने वाला नाटक "मनतोष" क्षीरोदचन्द्र चटर्जी के बंगला नाटक का हकीम अहमद शुजा द्वारा किया गया उर्दू में रूपान्तरण था । इसके पश्चात् सन् 1937 ई0 में लाहौर तथा 1938 ई0 में लखनऊ में रेडियो स्टेशन खोले गये । यह ऐसा समय था जब इन क्षेत्रों में रंगमंच का समुचित विकास नहीं हुआ था ।[2] विश्वनाथ मिश्र के अनुसार अंग्रेजों ने अपने शासन के प्रारम्भिक दिनों में कलकत्ता और बम्बई जैसे बड़े-बड़े नगरों में अपने मनोरंजन के लिए नाट्य समितियों की स्थापना की थी । अंग्रेजों के इसी स्वान्तः सुखाय रंगमंच को देखकर बंगाल में इसी प्रकार के रंगमंच से प्रेरणा लेकर बम्बई में कुछ पारसी व्यवसायियों ने रंगमंच की स्थापना की । ये नाटक कम्पनियों देश के विभिन्न भागों में घूमती रहती थी और जिस प्रदेश में पहुंचती थी उसी की भाषा में अपने नाटक प्रस्तुत करती थी। जिस समय रेडियो से नाटकों का प्रसारण आरम्भ हुआ । उस समय हिन्दी भाषी क्षेत्र में रंगमंच का अभाव था । जब कभी किसी क्षेत्र में नौटंकी सिनेमा या पारसी कम्पनी द्वारा नाटक का आयोजन

---

1. हरिश्चन्द्र खन्ना, रेडियो नाटक, पृ0 13.
2. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, हिन्दी एकांकी, पृ0 4 भूमिका।

होता था तो लोग दूर–दूर से पैदल चलकर इन्हें देखने आते थे और कम्पनी अभिनय दर्शन की भूख मिटाते थे । ऐसी स्थिति में रेडियो से प्रसारित नाटकों का लोकप्रिय होना स्वाभाविक था ।

ऑल इण्डिया रेडियो पर नाटकों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए सआदत हसन मंटो, कृष्ण चन्द्र, उपेन्द्र नाथ अश्क आदि लेखकों को रेडियो से सम्बद्ध किया गया। मूलतः ये लेखक उर्दू में लिखते थे और उर्दू का वातावरण होने के कारण आरम्भ में अधिकतर नाटक इसी भाषा में लिखे गये, अनूदित और रूपान्तरित नाटकों को छोड़कर प्रसारित हिन्दी नाटकों में से अधिकतर रेडियो शिल्प की दृष्टि से अविकसित ही रहे। जगदीश माथुर के अनुभव से भी इसका समर्थन होता है; उन्होंने अपना प्रसिद्ध नाटक "भोर का तारा" लखनऊ रेडियो से प्रसारणार्थ भेजा। इस सम्बन्ध में लिखते हैं–"लखनऊ स्टेशन पर शायद उन दिनों हिन्दी के जानकार कोई थे ही नहीं। एक उर्दू दां सज्जन ड्रामे के इंचार्ज थे और जाहिर है उन्हें "भोर का तारा" में दिलचस्पी नहीं होती । चुनांचे मेरी आशंका सही निकली और न तो नाटक प्रसारित हुआ और न उसकी पाण्डुलिपि ही वापिस की गई। (जे० सी० माथुर ने कहा) जहां तक मुझे याद है सन् 1947 ई0 आकाशवाणी से ऐसे हिन्दी नाटक बहुत कम प्रसारित होते थे।[1]

हिन्दी का प्रथम रेडियो नाटक :

डा0 दशरथ ओझा ने आचार्य चतुर सेन शास्त्री के "राधाकृष्ण" को हिन्दी का प्रथम रेडियो नाटक माना है । इसकी पुष्टि में उनका कहना है कि इसके लिए "रेडियो स्टेशन, डायरेक्टर, नाटककार तथा अन्य कलाकारों की एक समिति बनाई थी।[2] डा0 दशरथ ओझा

1. जगदीश चन्द्र माथुर, भोर का तारा, पृ0 147–48.
2. डा0 दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उदभव और विकास ॥पाद टिप्पणी॥ पृ0 321.

ने इस नाटक की प्रसारण तिथि नहीं लिखी अधिकतम् शोधकर्ता बहुत सहमत नहीं दिखते ।

कुछ शोधकर्ताओं का मत है कि राजनारायण मेहरा द्वारा प्रणीत नाटक ''नल दमयन्ती'' को हिन्दी का प्रथम रेडियो नाटक माना है जिसका प्रसारण दि0 13.11.1936 ई0 को दिल्ली से किया गया था ।[1] इस नाटक के पात्र नल–दमयन्ती, पुष्कर, कलि द्वापर तथा द्वत हैं। कथासार इस प्रकार है–

''नल अपने भाई पुष्कर से जुए में धन, सम्पत्ति, राजपाट यानि सर्वस्व हार जाता है। पुष्कर उसे देश निकाला देता है। दमयन्ती अपने पिता के घर जाने की अपेक्षा इस इस दारूण दुख मे पति के साथ रहना अपना कर्तव्य समझती है। समस्त नाटक 'संवाद शैली' में लिखा है। नाटक का अन्तिम भाग दृष्टव्य है–

नल : नहीं मेरे पापों का प्रायश्चित मुझे ही करने दो। मेरे साथ तुम दुख क्यों भोगते हो।

दमयन्ती : प्राणनाथ जब आपके साथ सुख भोगे, तो दुख कौन भोगेगा ? नाथ आपके साथ वह दुख भी मेरे लिए सुख होगा । मेरा सुख यही है कि आपकी छाया बनकर सर्वदा आपके आगे पीछे फिरा करूं ।

वैसे राजनारायण मेहरा ''उर्दू'' में लिखते थे और इस नाटक की पाण्डुलिपि "फारसी लिपि" में उपलब्ध है; किन्तु इसका सम्पूर्ण वाक्य-विन्यास हिन्दी भाषा शैली में हुआ है । ''राजनारायण'' उर्दू लेखक हैं इसलिए इन्हें हिन्दी का प्रथम रेडियो नाटककार न मानना या प्रथम रेडियो नाटक न स्वीकार करना असंगत होगा । कितने ही उर्दू लेखक ऐसे हैं जिन्होंने

---

1. दि आकाशवाणी नाटक संग्रह (1636 भाग–3)

हिन्दी, उर्दू में समान रूप में लिखा है, क्योंकि रेडियो नाटक संवादों पर आधारित होता है। इसमें लिपि का महत्व गौण है। नल दमयन्ती की पाण्डुलिपि आकाशवाणी संग्रह-लखनऊ में अपने मूल रूप में सुरक्षित है । अतः 'नल दमयन्ती' को हिन्दी का प्रथम रेडियो नाटक स्वीकार करना उचित है ।

चतुरसेन शास्त्री का "राधाकृष्ण" जिसे दसरथ ओझा ने हिन्दी का प्रथम रेडियो नाटक स्वीकारा उसका प्रसारण दिल्ली से ही नल दमयन्ती के प्रसारण के बाद 29.8.1937ई0 को हुआ था ।[1] यह सही है कि इसकी रचना एक हिन्दी साहित्यकार द्वारा की गई थी, किन्तु इसी आधार पर राधाकृष्ण को हिन्दी का पहला रेडियो नाटक मानना समीचीन नहीं है ।

उदभव काल के प्रमुख रेडियो नाटककार तथा रेडियो नाटक :

आरम्भिक अवस्था में रेडियो को तत्कालीन प्रसिद्ध हिन्दी रंगमंचीय एकांकीकारों का ही सहयोग प्राप्त हुआ, इन्होंने अपने रंगमंचीय एकांकी नाटकों को ही रेडियो नाटक के रूप में परिवर्तित किया । ऐसे लेखकों में उपेन्द्र नाथ अश्क, उदय शंकर भट्ट और रामकुमार वर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं । उपेन्द्र नाथ अश्क के प्रारम्भिक रेडियो नाटकों में– चरवाहे, अधिकार का रक्षक, लक्ष्मी का स्वागत, जोंक आदि। उदय शंकर भट्ट रेडियो के लिए बहुत कम लिखें हैं उनके नाटकों में विशेष रूप में उल्लेखनीय है– "समस्या का अन्त, अघटि, अन्धकार और प्रकाश, नये मेहमान, नया नाटक, विस्फोटक तथा धूमशिखा। प्रत्यक्षतः भट्टजी रेडियो के लिए नाटक नहीं लिखे हैं। "नवभारत" के अन्तर्गत आकाशवाणी दिल्ली

---

1. दि आकाशवाणी नाटक संग्रह (1637–भाग–2)

से उनके –एकला चलो रे, कालिदास, मेघदूत, विक्रमोर्वशी आदि "काव्य नाटक" अवश्य प्रसारित हुए हैं । डा0 राम कुमार वर्मा का "सप्त किरण" संग्रह जिसमें "औरंगजेब की आखिरी रात" ओर फैल्टहैट रेडियो नाटक संकलित हैं ।

प्रमुख हिन्दी रेडियो नाटक :

उपर्युक्त नाटककारों के नाटकों के अतिरिक्त प्रमुख नाटक एवं नाटककार जो मिलते हैं वे हैं –"अन्धा जोगी, एफ0सी0 माथुर (12.01.39ई0)" "मन्दिर" एस0पी0सरकार (08.10.39 ई0), पूरन भगत–कृष्ण लाल प्रेम (12.06.40 ई0). सीता स्वीकार, आचार्यसेन शास्त्री (16.03.40); मालती माधव–जे0एन0 श्रीवास्तव (13.07.46 ई0), गंगावतरण–एस0एन0 चौबे (1.4.47 ई0), पहाड़ के देवता–राज कुमार (17.5.47 ई0), सागर मंथन–कृष्ण चन्द्र देव ब्रहस्पति (24.5.47 ई0), कलिंग की विजय–हिरश्चन्द्र खन्ना (25.5.47 ई0), उद्धव संदेश–एस0एन0 चौबे (14.6.47 ई0), नवप्रभात–सेठ गोविन्द दास और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (16.8.47 ई0)। इनमें अन्धा जोगी, गंगावतरण तथा उद्धव सन्देश काव्य नाटक हैं ; और नवप्रभात स्वधीनता प्राप्ति पर एक घण्टे का वृहद रूपक है ।

प्रसाद-युग के नाटककारों में प्रसादजी सर्वश्रेष्ठ हैं । प्रसाद जी को भारतीय 'आर्य संस्कृति' में आस्था थी । इन्होंने ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों का प्रणयन किया है । उदारणार्थ–चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ, ध्रुवस्वामिनी आदि । प्रसादजी के आच्छादी व्यक्तित्व के प्रभाव से तथा युगीन प्रवृत्ति के कारण इस युग के अन्य नाटककारों में – बद्रीनाथ भट्ट, राधेश्याम कथावाचक, आगाहश्र काश्मीरी, सुदर्शन जी के नाटकों में ऐतिहासिक एवं पौराणिक प्रवृत्ति की प्रधानता है ।

प्रारम्भिक हिन्दी रेडियो नाटकों के इतिवृत्त प्रायः पौराणिक अथवा ऐतिहासिक ही हैं। ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम से आदर्श स्थापना ही नाटककारों का मुख्य ध्येय रहा है । साथ ही साथ कुछ नाटककारों का उद्देश्य चमत्कार तथा कुतूहल उत्पन्न करना था । "अन्धा जोगी" मन्दिर तथा मालती माधव आदि नाटकों में आदर्श प्रेम की कल्पना की गई है । इस प्रकार सन् 1936 ई0 से 47 ई0 तक की कालावधि में रेडियो नाटक का स्वरूप ठीक उसी प्रकार उसी अनुक्रम में विकसित होता दिखाई पड़ता है जिस अनुक्रम में गद्य की अन्य विधाएं विकसित हुईं। संक्षेप में इस काल के रेडियो नाटक को जहां भाव कथ्य इत्यादि की दृष्टि से बीजवपन काल कहा जा सकता है वहीं पर शैली की दृष्टि से उद्भव काल की संज्ञा दी जा सकती है ।

xxxxxxxx

स्वतन्त्योत्तर हिन्दी रेडियो नाटक

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हिन्दी रेडियो नाटक ने कथ्य एवं कला दोनों ही दृष्टियों से अभूतपूर्व प्रगति की है। इस समय असंख्य हिन्दी नाटक रेडियो माध्यम की अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर लिखे गये । इसी समय नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा एण्ड एशियन थिएटर की स्थापना संगीत नाटक अकादमी के अन्तर्गत छठें दशक के अन्त में हो गई थी।[1] ऐसी अवस्था में रेडियो ने मंच का काम किया । अन्य कार्यक्रमों की अपेक्षा रेडियो पर नाटक ही अधिक प्रभावशाली एव उपयोगी समझे जाते थे । इसी होड़ में हिन्दी के प्रत्येक नाटककार ने रेडियो के लिए नाटक लिखे ।

सन् 1947 ई0 में विभाजन के पश्चात दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, लखनऊ तथा तिरूचिरापल्ली केन्द्र ही भारत के पास रह गये थे। अल्पकाल में ही निम्नलिखित 'नये केन्द्रों' की स्थापना की गई--

जालन्धर – 1.11.47 ई0

श्रीनगर – 1.6.40 ई0

कटक – 28.1.48 ई0

नागपुर – 16.7.40 ई0

बड़ौदा – 16.12.48 ई0

(देशी रियासत से भारतीय सरकार के नियन्त्रण में आया)

राजकोट – 4.1.55 ई0

जयपुर – 9.4.55 ई0

इन्दौर – 22.5.55 ई0

बंगलौर – 2.11.69 ई0

भोपाल – 3.10.36 ई0

चण्डीगढ़ – 9.4.67 ई0

जम्मू – 1.12.47 ई0

---

1. निर्मला जैन, हिन्दी आलोचना, 20 शताब्दी पृ0 85.

कोजी कोड -- 14.5.50 ई0	पटना - 26.1.48 ई0
पूना - 2.10.53 ई0	गोहाटी शिलांग - 1.7.48 ई0
विजयवाडा - 1.12.48 ई0	इलाहाबाद - 1.2.49 ई0
अहमदाबाद - 16.4.49 ई0	धारवाड़ -- 8.1.50 ई0
हैदराबाद - 1.4.50 ई0	औरंगाबाद - 1.4.50 ई0
मैसूर -- 1.4.50 ई0	त्रिवेन्द्रम - 1.4.50 ई0
शिमला - 16.6.55 ई0	अजमेर - 11.12.55 ई0
रॉची - 27.7.57 ई0	कर्सियांग - 2.6.62 ई0 [1]

सिद्धनाथ कुमार के अनुसार "हिन्दी नाटक के विकास में जितना योग 'रेडियो' ने दिया है उतना संभवतः और किसी साधन ने नहीं । आज अधिकतर नाटक रेडियो के लिए लिखे जा रहे हैं । [2]

कुछ ऐसे रेडियो नाटकों की रचना हुई जो प्रकाशित कराते समय रंगमंचीय रूप देने के उद्देश्य से उनमें रंग निर्देश दिये गये हैं। यथा--

1. <u>डॉ0 राम कुमार वर्मा :</u>

प्रतिशोध, तैमूर की हार, दुर्गावती तथा कलक रेखा ।[3]

2. <u>चिरंजीत :</u>

ब्याह की धूम, मेहमान, होली आई रेलवा, वह आया, पतझड़ की रात,

---

1. जी0सी0 अवस्थी, ब्राडकास्टिंग इन इण्डिया पृ0 11-18.
2. सिद्धनाथ कुमार, रंग और रूप(प्राक्थन) आरम्भिक अंश.
3. दे0 रजत रश्चि, ले0 राम कुमार वर्मा.

पतिति पावन, महाश्वेता, दादी मां जागी, स्वंय चिरंजीत ने रंगारंग की भूमिका में स्वीकारा है कि दादी मां जागी के नाटकों की तरह ये सातों नाटक भी मूल रूप में रेडियो के लिए लिखे गये थे ।[1]

3. भगवत शरण उपाध्याय :

सीकरी की दीवारें, नारी, शाही मंजूर, रूपमती और बाज बहादुर, क्रौच किसका, नई दिल्ली में तथागत, रानी दिद्दा तथा गोवा ।

4. राजेन्द्र कुमार शर्मा :

अटैची केस, शीशा, दाल में काला, चुपके--चुपके, अफसर तथा परिवर्तन।[2] पर्दा उठने से पहले में संगृहीत नाटक, उधार देवता, एक दिन की छुट्टी, बुरे फंसे नाम कमाने में, समझौता, किराये के आंसू तथा पर्दा उठने से पहले।[3]

5. राजाराम शास्त्री :

सात लड़ी का हार में संकलित, सात लड़ी का हार, अदला बदली, जीजी, महरानी, बीस मिनट लेट, पत्थर की आंख तथा शिकार में संगृहीत "शिकार", खाओ चिड़ियों भर--भर पेट, आखरी घूट, बादल बोला, हमारे शत्रु, खाओ मन भर छोड़ो तिल भर, गांव का दलिद्दर सभी एकांकी रेडियो के लिए लिखे गये थे।[4]

---

1. दे0 रंग ले0 चिरंजीत (भूमिका)
2. राजेन्द्र कुमार शर्मा, अटैची केस संकेत।
3. राजेन्द्र कुमार शर्मा, एकांकी संग्रह, (भूमिका)
4. राजाराम शास्त्री, दे0 परि0-2.

6. <u>विष्णु प्रभाकर :</u>

नये पुराने, धुवां, जज का फैसला को छोड़कर शेष सभी में रंग निर्देश दे दिये गये हैं । ये हैं– ''माँ'', 'रक्त चंदन', 'सवेरा', 'पूर्णाहुति', 'सब हैं एक समान' तथा 'रसोई घर में प्रजातंत्र', 'ऊंचा पर्वत गहरा सागर' संग्रह में ''पांच रेखाएं एक बिन्दु'' को छोड़कर शेष पिपासा, सांकले, ऊंचा पर्वत गहरा सागर तथा स्वर्ग और संसार में रंग निर्देश मिलते हैं। ध्वनि रूपकों का संग्रह नाम से प्रकाशित ''दस बजे रात'' में तेरह नाटक संकलित हैं।[1]

चिरंजीत के अनुसार इस काल में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण नाटक भी प्रसारित हुए हैं जो बाद में हिन्दी साहित्य के गौरव–ग्रन्थ बने । उदाहरण के लिए हिन्दी के दो बहुचर्चित तथा बहुमंचित मोहन राकेश द्वारा रचित ''आषाढ़ का एक दिन'' और धर्मवीर भारती कृत ''अन्धा युग'' क्रमशः आकाशवाणी जालंधर और इलाहाबाद से प्रसारण के लिए मूलतः रेडियो नाटकों के रूप में लिखे गये । यही बात जगदीश चन्द्र माथुर के ''कोणार्क'', उदयशंकर भट्ट के ''कालिदास'' और ''विक्रमोर्वशी'' एवं विष्णु प्रभाकर के ''डाक्टर'' पर लागू होती है।

हिन्दी साहित्य को कई श्रेष्ठ काव्य–नाटक भी आकाशवाणी के माध्यम से मिले हैं जैसे ज्ञानपीठ पुरूस्कार प्राप्त दिनकर रचित ''उर्वशी'', सुमित्रानन्दन पन्त रचित ''शिल्पी'' और ''रजत शिखर'' राजेन्द्र शर्मा का ''धर्मराज'', भगवती चरण वर्मा का ''कर्ण'', हंस कुमार तिवारी का ''कंच–देवयानी'' इत्यादि ।[2]

---

1. विष्णु प्रभाकर, दस बजे रात, दो शब्द.

2. चिरंजीत दे0 परि0–2.

चिरंजीत के मतानुसार "अंधा युग" की रचना रेडियो के लिए की गई थी। इस सम्बन्ध में धर्मवीर भारती का कहना है कि "प्रकाशित होने से पूर्व इसका रेडियो रूपान्तर प्रकाशित हो चुका था, जिसके कारण इसके संवादों की लय और भाषा को मांजने मे काफी सहायता मिली ।[1]

प्रत्येक कला रूप विकासशील होता है और कोई भी इसको निश्चित व स्थिर नियमों में बांधकर नहीं रख सकता, फिर भी माध्यम की परिसीमाएं होते हुए भी हिन्दी नाटककारों ने रेडियो नाटक के अन्य प्रकारों की स्थापना भी इस काल में की; जिसका संक्षेप में विवेचना इस प्रकार है--

हिन्दी रेडियो--नाटक : विभिन्न प्रकारों की स्थापना

एक पात्री नाटक :

इसमें एक पात्र विशेष अपने अन्तर्द्वन्दों के सहारे पूरे नाट्य व्यापार को उजागर करता है । मानसिक व्यापार को शब्दों के द्वारा प्रकट करना एक पात्री नाटक की विशेषता है ।

रेडियो पर एक पात्री नाटक की परम्परा के श्रीगणेश का श्रेय राजाराम शास्त्री को जाता है। "सात लड़ी का हार" में संग्रहीत "बड़बेरी" इनका प्रथम एक पात्री रेडियो नाटक है। "बड़बेरी" की रचना दिल्ली से प्रसारित देहाती कार्यक्रम के लिए 1950 ई0 के पूर्व की गई थी क्योंकि इसका संकलन सन् 1950 ई0 में प्रकाशित "सात लड़ी का हार" पुस्तक में

---

1. धर्मवीर भारती, अन्धा युग, (निर्देश पृ0 5)

किया गया है । इसी प्रकार "फुलबूट" भी सन् 1950 ई0 में "शिकार" नामक पुस्तक में प्रकाशित हो चुका है। अन्य एक पात्री नाटक हैं --

विष्णु प्रभाकर के "सड़क" (17.6.52 ई0), "धुंवा" (1952 ई0), नन्ही, नन्हीं, नन्हीं तथा नये पुराने (26.3.54 ई0) अत्यन्त लोकप्रिय हुए। अंजनी कुमार का टूटे टुकड़े अत्यन्त सराहनीय एक पात्री रहे। इस एक पात्री नाटक में पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैक) का प्रयोग किया है ।

काव्य नाटक :

रेडियो पर हिन्दी काव्य नाटक की परम्परा का आरम्भ तो 12.1.39 ई0 से मिलता है जब एम0सी0 माथुर का काव्य नाटक "अंधा जोगी" प्रसारित किया गया था। इसके पश्चात् एस0 एन0 दूबे का "गंगावतरण" (1.4.47 ई0), एस0एन0 चौबे का "उद्धव-सन्देश" (14.6.47 ई0) तथा चिरंजीत का मेघदूत (12.7.47 ई0)। धर्मवीर भारतीय के "सृष्टि का आखिरी आदमी" (17.8.55 ई0) तथा अन्धा युग (1954 ई0) युग-प्रवर्तक काव्य नाटक हैं । अन्धा युग में महाभारत की पौराणिक कथा के माध्यम से विश्वयुद्ध से उत्पन्न अनास्था, नैराश्य एवं विनाश का दृश्य उपस्थित किया गया है। तत्कालीन भारतीय परिवेश की ओर संकेत इसमें मिलते हैं। निशस्त्रीकरण के प्रश्न को भी इसमें प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। अस्त्र रहेंगे तो उपयोग में आयेंगे ।[1]

इस युग के नाटककारों के अन्य नाटक हैं--उदय शंकर भट्ट - मेघदूत 21.1.49ई0 महाकवि कालिदास 16.6.49 ई0 एकला चला रे-30.1.51 ई0, सुमित्रानन्दन पन्त-अप्सरा-

---

1. धर्मवीर भारती-अन्धायुग पृ0 112.

23.3.52 ई0, ज्योत्सना 24.1.56 ई0, भगवती चरण वर्मा–महाकाल, गिरजा कुमार माथुर–इन्दुमती, पृथ्वीकल्प, भारत भूषण अग्रवाल–मिलन तीर्थ, अग्निपथ, सिद्धनाथ कुमार–लौह देवता, संघर्ष, विकलांगो का देश, (वातायन) वातायन खोलो, रामधारी सिंह दिनकर का–मगध महिमा, हिमालय का सन्देश, आर0सी0 प्रसाद सिंह तथा हंस कुमार तिवारी प्रभृति नाटककारों के नाम उल्लेखनीय हैं ।

धारावाहिक रेडियो नाटक :

इसका सूत्रपात्र सन् 1950 ई0 में विदेश प्रसारण सेवा से प्रसारित "चुन्नू मुन्नू पुष्पा" क्रम में चिरंजीत के लिये नाटकों से होता है। यह साप्ताहिक कार्यक्रम दो वर्ष तक चला। चुन्नू मुन्नू और पुष्पा एक ही परिवार के सदस्य थे और एक नाटक के मुख्य पात्र भी । कथा के साथ समसामयिक घटनाएं भी इसमें ली जाती हैं। सन् 1954 ई0 में चिरंजीत ने नया नगर के नाम से साप्ताहिक कार्यक्रम आरम्भ किया जो सन् 1961 ई0 तक चला। इसमें एक मध्यम वर्गीय परिवार की कहानी है। चिरंजीत का ही अन्य धारावाहिक नाटक है "सिलविल" (मासिक) का प्रसारण 1956 से 1963 ई0 तक चला। सिलविल एक लिजलिजा सा पात्र है, गरीब है और थोड़ा सामाजिक भी उसके बच्चे बीबी घटनाओं के केन्द्र बिन्दु हैं। श्री जैनेन्द्र कुमार ने अपने दो बहुचर्चित उपन्यास "व्यतीत" और "मुक्तिबोध" की रचना मूलत: आकाशवाणी दिल्ली के धारावाहिक नाट्य कार्यक्रम के लिए की गई थी।[1] उपेन्द्र नाथ अश्क जी कृत "अंधी गली" और रामेश्वर सिंह कश्यप कृत "लोहा सिंह"।

---

1. चिरंजीत, हिन्दी रेडियो नाटक का विवाद–परिसंवाद आकाशवाणी रोहतक से11.3.1980ई0 को प्रसारित ।

झलकी :

(लहरें कार्यक्रम) विभिन्न केन्द्रों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों के अतिरिक्त नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रतिवर्ष लहरों का रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है। इस कार्यक्रम के जनक चिरंजीत है और सन् 1980 ई0 तक वे ही करते रहे।

इस युग के रेडियो नाटकों को दिशा एवं दृष्टि के आधार इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं :–

(क) राष्ट्रीय चेतना प्रधान हिन्दी रेडियो नाटक।

(ख) सांस्कृतिक चेतना प्रधान हिन्दी रेडियो नाटक ।

(ग) सामाजिक चेतना के रेडियो नाटक ।

(घ) मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटक ।

(ड.) वैज्ञानिक रेडियो नाटक ।

(च) अन्य रेडियो नाटक ।

राष्ट्रीय चेतना प्रधान रेडियो नाटक :

इन नाटकों की मूल प्रेरणा राष्ट्रीयता या देशभक्ति रही है। ऐसे नाटकों की आधारभूत तथा स्वतंत्रता संग्राम से सम्बन्धित हैं । यथा–डा0 चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का "हिन्दोस्तान जाकर कहना" मोहन राकेश का "सुबह से पहले" कृष्ण कुमार श्रीवास्तव का "तूफान के बाद", हरिश्चन्द्र खन्ना का "मुर्दे जागते हैं" तथा विष्णु प्रभाकर का "बिमार" उल्लेखनीय है । हिन्दोस्तान जाकर कहना (1949 ई0) में देश विभाजन के बाद पश्चिम पंजाब से एक वयोवृद्ध संम्भ्रांत सज्जन अपने परिवार के साथ भारत आ रहे थे। वृद्ध की

पत्नी पाकिस्तान में पहले मारी जा चुकी थी,; उनके ट्रक में गोली चलाई जाती है, वृद्ध का पुत्र गोली लगने से मृत्यु को प्राप्त होता है। वृद्ध भी घायल है अपने पुत्र मुकुन्दी तथा पुत्री निर्मला को भारत जाने के लिए कहता है ताकि हिन्दोस्तान के सीमा प्रान्त के पहरेदार होने की, पूर्वजों की धरोहर भावी वंशजों को सौंपी जा सके। वृद्ध भारतीय अतीत की गौरवगाथा बच्चों को सुनाकर प्राण त्याग देता है ।

''सुबह से पहले'' गरमदल के सदस्य राज तथा नरमदल दल से सम्बद्ध नामक दो क्रान्तिकारियों के त्याग की कथा है।

''तूफान के बाद'' में स्वतन्त्रता प्राप्ति के अवसर पर लाल किले में आयोजित ध्वजारोहण समारोह को देखने के लिए लालायित एक घायल स्वतन्त्रता सेनानी नीलेश की पीड़ा का मार्मिक चित्रण है जिसे डाक्टर उक्त समारोह में सम्मिलित होने से रोक देता है।

''मुर्दे जागते हैं'' नाटक देश-विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित है।

'पांच रेखाएं एक बिन्दु' में धीरेन्द्र ने विश्व शान्ति तथा विश्व प्रेम के लिए प्राण दिये और गांधी जी के देश का मान बढ़ाया । निर्मला के रेडियो नाटक ''घर का किवाड़'' (4.10.63 ई0), विष्णु प्रभाकर का तीसरा व्यक्ति (28.9.64 ई0), इसमें डा0 विवेक की टांग कटने से उसे युद्ध भूमि से लौटना पड़ता है। चिरंजीत का रेडियो नाटक ''तस्वीर उसकी'' (31.5.63 ई0), ''जिन्दगी जो मौत है'' (16.6.67 ई0), हरिश्चन्द्र खन्ना का ''शेर का शिकार'' कणाद ऋषि भटनागर ने माया (22.6.64 ई0) में भ्रष्टाचार के विभिन्न आयाम किये हैं । दया प्रकाश सिन्हा ने -इतिहास चक्र'' (23.1.70 ई0) में दिखाया है कि किस प्रकार भ्रष्टाचार दल बदल, धन लोलुप व्यापारी अपने स्वार्थ के लिए साधारण जन के साथ राष्ट्रीय सम्मान को भी ताक में रख देते हैं ।

इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के नाटकों में विभिन्न संदर्भों में देश प्रेम के विविध रूपों एवं समस्याओं को नाटककारों ने दर्शाया है ।

<u>सांस्कृतिक चेतनायुक्त रेडियो नाटक :</u>

किसी भी राष्ट्र की सांस्कृति उसके इतिहास तथा पौराणिक आख्यानों अथवा दृष्टन्तों में प्रतिबिम्बित होती है। इस युग में सम्राट अशोक द्वारा कलिंग विजय तथा उसके हृदय परिवर्तन को आधार बना कर अनेक रेडियो नाटक प्रसारित हुए । मोहन राकेश (1947–49 ई0) हरिश्चन्द्र खन्ना तथा विष्णु प्रभाकर (9.12.55 ई0) के कलिंग विजय शीर्षक से अलग-अलग नाटक प्रसारित हुए । सिद्ध कुमार का 'विजेता' इसी आधारभूमि पर लिखा गया है । डा0 राम कुमार वर्मा के कौमुदी महोत्सव (9.10.48 ई0) में चन्द्रगुप्त और चाणक्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृति की इसकी प्रस्तुति की गयी है । "आषाढ़ का एक दिन" में मोहन राकेश ने कालिदास के समय की सांस्कृति का कोमल रूप नई अर्थवत्ता के साथ प्रस्तुत किया है । डा0 लक्ष्मी ना0 लाल ने 'वरूण वृक्ष का देवता' (4.8.61 ई0) में चाणक्य को कठोर हृदय के स्थान पर कोमल हृदय व्यक्ति के रूप में अंकित किया । "खलतेपन" में अजित पुस्कल ने ग्रामीण सन्दर्भ को लेकर नाटय रचना की थी ।

इसी प्रकार पौराणिक नाटकों में भारत भूषण अगवाल के महाभारत की सांझ। मोहन राकेश ने "रात बीतने तक" में नन्द और सुन्दरी की कथा साथ–साथ बौद्ध कालीन संस्कति का चित्रण किया है। "अभिशाप्त" डा0 सिद्ध कुमार जी का अतिकल्पना प्रधान नाटक है। इसमें दो पर्वतोरोहियों की हिंमालय में अश्वत्थामा से भेट हो जाने से तीन हजार वर्षो के बाद शाप से मुक्त होता है ।

इस प्रकार पौराणिक सन्दर्भों को आधुनिक जीवन से जोड़कर कथानक में रोचकता एवं सार्थकता उत्पन्न की गई है ।

डा0 चन्द्रशेखर का "इन्द्रधनुष"। शिव धनुष को सात आयामों में पूरा किया गया है तथा प्रथम ध्वनि आयाम में दस ध्वनि अन्तराल है। शेष ध्वनि आयामों में कोई अन्तराल नहीं है । कथानक में एकबद्धता है जो रेडियो नाटक की विशिष्टता है ।

सामाजिक चेतना के लिए रेडियो नाटक :

हिन्दी रेडियो नाटकों में सबसे बड़ी संख्या सामाजिक चेतना के नाटकों की है । सामाजिक चेतना के अधिकतर नाटक समस्या प्रधान नाटक हैं। यथा– कृष्ण कुमार श्रीवास्तव के जीवन के अनुवाद में निखिल अपने घरों के प्रयत्न पर भी पुनर्विवाह के लिए सहमत नहीं होता । नहीं चाहता कि उसके बच्चे से कोई दुर्व्यवहार करे। गिरजा कुमार माथुर के "जन्म कैद" की कन्या 'सत्या' को जब पता चलता है कि उसका पति युद्ध में मारा गया तो वह अपने भाई और पिता के सतत आग्रह के कारण दूसरा विवाह करना स्वीकार तो कर लेती है; किन्तु उसका मानस कचोटता रहता है। मोहन राकेश का "क्वारी धरती" एक ऐसे लड़की की कहानी है जो विवाह से पूर्व मां बन जाती है। माता–पिता के लाख प्रयत्नों के बाद भी उस बच्चे को जन्म देती है, किन्तु अन्त में परिस्थितियों से निराश होकर आत्महत्या कर लेती है। अन्य नाटककारों में विष्णु प्रभाकर "उपचेतना का छल", भारत भूषण अग्रवाल ने "और खाई बढ़ती गई" में भारत भूषण अग्रवाल ने बाप बेटे के स्वार्थो का टकराव तथा पीढ़ी अन्तराल को मुखरित किया है । गिरजा कुमार माथुर ने "बारात चढ़े" (15.4.55 ई0) और आर0 के0 शर्मा ने "उधार देवता" (10.7.61 ई0) में सामाजिक हास्य नाटक की रचना की ।

अनेक रेडियो नाटकों में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा अनैतिकता का उद्घाटन किया है । यथा--"सांप सीढ़ी" (16.5.55 ई0) में विष्णु प्रभाकर ने समलैंगिक जैसी समस्या को उठाया है । "पुल टूट गया" में डा0 जयनाथ नलिन ने सार्वजनिक विभागों में व्याप्त रिश्वत की समस्या को लिया है । लक्ष्मीकान्त वर्मा ने "आदमी का जहर" (1.5.56 ई0) समाज-सेवी संस्थाओं के खोखले आदर्शों को उनके वास्तविक रूप, श्रोता के सामने लाने में सफल प्रयास किया है ।

सामाजिक चेतना युक्त रेडियो नाटकों के कथानकों में व्यक्ति, परिवार, पुरूष--नारी सम्बन्धों में तनाव तथा विरोध भाव से सम्बन्धित कथानकों को इस युग में लिया गया है । "डूबते दायरे" में हरिश्चन्द्र खन्ना ने राकेश, माधवी और लता के माध्यम से व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का चित्रण किया है। राजेन्द्र कुमार शर्मा ने "मंजिल से आगे" (23.12.68 ई0) में एक दम्पत्ति को चुना है । विष्णु प्रभाकर ने "तीसरा व्यक्ति" (28.9.64 ई0) में सुचेता विवाह करती है, समर से, किन्तु उसकी कठपुतली बनकर रहना नहीं पसंद करती । रेवती शरण शर्मा का "उतार चढ़ाव" नया विचार प्रस्तुत किया है कि नारी पुरूष का शोषण करती है। "परछाइयां" (11.5.70 ई0) को राजेन्द्र कुमार शर्मा ने लिखा । दिग्विजय श्रीवास्तव के "दिवास्वप्न" और राजेन्द्र कुमार शर्मा ने "उपहार" में 'हीना' और प्रेयसी 'रोशनी' के सुख-खुशी के लिए आत्महत्या कर लेता है और अपनी आंख उपहार स्वरूप दीपक के लिए दे देता है। हीरा को शक था कि रोशनी अब दीपक से प्यार करने लगी।

इस प्रकार सामाजिक चेतना के नाटकों में पुरूष नारी सम्बन्ध, समाज में नारी की अवस्था, अनमेल विवाह, आधुनिकता के नाम पर टूटते परिवार, सामाजिक सम्बन्धों

में छिपी काम वासना, परिवार कल्याण, वेश्यावृत्ति, शिक्षण संस्थाओं में भ्रष्टाचार, टूटते जीवन आदि समस्याओं को लेकर हिन्दी रेडियो नाटककार ने रेडियो नाट्य साहित्य को समृद्धि किया ।

मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटक :

मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटकों में सबसे प्रमुख है अमृत लाल नागर का "चक्करदार– सीढ़ियां और अंधेरा" सतेन्द्र शरत का "साया" नाटक, मनोवैज्ञानिक आधार पर रचे गये। विष्णु प्रभाकर का "प्रकाश और परछाई" भारत भूषण अग्रवाल का "खाई बढ़ती गई" । यह किशोर मन के मनोविज्ञान को लेकर लिखा गया है। नारी के मनोविज्ञान को लेकर विष्णु प्रभाकर का "उप चेतना का छल" विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मुद्राक्षस का "लाइहरीवा" तथा बाल- मानोविज्ञान पर आधारित गोपालदास का "उनका भाई" उच्च कोटि की रचना है। "पियानो और सोने का पिजड़ा" में भैरव प्रसाद गुप्त ने एक युवती के मनोवेदना का चित्रण किया है ।

मनोवैज्ञानिक रेडियो नाटक मानव मन की गहराई तक को बड़ी बारीकी से स्पर्श करते हैं, साथ ही मानसिक अन्तर्द्वन्दों और मानवीय प्रवृत्तियों का भी बहुत ही स्वाभाविक निरूपण दृष्टिगत होता है ।

अतिकल्पना प्रधान रेडियो नाटक :

अतिकल्पना प्रधान रेडियो नाटकों के कथानकों का मुख्य उद्देश्य श्रोता को मनोरंजन कराना और उसको रोमाञ्चित करने से होता है। राजेन्द्र कुमार शर्मा के "काया कल्प" में अतिकल्पना के साथ–साथ हास्य का पुट भी है। निर्मलादर का "निर्झरणी और पत्थर"

मधुकर गंगाधर का ''काली सीढ़ियों का कोरस'' में रहस्यपूर्ण और रोमान्चक स्थितियों द्वारा सामाजिक विकृतियों का पर्दाफास किया है । मधुकर गंगाधर के ही ''गर्म पहलुओं वाला मकान'' में ग्लास, बक्सा और फ्लैट स्वभाविक रूप से मनुष्य की भाषा बोलते हैं। कला के बीच में मानव जीवन की घटनाओं और मानव पात्र भी हैं। इसमें कल्पना की गई है कि प्रकृति की बहुत सी वस्तुओं जिसे मनुष्य अपने संसर्ग में लेना चाहता है। मनुष्य के प्रति संवेदक और करूणामय है। अतः अतिकल्पना प्रधान नाटकों में "मानवीय संवेदना" का चित्रण किया गया है।

****

पुस्तकनामानुक्रमणिका

क्र0सं0	रचना	रचनाकाल	रचनाकार	प्रकाशन
1.	अन्धायुग	1988 ई0	धर्मवीर भारती	किताब महल, 15 थार्नहिल रोड़, इलाहाबाद।
2.	अन्धेर नगरी, द्वितीय संस्करण	1986ई0	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	संगम प्रकाशन, 138 विवेकानन्द मार्ग, इलाहाब
3.	अभिनव हिन्दी निबन्ध	1977–78ई0	डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव	– इलाहाबाद।
4.	आधुनिक हिन्दी नाटक –एक यात्रा दशक	1979ई0	नरनारायण राव	भारतीभाषा, प्रकाशन
5.	आधुनिक हिन्दी नाटक		सुरेशचन्द्र शुक्ल	लिपि प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली।
6.	आधुनिक हिन्दी नाटक	1984 ई0	गोविन्द चातक	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली ।
7.	आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच	1973 ई0	डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल	साहित्य प्रकाशन, प्रा0लि0इलाहाबाद।
8.	आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच	1978ई0	सम्पादक–नेमिचन्द्र जैन	प्र0स0दि मैकमिलन क0 दिल्ली।
9.	आज के हिन्दी रंग नाटक	1973 ई0	सं0ई0अल्काजी, पु0द0देश पाण्डेय सुरेश अवस्थी	संगीत नाटक अकादमी, इलाहाबाद।
10.	आधुनिक हिन्दी नाटक	1973ई0	गिरीश रस्तोगी	प्र0सं0 ग्रन्थम, कानपुर।
11.	आधुनिक हिन्दी नाटककारों के नाट्य सिद्धान्त	1973ई0	डॉ0 निर्मला हेमन्त	अक्षर प्रकाशन प्रा0लि0दरियागंज, दिल्ली।
12.	आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना	1962 ई0	गोविन्द चातक	तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली।
13.	एकांकी और रचनावली	1991 ई0	लक्ष्मी नारायण लाल	किताब घर, नई दिल्ली।

14.	कोणार्क	1961 ई0	जगदीश चन्द्र माथुर	भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।
15.	तमस आठवाँ सं0	1986 ई0	भीष्म साहनी, राज कमल प्रकाशन	प्रा0लि0–8, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली।
16.	तीसरा पक्ष	1975 ई0	लक्ष्मीकान्तवर्मा	भारतीय ज्ञानपीठ प्र0 नई दिल्ली।
17.	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	1973 ई0	डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	राजपाल एण्ड सन्स प्र0सं0 दिल्ली।
18.	दूर संचार और नई दिशायें	1990 ई0	सी0एल0गर्ग	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली।
19.	ध्वनि और संगीत	1955 ई0	ललित किशोर सिंह	भारती ज्ञान• काशी।
20.	नया नाटक स्वरूप औरसंभावना	1988 ई0	चन्द्रशेखर मिश्र	अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद
21.	नाट्य परिवेश	1981 ई0	कन्हैया लाल नन्दन	शब्दकार दिल्ली
22.	नाटक निबन्ध	1972 ई0	दशरथ ओझा	नेशनल पब्लिसिंग हाउस दिल्ली
23.	नाट्य प्रबन्ध	1960 ई0	बलदेव प्रसाद मिश्र	श्री विकंटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई
24.	नाट्य चिन्तन नये सन्दर्भ	1987 ई0	डॉ0 चन्द्र	साहित्य रत्नालय प्रकाशन, कानपुर..
25.	नाटक	1958 ई0	सुंधांशु शेखर चौधरी	ग्रन्थालय प्रकाशन, दरभंगा
26	नाटक	1941 ई0	हरिश्चन्द्र	नारायण प्रेस, प्रयाग
27.	नाटक और नायक, भाग–2	1950 ई0	सद्गुरू शरण अवस्थी	इण्डियन प्रेस लिमिटेड – प्रयाग
28.	नाटक और यथार्थवाद	1973 ई0	कमलिनी मेहता,	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
29.	नाटक के तत्व	सम्वत् 2000	कमलिनी मेहता,	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
30.	नाट्य रचना विधान आलोचना	1980 ई0	नरनारायण राय	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के071 कृष्णनगर, दिल्ली

31.	नाट्य शास्त्र	1954 ई0	भरतमुनि, अनु0 भोलानाथ	साहित्य निकेतन कानपुर ।
32.	नाटक की इबारत	1983 ई0	कमला प्रसाद, राजेन्द्र अरूण	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भोपाल, म0प्र0
33.	नाट्य शास्त्र की परम्परा	1963 ई0	हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
34.	नाट्य स्मारिका	1978 ई0	जीवन लाल गुप्त	हीरोज क्लब , अतरसुइया इलाहाबाद ।
35.	नाटक के तत्व सिद्धान्त और समीक्षा	1973 ई0	विष्णुकान्त त्रिपाठी	स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद ।
36.	नाटक चित्रपट और समाज	1966 ई0	पद्मारानी	पुस्तक सदन, दिल्ली ।
37.	नाट्य कला मीमांसा	1961 ई0	गोविन्द दास	संचालनाल, मध्य-प्रदेश ।
38.	नाटककार जगदीश चन्द्र माथुर	1973 ई0	गोविन्द चातक	राधाकृष्ण प्रकाशन - दिल्ली
39.	नाट्य भाषा	1981 ई0	गोविन्द चातक	तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली ।
40.	नाटक और रंगमंच	1985 ई0	सं0ललित कुमार शर्मा भानु शंकर मेहता	प्रभा प्रकाशन, इलाहाबाद ।
41.	नाटक और रंगमंच	1961 ई0	राजकुमार	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय , वाराणसी ।
42.	नाटक बहुरूपी	1964 ई0	लक्ष्मी नारायण लाल	भारती ज्ञान पीठ, वाराणसी ।
43.	नाटक का रंग विधान		विश्वनाथ मिश्र	कुसुम प्रकाशन कालोनी, मुजफ्फरनगर ।
44.	नाटक और प्रस्तुतीकरण स्वरूप और प्रक्रिया		विश्व भावन देवलिया	सूर्य प्रकाशन नई सड़क, दिल्ली –6
45.	नाट्य प्रशिक्षण स्वरूप और दिशायें राष्ट्रीय नाट्य संगोष्ठी	1991ई0	हिन्दी विभाग–सं0विश्वभावनदेवलिया	रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर(म0प्र0(
46.	प्रसाद कथा साहित्य	1978 ई0	डॉ0गिरीश रस्तोगी आदि	मैकमिलन कम्पनी, नई दिल्ली ।
47.	प्रजा इतिहास रचती है	30–31 मार्च 1995	अजित पुष्कल	भारतेन्दु नाट्य अकादमी –लखनऊ ।
48.	पारसी हिन्दी रंगमंच	1974 ई0	लक्ष्मी नारायण लाल	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

49.	बकरी	1974 ई0	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	लिपि प्रकाशन दिल्ली
50.	भोर का तारा	1959 ई0	जगदीश चन्द्र माथुर	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
50अ	भरत और उनका नाट्य शास्त्र	1986 ई.	डॉ० ब्रजवल्लभ मिश्र	उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद
51.	महानाटक	1977 ई0	सुरेश श्रीवास्तव	संभावना प्रकाशन, हापुड़
52.	मादा कैक्ट्स	1967 ई0	डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
53.	मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी	1972 ई0	डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
54.	रंगमंच देखना और जानना	1983 ई0	लक्ष्मी नारायण लाल	प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
55.	रंगमंच प्र 0 सं0	1965 ई0	चेनी शैल्डन, अनु0 श्री कृष्ण दास	
56.	रंगमंच	1968 ई0	बलवन्त गार्गी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
57	रंगमंच	1960 ई0	मन्मथ नाथ गुप्त	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
58.	रंगमंच	1968 ई0	सर्वदानन्द	श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा
59.	रंगमंच लोकधर्मी नाट्य धर्मी	1992 ई0	डॉ0 लक्ष्मी नारायण भारद्वाज	8/डी ब्लाक एक्सटेंशन, इन्द्रापुरी (लोनी) गाजि
60.	रंग दर्शन	1967 ई0	नेमिचन्द्र जैन	अक्षर प्रकाशन, दिल्ली
61.	रंगमंच और जयशंकर प्रसाद के नाटक	1984 ई0	रीता रानी पालीवाल	साहित्य निधि – दिल्ली
62.	रंगमंच नया परिदृश्य	1980 ई0	रीतारानी पालीवाल	लिपि प्रकाशन, अंसारी रोड, नई दिल्ली
63.	रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटक	1979 ई0	रघुवर दयाल वार्ष्णेय	
64.	रंगमंच और नाटक की भूमिका	1965 ई0	लक्ष्मी नारायण लाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
65.	रंगभूमि	1989 ई0	लक्ष्मी नारायण लाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
66.	रंगकर्म	1979 ई0	विरेन्द्र नारायण प्रधान	आलेख प्रकाशन, दिल्ली
67.	रेडियों संसार		देवकी नन्दन बंसल	मधुर मन्दिर हाथरस, यू0पी0

68.	रेडियो वार्ता शिल्प, प्र0सं0	1961 ई0	सिद्धनाथ कुमार	भारतीय ज्ञान पीठ, काशी
69.	रेडियो नाट्य शिल्प		सिद्ध नाथ कुमार	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
70.	रेडियो नाटक	1955 ई0	हरिश्चन्द्र खन्ना,	आत्मा राम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट– दिल्ली
71.	रेडियों के लिए कैसे लिखें	1955 ई0	अमर नाथचंचल	कारवाँ ऑफ इण्डिया
72.	रेडियों लेखन	1974 ई0	मधुकर गंगाधर	
73.	रेडियों की महफिल	1979 ई0	सुशील कुमार चौबे	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
74.	रेडियों नाटक की कला	1992 ई0	सिद्धनाथ कुमार	राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा0लि0अंसारी रोड, नई दि
75.	शारदीया	1959 ई0	जगदीश चन्द्र माथुर	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
76.	समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच	1978 ई0	डॉ0 जयदेव तनेजा	तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली
77.	समकालीन हिन्दी नाटककार	1982 ई0	डॉ0 गिरीश रस्तोगी	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली
78.	स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी नाटक	1985 ई0	रामजन्य शर्मा	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
79.	सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक	1975 ई0	सुरेन्द्र वर्मा,	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
80.	हिन्दी साहित्य कोष, भाग–1 व 2	1985 ई0	सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा	ज्ञानमण्डल लि0 सन्त कबीर रोड, वाराणसी
81.	हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच	1985 ई0	डॉ0 केदार नाथ सिंह	विद्या मन्दिर प्रकाशन कानपुर
82.	हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास	पंचम सं01970ई0	दशरथ ओझा	राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
83.	हिन्दी रेडियों नाटक अद्यतन अध्ययन	1982 ई0	जयभगवान गुप्ता	मथन पब्लिकेशन, रोहतक
84.	हिन्दी आलोचना, 20वीं शताब्दी	1975 ई0	निर्मला जैन,	नेशनल पब्लिकेशन, दिल्ली
85.	हिन्दी रंगकर्म और दिशा		जयदेव तनेजा	तक्षशिला प्रकाशन दरियागंज-दिल्ली

86. हिन्दी नाट्य चिन्तन — 1977 ई0 — डॉ0 कुसुम कुमार — इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन-दिल्ली

87. हिन्दी रेडियों नाटक का विवाद, परिसंवाद — 11.3.80ई0 — चिरंजीत — आकाशवाणी-रोहतक

88. हिन्दी नाटक के सौ वर्ष — 1990 ई0 — बालेन्दु शेखर तिवारी, बादाम सिंहरावत — गिरनार प्रकाशन पिलाजीगंज महेसाना(र

पत्र एवं पत्रिकायें

89. हिन्दी रंगमंच की मौजूदा समस्याएं — 3.7.94 ई0 — गिरीश रस्तोगी (हस्ताक्षेप) राष्ट्रीय सहारा

90. धारावाहिक "कर्णधार" — 20.9.95 ई0अमृत प्रभात (मीडिया पत्र (

91. धारावाहिक " मंजन फरार" — 20 सितम्बर 95 — अमृत-प्रभात

92. धारावाहिक "उड़ान" — 26.11.95 ई0 — अमृत-प्रभात

93. धारावाहिक "इट्स माई शो " — 11.01.96 ई0 — राष्ट्रीय सहारा

94. धारावाहिक "आसमा की ओर " — 26.12.95 ई0 — अमृत-प्रभात

95. धारावाहिक " मैच मेकर" — 23 अप्रैल 1996 ई0 — अमृत-प्रभात

96. मनोरमा इयर बुक, पृ0 450 — 1994 ई0 — प्रधान सं0 के0एम0मात्थू — कोट्टयम -686001 केरल, भारत

97. "नटरंग" अंक 18, त्रैमासिक — सम्पादक - नेमिचन्द्र जैन, आई -47, जंगपुरा ऐक्सटेंशन ,नई दिल्ली

98. नटरंग , अंक 48 — 1987 ई0 — सं0 नेमिचन्द्र जैन — आई-47, जंगपुरा ऐक्सटेंशन ,नई दिल्ली

99. नटरंग , अर्धशती विशेषांक हिन्दी रंगमंच पर केन्द्रित — अंक 50-52, सन् 1989 ई0 सं0 नेमिचन्द्र जैन, आई0- 47, जंगपुरा एक्सटेंशन, नई दिल्ली

100. नटरंग, खण्ड 15 अंक –57 जनवरी – मार्च 1993 ई0 सं0 नेमिचन्द्र जैन, आई 47, जंगपुरा ऐक्सटेंशन , नई दिल्ली
101. नटरंग , अंक 60–61 जुलाई – दिसम्बर 1994ई0 सं0 नेमिचन्द्र जैन , आई – 47, जंगपुरा ऐक्सटेंशन , नई दिल्ली
102. आकाशवाणी, लखनऊ से साभार प्राप्त सामग्री (रेडियो नाटक)
103 आकाशवाणी , इलाहाबाद से साभार प्राप्त सामग्री (रेडियो नाटक)
104 दूरदर्शन – दिल्ली से साभार प्राप्त सामग्री (धारावाहिक)
105. दूरदर्शन – लखनऊ से साभार प्राप्त सामग्री (धारावाहिक)

XXXXXX